‘मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा’

श्री वेंकटाचल की महिमा

(हिंदी गद्यानुवाद)

अनुवादक्

आचार्य आई.एन.चंद्रशेखर रेड्डी

तेलुगु मूल

आचार्य के.जे.कृष्णमूर्ति

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्
तिरुपति
2023

Matru Sri Tarigonda Vengamamba

SRI VENKATACHAL KI MAHIMA

(HINDI GADYANUVAD)

Hindi Translation

Prof. I. N. Chandrasekar Reddy

Telugu Original

Prof. K. J. Krishna Moorthy

T.T.D. Religious Publications Series No. 1442
© All Rights Reserved
First Edition : 2023

Copies : 500

Published by :

Sri A.V. Dharma Reddy, IDES

Executive Officer,

Tirumala Tirupati Devasthanams,

Tirupati.

D.T.P:

Publications Division,

T.T.D, Tirupati.

Printed at :

Tirumala Tirupati Devasthanams Press,

Tirupati.

प्राक्कथन

भारत देश में सनातन हिन्दू धर्म का विस्तृत प्रचार अनादि काल से होता आया है। आध्यात्मिक चेता प्राप्त अनेकानेक चिंतकों, कवियों, कवयित्रियों, भक्तों, आचार्यों ने श्रीमन्नारायण के पदकमलों में सायुज्य पाया। कलियुग के प्रत्यक्षदैव सप्ताचल के श्री वेंकटेश्वर स्वामी, आर्त भक्तों की रक्षा हेतु अभय-कटि हस्तों के साथ दर्शन प्रदान करते रहते हैं। इस स्वामी के दर्शन के लिए आनेवाले भक्तगण, अपनी श्रद्धा - भक्ति - प्रपत्ति के अनुरूप स्वामी का यशोगान करते हैं। साक्षात् श्री वेंकटेश्वर स्वामी ने अनेकानेक भक्तों को अपने में विलीन कर मोक्ष प्रदान किया।

श्री वेंकटेश्वर स्वामी की सेवा करके मोक्ष को प्राप्त करनेवाले भक्तों में तरिगोंड वेंगमांबा का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इनका जीवन अन्यान्य मोड़ लेता हुआ अंततोगत्वा भगवान में विलीन होती है।

दक्षिण भारत के तेलुगु प्रांत में कवयित्री तरिगोंड वेंगमांबा का जन्म हुआ। अपने को अनपढ़ कहनेवाली इस कवयित्री ने बहुतेरे काव्यों की रचना की। बचपन से ही भक्ति में लीन रहनेवाली वेंगमांबा माता-पिता ने इस उद्धेश्य से उनका विवाह कराया कि उनकी बेटी सामान्य जीवन शैली को अपनायेगी। वेंगमांबा को वैवाहिक जीवन ने भी प्रभावित नहीं किया। दुर्भाग्यवश उनको पति की संगति भाग्य में नहीं था और विवाह के उपरांत अल्पावधि में वेंगमांबा के पति का देहांत हुआ। वेंगमांबा ने वैधव्य को स्वीकार नहीं किया। शताब्दियों के पहले जो कड़े रिवाज समाज में प्रचलित थे, उनका वेंगमांबा ने विरोध किया। जोर देने पर वह घर से बाहर कदम रखकर सप्ताचल पहुँच गई।

भगवान बालाजी श्री वेंकटेश्वर भक्त सुलभ एवं ब्रह्मांड के नायक भक्त-जन-उद्धार के लिए अवतरित कलियुग के देव हैं। श्री वेंकटेश्वर स्वामी के आशीर्वचन प्राप्त कर, कवयित्री ने तिरुमल पर रहकर ही अपनी कृतियों का सृजन किया। आंध्र की मीरा मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा ने 'श्री वेंकटाचल माहात्म्यम' की रचना की है। इसका हिंदी अनुवाद प्रो. आई.एन. चंद्रशेखर रेड्डी जी ने 'श्री वेंकटाचल की महिमा' नाम से किया है। इस कृति में वराह स्वामी की कथा, श्रीनिवास का दिव्य चरित वर्णन, श्री वेंकटेश्वर स्वामी का वैकुंठ छोड़कर वेंकटाचल पर आना, श्री पद्मावती के साथ विवाह करना, तिरुचानूर के पद्मसरोवर से उद्भूत व्यूह लक्ष्मी और वीर लक्ष्मी की कथा, विविध पुण्य तीर्थ, सुदर्शन चक्र राज की महिमा, अष्टांग योग साधना, सृष्टि क्रम आदि का वर्णन किया गया है।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक को पढ़कर वेंकटाचल तीर्थ की महानता, वैभव एवं प्रशस्ति की जानकारी प्राप्त कर भक्तगण संतुष्ट होंगे एवं भगवान बालाजी की कृपया के पात्र बनेंगे।

सदा श्रीहरि की सेवा में,

कार्यनिर्वहणाधिकारी,
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्,
तिरुपति

अनुवादक की ओर से

श्री वेंकटेश्वर, श्री वेंकटाचल और गोविंदा, ये नाम स्मरण भारत में ही नहीं बल्कि विश्व भर में ध्वनित और प्रतिध्वनित होते सुनाई देते हैं। श्री वेंकटेश्वर की महिमा अनंत, अपार, अकथनीय तथा अवर्णनीय है। अनुपम, अद्भुत, अप्रमेय, अद्वितीय शैल श्री वेंकटाचाल है। श्री वेंकटेश्वर का दिव्य चरित जितना रहस्योन्मुख है उतना ही रहस्योन्मुख श्री वेंकटाचल की महिमा है। वैष्णव, शैव और शाक्त शक्तियों से परिपूर्ण देव देवाधिदेव श्री वेंकटेश्वर हैं। 'श्री' को हृदयालंकृत करके शोभित स्वयंभू अर्चा मूर्ति के रूप में वेंकटाचल में श्री वेंकटेश्वर विराजमान हैं। नेत्र पर्व करनेवाले उनके सुंदर विग्रह के दर्शन मात्र से बार-बार दर्शन करने की प्यास भक्तजनों में पैदा होती है। वैसे ही युग-युगों से पूरे विश्व में चर्चित आदि भूमि श्री वेंकटाचल का पुण्य क्षेत्र है। श्री वेंकटाचल भूलोक वैकुंठ है। साक्षात आदि शेष के आकार में परिवृत्त वेंकटाचल पर्वत श्रृंखला कण-कण में भक्ति का उद्घोषक है। नर, नारियों के लिए ही नहीं बल्कि मुनिगण, देवताओं के साथ यक्ष, किन्नेर, गंधर्वादि को अपने पावन अह्लादमय वातावरण से सदा अपनी ओर आकर्षित करनेवाला चुंबक पर्वत श्री वेंकटाचल है। भक्तों, माहात्माओं, दार्शनिकों और मुनियों-तपस्वियों का यह विचार है कि वेंकटाचल पहाड़ के कण-कण में देवतागण वृक्ष-वन्य प्राणी बनकर विचरण करना पसंद करते हैं। देवतागण इस पर्वत पर विहार करके, इसकी पूजा करके अपने जीवन को धन्य समझते हैं। ऐसे वेंकटाचल पर्वत का इतिहास और महिमा अत्यंत गोपनीय एवं रहस्योन्मुख है। इस पहाड़ के पत्तों, पुष्पों, फलों, जलों में विष्णु तत्व फैला हुआ है। यह कोई अत्युक्ति नहीं है कि 'वेंकटाद्रि समं स्थानं ब्रह्मांडे नास्ति किंचन, वेंकटेश समोदेवो न भूतो न भविष्यति'।

श्री वेंकटेश्वर और श्री वेंकटाचल की महिमा का गायन वेदों, पुराणेतिहासों से शुरु होता है। वाङ्मय में श्री वेंकटेश्वर वाङ्मय का अपना वैशिष्ट्य है। संकीर्तनकारों से लेकर कवि-लेखकों तक महात्माओं ने श्री वेंकटेश्वर और श्रीवेंकटाचल का महिमा-गायन करके अपने को धन्य बनाया है। तमिल के आल्वार भक्तों से लेकर, तेलुगु के संकीर्तनकार ताळ्ळपाक अन्नमाचार्य, तरिगोंड वेंगमांबा जैसे भक्त-कवियों ने इनके महिमा गायन से परलोक की साधना की है। इन भक्त कवियों की यह विशेषता है कि इनको श्री वेंकटेश्वर से साक्षात करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

श्री वेंकटेश्वर भक्त सुलभ देव हैं। ब्रह्मांड नायक हैं। भक्त-जन-उद्धार के लिए अवतरित कलियुग के देव हैं। भक्तों को अपनी ओर आकर्षित करके, उनकी सेवा प्राप्त करनेवाले निस्वार्थ देव हैं। कलियुग में भक्त जनोद्धार के लिए ही अर्चा मूर्ति बने साक्षात वैकुंठ के श्रीमन्नारायण हैं। भक्त जनों से अल्प-सेवाएँ स्वीकार करके अपार संपदाएँ देनेवाले आदि पुरुष हैं। प्रेम से 'गोविंदा' पुकारने से दौड़कर आनेवाले परम पुरुष हैं। आंध्र की मीरा मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा श्री वेंकटेश्वर की भक्तिन, कवयित्री, योगिनी, वेदांतिनी और साधिका हैं। लगभग तेलुगु की 15 कृतियाँ उनके नाम से अंकित हैं। उन्होंने अपने जीवन काल के संपूर्ण ज्ञान-साधना और भक्ति का परिपाक करके अपनी सर्वोत्कृष्ट एवं बृहत्कृति ''श्री वेंकटाचल माहात्म्यम'' की रचना की है। इसे प्रकाश में लाने का श्रेय आचार्य के.जे. कृष्ण मूर्ति को जाता है। उन्होंने इस पद्य काव्य का परिष्करण करके तिरुमल तिरुपति देवस्थान के सौजन्य से प्रकाशित करवाया है। यह छः आश्वासों में चंपू शैली में रचित बृहद पद्य काव्य है। कवयित्री ने निष्कपट रूप में आश्वासों के आरंभ में ही यह

स्पष्ट किया है कि वे विदूषी नहीं हैं। उनकी भाषा बाल भाषा है। कवयित्री ने पंडित और विद्वज्जनों को अपनी इस रचना में भाषागत और कथागत अशुद्धियों की खोज न करते हुए कथा रस का रसास्वादन करने की विनम्र विनति की है।

''श्री वेंकटाचल की महिमा'' नामक इस कृति का वैशिष्ट्य यह है कि यह कृति उस पवित्र तीर्थ में वास करते हुए लिखी गयी है। साक्षात श्री वेंकटेश्वर की प्रेरणा से रची गयी है। इस संदर्भ में यह कहना उचित है कि तरिगोंड वेंगमांबा ने नृसिंह, श्री कृष्ण और श्री वेंकटेश्वर में किसी प्रकार के अंतर को नहीं देखा है। इसके अतिरिक्त कई संदर्भों में श्री वेंकटेश्वर को उन्होंने हरि, विष्णु और श्रीनिवास के रूप में संबोधित भी किया है। जैसे परिष्कार कर्ता आचार्य के.जे.कृष्ण मूर्ति के अनुसार इस बृहद पद्य काव्य में तीन प्रमुख कथाएँ वर्णित हैं। इन तीनों के स्रोत भी अलग-अलग ही हैं। पहले तीन आश्वासों का मूलाधार ब्रह्मांड पुराण है। इनमें आदि वराह स्वामी की कथा कही गयी है। फिर चौथे और पाँचवें आश्वासों में श्रीनिवास का दिव्य चरित वर्णित है। इन आश्वासों का मूल स्रोत भविष्योत्तर पुराण है। श्रीवेंकटेश्वर के वैकुंठ छोड़कर वेंकटाचल पर बसने से लेकर श्री पद्मावती के साथ विवाह करने तक की कथा इन आश्वासों में कही गयी है। उसी प्रकार अंतिम आश्वास का मूल स्रोत पद्म पुराण है। इसमें तिरुचानूर के पद्मसरोवर से उद्भूत व्यूह लक्ष्मी और वीर लक्ष्मी की कथा कही गयी है। इन तीन मूल कथाओं को कवयित्री ने अपनी काव्य प्रतिभा के साथ बहुत अच्छे ढंग से सजाया है। इन तीन कथाओं के अतिरिक्त वेंकटाचल पर स्थित विविध पुण्य तीर्थों, सुदर्शन चक्र राज की महिमा, अष्टांग योग साधना, जीव-परमात्मा का संबंध, सृष्टि क्रम आदि वेदांत और योग साधना से संबंधित विषयों को

कवयित्री ने यथास्थान पर सूत के द्वारा शौनकादि मुनियों को सुनाने के क्रम में प्रस्तुत किया है।

कवयित्री मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा तेलुगु साहित्य के 17 वीं 18 वीं सदियों की है। तेलुगु की ग्रांथिक भाषा में धाराप्रवाही तत्समनिष्ठ शैली में काव्य रचा गया है। वेंगमांबा ने अनेक संस्कृत शब्दों एवं श्लोकों को अपने इस पद्य काव्य में स्थान दिया है। इस महत्वपूर्ण तेलुगु पद्य काव्य को हिंदी भाषी भक्तों तक पहुँचाने के उद्देश्य से इसे सरल हिंदी में गद्यानुवाद किया गया है। यथासंभव हिंदी भाषा को भी संस्कृतनिष्ठ शैली के समीप रखने की कोशिश की गयी है। आरंभ में मूल लेखक की भूमिका का, जो दो प्रकाशनों में अलग-अलग प्रस्तुत की गयी थी, हिंदी अनुवाद किया गया है। जो कवयित्री के बारे में और काव्य के बारे में जानकारी प्राप्त करने की दिशा में काफी उपयोगी है। श्री वेंकटेश्वर और श्री वेंकटाचल को लेकर लिखी गयी हिंदी पुस्तकों के अभाव को यह प्रयास पूरा करेगा। ऐसा पूरा विश्वास है। इसी में इस प्रयास की सार्थकता भी है। सुधी हिंदी पाठक 'श्री वेंकटाचल की महिमा' वाली इस पुस्तक को पढ़कर कलियुग के देवादिदेव श्री वेंकटेश्वर की सत्कृपा को प्राप्त करेंगे। ऐसी मंगलकामनाओं के साथ---ओम नमो वेंकटेशाय।

श्री देवी, भूदेवी और नीला देवी समेत श्री वेंकटेश्वर स्वामी को समर्पित।

आचार्य. आई.एन.चंद्रशेखर रेड्डी
पूर्व आचार्य, हिंदी विभाग,
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय,
तिरुपति-517 502 आ.प्र.

मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा कृत पद्य काव्य 'श्री वेंकटाचल माहात्म्यम' का हिंदी गद्यानुवाद 'श्री वेंकटाचल की महिमा'

कलियुग के देवादिदेव शेषाद्रि पर्वत शृंखला तिरुमल में बसे श्री वेंकटेश्वर स्वामी की भक्तिन कवयित्री मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा सहज कवयित्री हैं। उनकी दो दर्जनों से अधिक रचनाएँ आज तक प्रकाश में आयी हैं। उन सभी में सर्वाधिक प्रचलित एवं सर्वाधिक बृहद काव्य 'श्री वेंकटाचल माहात्म्यमु' है। श्री तेरिगोड वेंगमांबा वेद, उपनिषद, पुराणेतिहास पठित सहज विदूषी हैं। अपने जीवन सार को और श्री वेंकटेश्वर के प्रति अपनी संपूर्ण भक्ति-प्रपत्ति को उन्होंने इस बृहद काव्य के माध्यम से व्यक्त किया है।

मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा की रचनाओं को तेलुगु में प्रकाश में लाने का पूरा श्रेय आचार्य के.जे. कृष्णमूर्ति जी को ही जाता है। उन्होंने तालपत्र ग्रंथों में निक्षिप्त श्री वेंगमांबा की रचनाओं को पाठानुसंधान और परिष्करण करके तिरुमल-तिरुपति देवस्थान के सहयोग से प्रकाशित किया है। उनका यह प्रयास 'न भूतो न भष्यिति' है। 'श्री वेंकटाचल माहात्म्यमु' उनके सद्प्रयासों को उजागर करनेवाला छंदोबद्ध महाकाव्य है। श्री वेंकटेश्वर स्वामी की भक्तिन कवयित्री का परिचय तेलुगु भाषी भक्तों को देने का पूरा गौरव उन्हीं को दिया जाता है। इसी नाम से यानी 'श्री वेंकटाचल माहात्म्यमु' नाम से संस्कृत भाषा में लिखित एक और काव्य प्राप्त होता है। जो इससे संबंध रखते हुए भी इससे अलग है। कुल छः आश्वासों में रचित इस बृहद पद्य-काव्य का यथासंभव निकट गद्यानुवाद ही प्रस्तुत संदर्भ में किया जा रहा है।

इस बृहद काव्य के आरंभ में भूमिका के रूप में काव्य का परिचय देते हुए मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा के बारे में तथा उनके इस काव्य के बारे में कुछ मौलिक बातें आचार्य के.जे.कृष्णमूर्ति जी ने प्रस्तुत की हैं। इस संदर्भ में उनका भी अनुवाद प्रस्तुत करना औचित्य रखता है। अब तक यह काव्य दो बार प्रकाशित हुआ है। दोनों बार संशोधनों के साथ भूमिका प्रस्तुत की गयी है। प्रथम संस्करण में प्रकाशित काव्य की भूमिका के साथ-साथ दूसरे संस्करण में प्रकाशित काव्य की भूमिका में व्यक्त विचारों का सार-संक्षेप व सारानुवाद इस रूप में है।

प्रथम प्रकाशन की भूमिका

भारत में अनेक पुण्य एवं पवित्र तीर्थ स्थल हैं। उनमें 'वेंकटाचल' अत्यंत प्रचलित है। इसी का नाम 'तिरुमल' (आंध्र प्रदेश) है। 'वेंकटाचल' तिरुमल का दूसरा नाम है। इस तीर्थ राज का वर्णन संस्कृत में वराह पुराण, भविष्योत्तर पुराण, पद्मपुराण आदि बारह पुराणों में प्राप्त होता है। इस रूप में विविध पुराणों में वर्णित वेंकटाचल तीर्थ से संबंधित अनेक अध्याय अनेक महर्षि और महानुभावों ने एक संग्रह के रूप में प्रस्तुत किया है। उसी संग्रह का नाम 'वेंकटाचल माहात्म्यमु' है। यह अत्यंत बृहद ग्रंथ है। यह ग्रंथ ही अनेक पीढ़ियों से इस तीर्थ के वैभव, प्रशस्ति और प्रचार के लिए मूल ग्रंथ के रूप में प्रचलित है।

'वेंकटाचल माहात्म्यमु' संस्कृत ग्रंथ का आंध्रीकरण या तेलुगु अनुवाद अनेक कवियों ने किया है। उनमें सर्वप्रचलित कवयित्री मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा अग्रगण्य हैं। उन्होंने इस तीर्थ के महात्म्य को छः आश्वासों में पद्य काव्य के रूप में रचा है। इसमें प्रथम तीन आश्वासों की कथा का आधार वराह पुराण है-प्रथम भाग (तीस अध्याय), उसी प्रकार

चौथे और पाँचवें आश्वासों की कथा के लिए भविष्योत्तर पुराण (चौदह अध्याय) आधार है। छठे आश्वास को कवयित्री ने पद्म पुराण से कुछ कथांशों का चयन करके स्वयं रचा है। कुल मिलाकर वेंगमांबा का अनुवाद अनेक प्राचीन कवियों की तरह मूल का स्वेच्छानुवाद माना जा सकता है। इस महती काव्य में कविता-शैली संदर्भ के अनुसार अत्यंत रमणीय और सरल रूप में प्रस्फुटित हुई है।

इस महती काव्य के प्रकाशन के बाद ही वेंकटाचल के महत्व का अधिक प्रचार हुआ है। तेलुगु प्रदेश में यह काव्य अत्यंत प्रचलित हुआ है। इसके लिए इस काव्य में व्यक्त वेंगमांबा के भक्ति-रस, कविता-माधुरी ही जिम्मेदार हैं। वेंकटाद्रि से संबंधित पवित्र-कथाएँ, वेंकटेश्वर स्वामी की परिणय-गाथाएँ, महिमा-गान आदि इधर की दो सदियों में इस काव्य के कारण ही तेलुगु भाषियों में अधिक प्रचलित हुए हैं। 18 वीं सदी के उत्तरार्ध से आंध्र में प्रकटित श्रीवेंकटेश्वरात्मक साहित्य में इस ग्रंथ का प्रभाव अद्वितीय है। यही इस काव्य का वैशिष्ट्य है।

कवयित्री

भारत में प्रचलित ''कलौ वेंकटनायकः'' यानी कलियुग में श्री वेंकटेश्वर को ही नायक के रूप प्रतिष्ठित करनेवाले इस काव्य को रचनेवाली तरिगोंड वेंगमांबा का जन्म स्थल 'तरिगोंड' (चित्तूर जिला, आंध्र प्रदेश) गाँव है। यह लक्ष्मी नरसिंह तीर्थ के रूप में प्रचलित है। यह तिरुपति शहर से वायव्य दिशा में 108 कि. मी. दूरी पर स्थित है। इस गाँव के नंदवर शाखीय, वशिष्ट गोत्र के कानाल कृष्णयामात्य और मंगमांबा के दंपतियों को श्रीवेंकटेश्वर के वरप्रसाद के रूप में वेंगमांबा सन् 1730 में पैदा हुई हैं।

वेंगमांबा को आध्यात्मिक-भक्ति जन्म से ही सहज ही प्राप्त हुई है। उनकी सहज भक्ति से आरंभ में उनके माता-पिता प्रसन्न होने पर भी बाद में भक्ति में डूब कर नाच-गान करनेवाली लौकिक जीवन से दूर रहनेवाली पुत्री को उन्होंने बाद में प्रोत्साहित नहीं किया। वेंगमांबा में परिवर्तन न पाकर उन्होंने शीघ्र ही बचपन में ही उनका विवाह किया। वर श्रीवत्स गोत्र वाले चित्तूर के समीपवर्ती 'नारगुंटपालेम' गाँव के वासी इंजेटि वेंकटाचलपति हैं। किंतु विवाह के कुछ ही दिनों में वर का देहांत हो गया। पूर्वाचार के अनुसार वेंगमांबा ने सुहागिन-चिह्नों का त्याग नहीं किया। ''भगवान श्री वेंकटेश्वर ही मेरा पति है। इसलिए मैं सुहागिन के रूप में रहूँगी।'' कह कर पूर्वाचार का अनुसरण करनेवाले तत्कालीन पुष्पगिरि पीठाधीश का भी उन्होंने विरोध किया। वेंगमांबा की भक्ति तन्मयता और समर्पण भाव को देख कर मठाधीश ने भी उसे आशीर्वाद दिया।

वेंगमांबा का रूपांतरण उनके गुरु सुब्रमण्य देशीक से ब्रह्मविद्या, योगाभ्यास को उपदेश के रूप में पाने के बाद संभव हुआ है। कहा जाता है कि एक दिन दोपहर के समय योगाभ्यास पूरा करके अर्धनिमिलित नेत्रों से बैठने वाली वेंगमांबा में आकाश से कुछ दिव्य अक्षरों ने उतर कर प्रवेश किया। तत्समय वेंगमांबा को दिव्यानुभूति हुई। इसका उल्लेख स्वयं कवयित्री ने वेंकटाचल माहात्म्य की भूमिका में उल्लेख किया है। (दे. प्रथम आश्वास के 4 और 5 पद्य) इस रूप में आंध्र में दिव्याक्षरों से शारदा-साक्षात्कार पानेवाली इकलौती कवयित्री तरिगोंड वेंगमांबा हैं।

तब से वेंगमांबा ने अपनी भक्ति-आध्यात्मिक अनुभूतियों को दिव्याक्षरों से काव्यों के रूप में प्रकटित करके काव्य-तप किया है। अपने जन्म-स्थल तरिगोंड में रहते समय ही उन्होंने तरिगोंड नृसिंहशतक, नारसिंह की विलास कथा (यक्षगान), शिवनाटक (यक्षगान), राज योगात्मक सार (द्विपद काव्य), बालकृष्ण नाटक (यक्षगान) नामक रचनाएँ की हैं।

वेंगमांबा तरिगोंड लक्ष्मी नरसिंह के मंदिर के बाएँ तरफ रहनेवाली हनुमान मूर्ति की आड में बैठ कर योग-समाधिस्त हुआ करती थी। एक बार मंदिर के अर्चक ने यह देख कर उनके सर के बाल पकड़ कर मंदिर से बाहर निकाला। इस घटना के अगले क्षण में ही वेंगमांबा तरिगोंड छोड़ कर पैदल के रास्ते जंगल से होकर तिरुमल पहुँच गयी।

उस समय (सन् 1745-50) हाथीरामजी मठ के अधिपति के रूप में महंत आत्माराम दास जी हुआ करते थे। उन्होंने तरिगोंड वेंगमांबा की भक्ति-तत्परता को देखते हुए स्वामी के मंदिर की ओर से उसे आश्रय दिया। नंदन वनों के बीच भक्तों के नीराजनों से संतृप्त श्री वेंकटेश्वर की सेवा में वेंगमांबा भी जुड़ गयी। श्री वेंकटेश्वर की प्रेरणा से फिर से काव्य-रचना शुरु की।

तिरुमल तीर्थ और श्री वेंकटेश्वर के परम भक्त और सेवक ताल्लपाक वंशजों का उत्तर माड वीथि में आवास स्थान था। अपने मकान के बगल में उन्होंने वेंगमांबा के लिए निवास बना दिया। इससे वेंगमांबा को ताल्लपाक वंशजों के आश्रय में रहने तथा उनके द्वारा रचित श्रीवेंकटेश्वर संबंधी काव्यों को पढ़ने का सुंदर अवसर प्राप्त हुआ। खासकर अन्नमय्या के श्रृंगार संकीर्तन, अन्नमय्या की पत्नी तिम्मक्का के द्वारा रचित 'सुभद्रा कल्याण' काव्य को तथा अन्नमय्या के पोते चिन्नन्ना के द्वारा रचित 'अष्टमहीषी कल्याण' को पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआा। अपनी रचनाओं में वेंगमांबा ने इन रचनाओं का अनुसरण किया। अपनी

काव्य-रचनाओं के आरंभ में वेंगमांबा ने अन्नमय्या और उनके वंशजों का सुंदर उल्लेख किया है।

वेंगमांबा के पड़ोस में श्रीवेंकटेश्वर स्वामी के मुख्य अर्चक वेंकट्राम दीक्षित रहा करते थे। इनके द्वारा वेंगमांबा को कष्ट सहना पड़ा। इसलिए वेंगमांबा तिरुमल छोड़कर तिरुमल मंदिर से दस मील दूरी पर रहनेवाले 'तुंबुर तीर्थ' नामक जंगल में चली गयी। वहाँ की गुफा में रहते हुए अनेक वर्ष उन्होंने तप किया। आज भी उस प्रदेश को 'तरिगोंड वेंगमांबा कवि' नाम से पुकारते हैं।

फिर से वेंगमांबा तुंबुर तीर्थ छोड़ कर तिरुमल आने के बाद तिरुमल वासियों को उनकी महानता के बारे में पता चला। वेंगमांबा हर वर्ष नृसिंह नवरात्रोत्सव मनाती थी। इसके अतिरिक्त वेंगमांबा के द्वारा रचित भक्ति-वेदांत की रचनाओं को देखकर उनकी महिमा पूरे आंध्र में प्रचलित होने लगी थी। वेंगमांबा के मठ में 'अष्ट घंट' (तेलुगु में घंटमु का मतलब लेखनी है) हुआ करते थे। वेंगमांबा की रचनाओं को वे ही ताडी के पत्तों पर लिपिबद्ध करते थे। वेंकटगिरि, श्री कालहस्ती, कार्वेटिनगर आदि प्रदेशों से पंडित-कविजन आकर उनकी रचनाओं को लिखकर ले जाया करते थे। इस रूप में उस समय वेंगमांबा के मठ में नित्य कोलाहल हुआ करता था। उनका मठ सारस्वत व आध्यात्मिक केंद्र ही बन गया था।

कवयित्री वेंगमांबा की कलम से निकली कृतियाँ विष्णु पारिजात (यक्षगान), रमा परिणयमु (द्विपद काव्य), चेंचु नाटक (यक्षगान), श्री वेंकटेश्वर कृष्ण मंजरी (स्तुति काव्य), श्री रुक्मिणी कल्याण (यक्षगान), गोपिका नाटक (यक्षगान), श्री भागवत (द्विपद काव्य), श्री वेंकटाचल

महात्यमु (पद्य काव्य), अष्टांग योग सार (पद्य कृति), जलक्रीड़ा विलासमु (यक्षगान), मुक्तिकांत विलास (यक्षगान), तत्व कीर्तन (आध्यात्मिक गीत), वासिष्ट रामायण (द्विपद काव्य) अब तक प्रकाशित हुई हैं। इन से अलग संदर्भानुसार अनेक गीत, श्लोक, पद्यादि वेंगमांबा की कलम से निकली हैं। उनकी सारी रचनाएँ अपने इष्ट देव तरिगोंड नरसिंह और श्री वेंकटेश्वर को अभेद भाव से समर्पित हुई हैं। इस सारस्वत सेवा के साथ-साथ श्री वेंकटेश्वर स्वामी के आनंद निलय में वेंगमांबा नित्य सेवा में लगी रहती थी। स्वामी की नित्य एकांत सेवा में 'नित्य मुत्याल हारती' स्थापना उन्होंने करवायी थी। श्री वेंकटेश्वर स्वामी की एकांत सेवा के समय में अंतिम हारती के रूप में वेंगमांबा की मुत्याल हारती (मोतियों की हारती) उतारने की परंपरा आज भी जारी है। स्वामी की एकांत सेवा के समय अन्नमय्या वंशजों का लोरी गीत और वेंगमांबा की 'मुत्याल हारती' आज भी परंपरा के रूप में मंदिर में देखी जा सकती है। इस रूप में एक ओर सारस्वत सेवा करते हुए, स्वामी की नित्य सेवा में भाग लेते हुए और अपने शिष्यों को आध्यात्मिक-तात्विक मार्गदर्शन करते हुए मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा सहस्र चंद्र दर्शोनोपरांत सन् 1817 को श्रावण मास में शुद्ध नवमी के दिन स्वामी में विलीन हो गयी।

बचपन में गुरुओं के पास शिक्षा प्राप्त नहीं करने के बावजूद योग विद्या कुशलता से तथा परिपूर्ण भक्ति-समर्पण से अपूर्व सारस्वत शक्ति को प्राप्त करके 'वेंकटाचल माहात्म्यमु' जैसे अमृत काव्यों को रचनेवाली कवयित्री तरिगोंड वेंगमांबा हैं। वे तेलुगु में भागवत रचनेवाले बम्मेर पोतना, संकीर्तन रचनेवाले ताल्लपाक अन्नमय्या और गिरिधर गोपाल की उपासिका मीराबाई जैसे महात्माओं से तुलनीय हैं। कवयित्री की सारस्वत-सेवा की स्फूर्ति उन्हें प्राप्त स्वामी श्रीवेंकटेश्वर का वरदान ही है। स्वामी

की नित्य सेवा में अंतिम सेवा के रूप में स्थापित 'मुत्याल हारती' की तरह प्राचीन युग से संबंधित कवयित्रियों में मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा ही अंतिम कांतिदीप हैं।

काव्य का परिष्करण

आचार्य के.जे. कृष्णमूर्ति 'श्री वेंकटाचल महात्म्यम' के परिष्कार-कर्ता हैं। उन्हें अपने समय में प्राप्त कुछ मुद्रित और अमुद्रित प्रतियों की सहायता प्राप्त हुई है। उनका विवरण निम्नांकित है।

1. मुद्रित प्रतियाँ - आठ

1. परिष्कार कर्ता मद्रास प्रेसिडेन्सि कालेज के तेलुगु अध्यापक श्री रेकमु रामानुजाचारी। श्रीरामगुणदर्पण मुद्रण, मद्रास.वर्ष 1866, 21 तारीख नवंबर महीना। नोटः इस प्रकाशन में आरंभिक पाँच आश्वास ही प्रकाशित हुए हैं। छटा आश्वास नहीं है।
2. तिरुमल श्रीनिवासुलु के द्वारा परिष्कार, गीर्वाण भाषा रत्नाकर मुद्रण, चेन्नपुरि-सन् 1889.
3. पंडितों के द्वारा परिष्करण, श्री राजराजेश्वरी निकेतन मुद्रण, चेन्नपुरि-सन् 1895
4. पंडितों के द्वारा परिष्करण, विद्यातरंगिणी मुद्रण, चेन्नपुरि सन् 1895.
5. पंडितों के द्वारा परिष्करण, चिदानंद मुद्रण, चेन्नपुरि-सन 1912, अगस्त महीना 16 तारीख।
6. परिष्कार कर्ता आलूर वासुदेवय्या, वाविल्ल रामस्वामी शास्त्री एंड सन्ज, चेन्नपुरि-1914

7. पंडितों के द्वारा परिष्करण, अमेरिकन डैमंड मुद्रण, चेन्नपुरि-1924
8. प्रकाशक : श्री वेंकटेश्वर बुक डिपो, तिरुमल, तिरुवेंकटेशा मुद्रण, तिरुपति-1955 नोट : इस प्रकाशन में 4, 5, 6 आश्वास ही प्रकाशित हुए हैं।

2. अप्रकाशित तालपत्र ग्रंथ : दो

1. इसमें कुल 137 पत्ते हैं। यह छः आश्वासों की समग्र प्रति है। सन् 1877 मई में लिखी गयी है। लेखन स्पष्ट है। लेखक अरुमुग पिल्लै।

2. इसमें 172 पत्ते हैं। इसमें छः आश्वास होने के बावजूद कुछ पत्तों में शिथिलता दिखाई देती है। लगता है कि यह उपर्युक्त से भी प्राचीन है। लेखन का समय प्राप्त नहीं होने से लगता है कि इसके कम-से-कम पहले से तीस वर्ष पूर्व लिखी गयी है। ऐसे में यह लगभग सन् 1847 के आस-पास की लगती है। सुंदर गोलाकर लेखनी है। लेखक मुनस्वामी पिल्लै हैं। ये दोनों प्रतियाँ चित्तूर जिले में ही प्राप्त हुई हैं।

प्राप्त मुद्रित प्रतियों में कुल छः में छः आश्वास समग्र रूप से प्रकाशित हैं। उनमें क्रम से दूसरी प्रति को आधार बनाकर कवियित्री के हृदय के निकट आवश्यक पाठांतर करके बाकी से तुलना करते हुए प्रस्तुत प्रति तैयार की गयी है।

बाकी प्रतियों के अध्ययन से पता चलता है कि बाकी में लोगों ने जोड़-तोड़ नहीं किया। बल्कि शिथिलता की वजह से उनमें कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। वाविल्ल प्रकाशन में विद्वानों के द्वारा परिष्कृत होने की वजह से कवयित्री की भाषा से थोड़ा हटकर विद्वत्त भाषा के निकट होते हुए जहाँ-तहाँ परिवर्तन गोचर होते हैं।

दूसरे प्रकाशन की भूमिका

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति ने दस साल के भीतर ही इस काव्य का दूसरा प्रकाशन निकाला है। यह अत्यंत प्रसन्नता की बात है। इस बीच प्रकाश में आयी कुछ हस्तलिखित कृतियों का अध्ययन करने का मौका परिष्कारकर्ता आचार्य के.जे.कृष्णमूर्ति जी को प्राप्त हुआ। उन्होंने ऐसी तीन कृतियों को पहले प्रकाशन से मिलान करके नये विषयों का चयन किया। साथ ही पहले प्रकाशन में हुई अशुद्धियों को सुधारा। साथ ही अवतारिका और अन्यत्र व्यक्त कुछ विशेषताओं पर भी उन्होंने इस संदर्भ में समीक्षा की है।

प्रस्तुत काव्य का मूलाधार संस्कृत में प्रकाशित 'वेंकटाचल माहात्म्यमु' ही है। यह वराह, ब्रह्मांड, भविष्योत्तर, पद्म, भागवतादि बारह पुराणों से संग्रहित कथांशों के साथ कुल 157 अध्यायों के 10, 771 श्लोंकों का बृहद काव्य है। वेंगमांबा ने वराह, भविष्योत्तर और पद्म पुराणों को आधार बनाकर बम्मेर पोतना आदि कवियों का अनुसरण करते हुए स्वेच्छा से और स्वतंत्र रूप में इस काव्य को रचा है।

इसके आरंभिक तीन आश्वासों में श्वेतवराह स्वामी के आविर्भाव संबंधी गाथा ही प्रमुख है। यह वराह पुराण का अंश है। चौथे और पांचवें आश्वासों में कवयित्री ने श्रीनिवास के कल्याण (आकाश राज की पुत्री पद्मावती का विवाह श्री वेंकटेश्वर स्वामी के साथ करवाना) का वर्णन है। यह भविष्योत्तर पुराण का अंश है। वैसे छठे आश्वास में आदि लक्ष्मी व्यूह लक्ष्मी (अलिमेलमंगा) के रूप में पद्म सरोवर से उद्भूत होने की पवित्र गाथा मुख्य है। यह पद्म पुराण का अंश है।

उपर्युक्त तीनों पुराणों से संग्रहीत अंशों को तीन मुख्य स्वतंत्र कृतियों का दर्जा देते हुए वेंगमांबा ने काव्य रचना की है। इसके लिए

उन्होंने प्रथम आश्वास के आरंभ में, चौथे आश्वास के आरंभ में तथा छठे आश्वास के आरंभ में इष्टदेवता स्तुत्यादि का वर्णन भी किया है।

तीन अलग-अलग पुराणों से कथांशों को लेने के बावजूद भी समेकित काव्य के रूप में उनके बीच में अंतःसंबंध को जोड़ते हुए वेंगमांबा ने इस काव्य की रचना की है। इसके लिए शौनक और सूत के संवादों के रूप में पूर्व-पर कथा सूत्र को उन्होंने जोड़ा है। इस रूप में वेंगमांबा ने कथा-विधान में एक सूत्रता एवं रमणीयता को खड़ा किया है।

अवतारिका की विशेषताएँ

अवतारिका किसी भी रचना के लिए मंगल तिलक की तरह है। इसमें कवि-दृष्टि और कवि-हृदय स्पष्ट रूप से व्यक्त किया जाता है। इस दृष्टि से 'श्री वेंकटाचाल माहात्म्य' का अनुशीलन करने से निम्न विशेषताएँ सामने आती हैं।

1. नन्नया आदि प्राचीन तेलुगु कवियों की तरह कवयित्री ने काव्यारंभ में इष्ट देवताओं को नमस्करोचित स्तुति संस्कृत श्लोकों के द्वारा की है। प्रथमाश्वास के साथ-साथ चौथे आश्वास के आरंभ में तथा छठे आश्वास के आरंभ में भी संस्कृत के श्लोक हैं।

2. बचपन में तरिगोंड में 'अक्षरशारदा' से साक्षात्कार प्राप्त करने के कारण काव्यारंभ में अक्षर मातृकाओं की मानसिक-स्तुति भी प्रस्तुत की है। यह भी एक विशेषता है। (प्रथम आश्वास-पद्य-7)

3. काव्यारंभ में सुकवि स्तुति करके कुकवि निंदा नहीं करनेवाली सरल-सहृदयवाली कवयित्री वेंगमांबा हैं।

4. वेंकटचाल का महिमागायन करने का निर्णय वेंगमांबा ने मक्खी के सागर लांघने कार्य जैसा माना है। (प्रथम आश्वास-पद्य-22) यह

महाकवि कालिदास के द्वारा रघुवंश काव्य के आरंभ में व्यक्त 'छोटी नौका के माध्यम से सागर लांघने का प्रयास' की याद दिलाता है।

5. वेंगमांबा ने अपनी अवतारिका में काव्य रचना को 'भास्वर भक्ति योग' के कारण बताया है। यह विचार एक पद्य के माध्यम से व्यक्त किया है। (प्रथम आश्वास-पद्य-20)

6. साधारणतया अवतारिकाओं में वर्णनों की गुंजाईश नहीं होती है। फिर भी वेंगमांबा ने अपनी अवतारिका में अवसर निकाल कर अपने निवास स्थल (तिरुमल) वेंकटगिरि का आठ पद्यों में अद्भुत वर्णन किया है। (प्रथम आश्वास - पद्य-24 से 31 तक)

प्रसंग सौंदर्य

यह काव्य अनेक रस भरे सुंदर प्रसंगों के वर्णनों से भर पड़ा है।

1. श्री लक्ष्मी के द्वारा वेश्या का वेशधारण, श्री हरि का लंपट व्यक्ति के रूप में वेशधारण करके मुनियों की यज्ञशाला में प्रवेश करने का प्रसंग। (प्रथम आश्वास-पद्य-129 से 138)

2. शौनकादि मुनियों के द्वारा स्वामी के दर्शन करने का प्रसंग। (तृतीय आश्वास-पद्य-180-202)

3. श्री वेंकटेश्वर के भीलनी के रूप में वेश धारण करके नारायण पुर में भविष्यवाणी सुनाना। (पांचवाँ आश्वास-पद्य-6-40)

4. तिरुचानूर के पद्मसरोवर में व्यूह लक्ष्मी के रूप में लक्ष्मी का आविर्भाव होकर श्री स्वामी के वक्षस्थल पर स्थापित होने का सुंदर प्रसंग। (छठा आश्वास -पद्य-111-130)

5. लक्ष्मी और वेंकटेश्वर के मोद भरे संवाद। (छठा आश्वास-पद्य-133-150) इन संवादों के द्वारा वेंगमांबा ने कलियुग देव श्री वेंकटेश्वर के अवतार के मुख्य कारण को अत्यंत सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है।

काव्य शैली के बारे में

1600 से अधिक पद्यों की इस रचना में कहीं भी हडबडाहट या असहज प्रवाह दिखाई नहीं देता है। आरंभ से लेकर अंत तक एक ही प्रकार की सहज प्रवाह शैली दिखाई देती है। कहीं फीकापन, कठिन भी नहीं है। कवयित्री के हृदय की तरह काव्य रचना सरल, कोमल और विनम्र रूप में प्रवाहित हुई है।

रस निरुपण के बारे में

कवयित्री की यह विशेषता है कि छः आश्वासों में रचित इस काव्य में कहीं भी मलिन श्रृंगार का वर्णन नहीं है। यह उनके वैराग्य तत्व का उदाहरण है। वराहादि रूप वर्णन करते समय, लक्ष्मी के रूप लावण्य का वर्णन करते समय भी कवयित्री ने शालीनता से काम लिया है।

छठे आश्वास में वीर लक्ष्मी प्रसंग में श्री हरि ऋणग्रस्त होने का प्रसंग और शुक मुनि का प्रसंग भी है। इन प्रसंगों में भी काव्य रसयुक्त, श्रुतिरंजक शैली में ही आगे बढ़ा है। ऐसा निराडंबर काव्य शैली तेलुगु कवि तिक्कना के बाद कवयित्री में ही दिखाई देती है, ऐसा कवि वीरेश लिंगम पंतुलु ने कहा है। (दे. वीरेश लिंगम का युग, पृ:131-133)

कवयित्री (वेंगमांबा), कृति (वेंकटाचल माहात्म्यमु), कृतिपति (वेंकटेश्वर) इस रूप में एक नाम से जुड़े यह 'त्रिपुटी एकत्र' प्रदेश वेंकटाद्रि पर स्थित होना एक अपूर्व एवं अनुपम घटना है। एक वाक्य में कहें तो 'श्री वेंकटाचल महात्म्यमु' १८ वीं सदी में तिरुमल के शिखर पर उदित कांतिमय शुक्र तारा है।

विनीत

आचार्य के.जे.कृष्णमूर्ति

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

भूमिका (अवतारिका) ... v-xxi

प्रथम आश्वास ... 01-49

अवतारिका ... 01

इष्टदेवता स्तुति ... 01

पूर्व कवि वंदन ... 01

कवयित्री की विनति ... 01

वेंकटगिरि नगर वर्णन ... 03

षष्ट्यांत ... 05

कथा-क्रम

नैमिशारण्य ... 05

शौनकादि के प्रश्न ... 06

सूत मुनि का समाधान ... 06

ब्रह्म का दिन और रात ... 06

श्वेतवराह स्वामी का अवतरित होना ... 07

वराह स्वामी के द्वारा गरुड को वैकुंठ भेजना ... 08

गरुड के द्वारा श्रीमहालक्ष्मी को स्वामी की आज्ञा को सुनाना... 09

श्री लक्ष्मी के संवाद ... 10

गरुड के द्वारा क्रीडाद्री को लाना ... 11

वराह स्वामी का क्रीडाचल पर बसना ... 12

ब्रह्म-इंद्रादि स्वामी की स्तुति करना ... 12

श्रीहरि और लक्ष्मी के वार्तालाप ... 14

स्वामी पुष्करिणी का प्रभाव	... 15
वराह देव की विहार लीलाएँ	... 17
ब्रह्म देव की विनति	... 17
वेंकटाद्रि के विविध नाम	... 18
मुनियों की यज्ञ-शाला	... 22
लक्ष्मी का कामिनी के रूप में वेश धारण करना	... 23
श्रीहरि का विट के रूप में वेश धारण करना	... 24
विप्र जनों की ऊहाएँ	... 25
विप्रों का श्री हरि से संवाद	... 26
श्री हरि के द्वारा 'वप' को ग्रहण करना	... 27
कुमारधारा की महिमा	... 28
शंखणराजु का वृत्तांत	... 29
आत्माराम का इतिहास	... 32
सप्तदश तीर्थ	... 36
कपिल तीर्थ	... 36
चक्र तीर्थ, विश्वक्सेन तीर्थ	... 37
पंचायुध तीर्थ, अनल तीर्थ	... 37
ब्रह्म तीर्थ, सप्तर्षि तीर्थ	... 37
पांडव तीर्थ	... 38
जराहरादि तीर्थों की महिमाएँ	... 39
वेंकटाद्रि का युगयुगों में कांतिमान होना	... 40
श्रीराम का वेंकटाद्रि पर पधारना	... 41
वानर वीरों के विहार	... 43
वैकुंठ गुफा की महिमा	... 44

कपि वीरों के द्वारा परम पुरुष का दर्शन करना	... 45
रामचंद्र की रम्योक्ति	... 46
आश्वांत	... 48
द्वितीय आश्वास	**... 50-82**
शौनकादि के प्रश्न	... 50
सूत का समाधान	... 50
इंद्रादि देवतागण और मुनियों का क्षीर सागर जाना	... 51
वैकुंठ मार्ग से नारद का आगमन	... 51
इंद्रादि का सत्यलोक को जाना	... 52
ब्रह्म-इंद्र आदि का वेंकटाद्रि पर आना	... 55
दशरथ का वेंकटाद्रि पर आना	... 55
दशरथ स्वामी पुष्करिणी के तट पर सत्कर्म निष्ठा में जुटे मुनिवरों के दर्शन करना	... 57
ब्रह्म के ध्यान-योग में लीन रहना	... 58
दिव्य विमान का साक्षात्कार होना	... 60
श्रीमन्नारायण का ब्रह्मादि को प्रत्यक्ष होना	... 61
ब्रह्मादि के द्वारा श्रीमन्नारायण की प्रार्थना करना	... 62
श्री हरि के वात्सल्य वचन	... 63
हर के द्वारा हरि से विनति	... 65
दशरथ के द्वारा श्री हरि की स्तुति करना	... 66
श्रीहरि के द्वारा दशरथ को वरदान देना	... 67
ब्रह्म के द्वारा प्रकटित कामनाएँ	... 68
ब्रह्मोत्सव क्रम	... 71

ब्रह्म के द्वारा रथोत्सव का निर्वहण ... 73
श्रीनिवास के दिव्य वाक् ... 75
श्रीहरि के द्वारा ब्रह्मादि को विदाई देना ... 78
श्रीहरि के द्वारा दिया गया संदेश ... 79
फलश्रुति ... 81
आश्वांत ... 81

तृतीय आश्वास ... 83-140

चक्रराज के द्वारा अष्टदिशाओं के चोर समूहों पर विजय प्राप्त करना (चक्रराज की दिग्विजय यात्रा)... 83
श्रीनिवास स्वामी के लीला-विनोद ... 94
श्री वैष्णव धर्म ... 98
निष्काम कर्माचरण-ब्रह्म सायिज्य ... 102
ब्रह्म के द्वैत रूप (ब्रह्म और जीव) ... 102
योग मार्ग का क्रम (अष्टांग योग) ... 103
मंत्रयोग विधान - सप्त कमल ... 112
लय योग विधान ... 114
हठयोग विधान ... 114
निश्चलानंद सिद्धि ... 117
राज योग (सूक्ष्म अष्टांगयोग पूर्वक) ... 121
1. सांख्य योग ... 122
2. तारक योग - लक्ष्य त्रय ... 122
3. अमनस्क योग (शांभवी मुद्रा) ... 124
राज योगी का अपूर्व अनुभव ... 124

मंत्र, लयादि योगों का अनुभव क्रम ... 126
राज योगी के लक्षण ... 127
राज योगी - आत्म यज्ञ ... 128
तामस शिष्य का स्वभाव ... 129
सच्चिश्य का स्वभाव ... 129
श्री वेंकटेश्वर के अष्टोत्तर शत स्तोत्र का प्रभाव ... 131
नैमिशारण्य मुनियों का वेंकटाद्रि पधारना ... 132
मुनियों से स्वामी का संवाद करना ... 135
मुनीश्वरों के द्वारा वेंकटेश्वर की स्तुति करना ... 137
मुनियों का नैमिशारण्य लौटकर सूत की स्तुति करना ... 138
सूत के द्वारा किया गया मंगलशासन ... 139
आश्वासांत ... 140

चतुर्थ आश्वास ... 141- 212

इष्ट देवता स्तुति ... 141
कवयित्री की विनति ... 142
कथा क्रम : ... 142
शौनकादि के प्रश्न ... 142
शतानंद मुनि का पधारना ... 143
जनक और शतकानंद का संभाषण ... 143
वृषभाद्रि (कृत युग) ... 145
अंजनाचल (त्रेता युग) ... 148
शेषशैल (द्वापर युग) ... 149
वेंकटाचल (कलियुग) ... 156

जनक के द्वारा वेंकटाद्रि के दर्शन करना ... 161
श्री वेंकटेश्वर का फिर से वैकुंठ पहुँचना ... 162
नारद के द्वारा ब्रह्म से बात करना ... 163
नारद के द्वारा यज्ञ करनेवाले मुनियों से प्रश्न करना ... 164
भृगु के द्वारा त्रिमूर्तियों की परीक्षा लेना ... 165
लक्ष्मी श्री हरि से प्रणय कलह करके कोल्हपुर पहुँचना ... 167
विष्णु देव की चिंता ... 170
श्री हरि का फिर से वेंकटाद्रि पर लौटना ... 170
ब्रह्म और रुद्र का गाय और बछड़ा बन जाना ... 171
चोलराज की पत्नी गोप को डांटना ... 173
चोल राज का पश्चाताप ... 175
वाल्मीक एवं तिंत्रि वृक्ष का प्रभाव ... 177
वराह स्वामी और श्रीनिवास के संवाद ... 178
वकुला मालिका का वृत्तांत ... 181
आकाश राज का चरित ... 181
तोंडमान का चरित ... 183
पद्मावती का उदय ... 184
पद्मावती देवी का वन विहार ... 187
पद्मावती से नारद का संभाषण ... 189
श्रीनिवास का आखेट पर जाना ... 190
श्रीनिवास के द्वारा पद्मावती को देखना ... 192
श्री हरि के द्वारा अपने वृत्तांत को पद्मावती की सखियों को सुनाना ... 194
पद्मावती का श्रीनिवास से बहस करना ... 195

पद्मावति के द्वारा हरि पर पथराव कराना ... 197
विरह तप्त श्री हरि का वकुला माता के द्वारा परमार्श करना ... 198
श्री हरि के द्वारा अपनी चिंता को वकुला से बताना ... 201
राम कथा को हरि वकुला को सुनाना ... 203
नारायण पुर वर्णन ... 207
वकुला के द्वारा नारायण पुर जाना ... 208
आश्वासांत ... 210

पंचम आश्वास ... 213-285

शौनकादि का प्रश्न ... 213
सूत का समाधान ... 213
हरि का भीलनी बन जाना ... 213
भीलनी का राज महल की सखियों से बात करना ... 214
भीलनी के द्वारा (हरि) धरणी देवी को भविष्य बताना ... 215
भीलनी के वाक्य ... 217
धरणी देवी पद्मावती (पुत्रिका) से संभाषण करना ... 220
वकुला मालिका के द्वारा धरणी देवी से बात करना ... 222
आकाश राज श्रीनिवास के पास विवाह पत्र भेजना ... 225
श्रीनिवास स्वामी का जवाब ... 228
वकुला मालिका के द्वारा वेंकटेश्वर को शुभ समाचार देना... 228
ब्रह्म, इंद्र आदि का सपरिवार विवाह के लिए पधारना ... 230
हरि सिरि के बारे में सोचकर चिंता करना ... 233
कोल्हापुर वासिनी लक्ष्मी को सूर्य भगवान ले आना ... 234
श्री हरि लक्ष्मी से संभाषण करना ... 235

मंगल स्नान और श्रृंगार करना ... 237
कुल देवता की पूजा करना ... 241
श्री वेंकटेश्वर के द्वारा कुबेर को ऋण पत्र लिख कर देना ... 242
वेंकटाद्रि पर प्रीति भोज ... 244
सायंकाल का वर्णन ... 245
चंद्रोदय का वर्णन ... 246
सूर्योदय का वर्णन ... 248
वेंकटेश्वर का ब्रह्मादि के साथ विवाह के लिए निकलना ... 249
वैभवपूर्ण ढंग से वर पूजा करना ... 251
पद्मावती वेंकटेश्वर का विवाह ... 252
विवाह का महा भोज, उत्सव-शोर, शोभा यात्रा ... 254
विदाई - उपहार प्रदान करना ... 256
धरणी देवी की विनति - श्री लक्ष्मी का समादर ... 258
विवाह के बाद श्रीनिवास का सपरिवार अगत्स्य आश्रम पर जाना ... 259
वसुदान और तोंडमान का युद्ध ... 262
तोंडमान और वसुदान के पश्चाताप ... 264
राज्य के बंटवारे को सुलझाना ... 265
तोंडमान चक्रवती को श्री वेंकटेश्वर के द्वारा विश्व रूप को दिखाना ... 266
गोपिनाथ और रंगदास ... 268
तोंडमान के द्वारा मंदिर का निर्माण कराना ... 270
श्रीनिवास के द्वारा पद्मावती समेत आनंदनिलय में प्रवेश करना ... 271
कूर्म का वृत्तांत ... 273

श्रीनिवास के द्वारा (कुलाल) भीम को साइज्य प्रदान करना ... 277
श्रीहरि के तोंडमान को सारूप्य प्रदान करना ... 278
स्वयं व्यक्त अर्चा विग्रह स्वरूप श्री वेंकटेश्वर ... 281
जयमंगल ... 283
आश्वांत ... 283

षष्ठाश्वास ... 286-335

इष्ट देवता स्तुति ... 286
कवयित्री की विनति ... 286
कथा का आरंभ ... 287
शौनकादि के प्रश्न ... 287
सूत का समाधान ... 287
वेंकटेश्वर के द्वारा पद्मावती से अपनी चिंता के बारे में बताना ... 288
पद्मावती की ललितोक्ति ... 290
लक्ष्मी का पाताल लोक जाना ... 291
लक्ष्मी को लेकर हरि का कोल्हापुर में तप करना ... 292
अशरीर वाणी के वचन ... 293
अशीर वाणी की बातों के अनुसार स्वामी के द्वारा पद्म सरोवर के तट पर निष्ठा के साथ तप करना ... 294
तप में विघ्न डालने के लिए इंद्र का असफल यत्न करना ... 295
स्वामी के द्वारा विश्वमोहिनी का स्पर्श करना ... 297
हरि के बारे में सोचकर पद्मावती की चिंता करना ... 298
लक्ष्मी और कपिल मुनि का संवाद ... 299

व्यूह लक्ष्मी के द्वारा हरि को दिव्य कमल पर दर्शन देना ... 304
ब्रह्मादि की विनति पर व्यूह लक्ष्मी के द्वारा एक
शुभ लग्न में वेंकटेश्वर के वक्ष पर अलंकृत होना ... 306
आनंद निलय में लक्ष्मी वेंकटेश्वर के विनोदमय संभाषण ... 309
शुक मार्तांड संवाद ... 313
छाया शुकोत्पत्ति ... 315
शुक के द्वारा सूर्य तत्व का विवरण देना ... 316
वीर लक्ष्मी का वृत्तांत ... 319
वीर लक्ष्मी का पाताल से निकल कर महावैभव के साथ
शुकाश्रम में प्रवेश करना ... 320
वीरलक्ष्मी और वेंकटेश्वर के संभाषण ... 322
बलराम कृष्ण के संवाद ... 323
श्रीनिवास को ब्रह्मादि के द्वारा समर्पित कालक्रम विधियाँ ... 325
अष्टादश पुराणों की प्रशंसा ... 328
पुण्य जीवों को प्राप्त होनेवाले सद्गति क्रम ... 329
वटपत्र शयन का वर्णन ... 333
शुभमंगल ... 334
आश्वांत ... 334

* * *

श्री वेंकटाचल की महिमा

अवतारिका

इष्ट देवता स्तुति

काव्यारंभ में कवयित्री मातृश्री तरिगोंड वेंगमांबा ने अपने इष्ट देवताओं की स्तुति की है। इसमें तरिगोंड शेषकुधराक्ष स्वामी प्रप्रथम हैं, बाद में आदिलक्ष्मी, श्री विघ्नेश्वर, ब्रह्म, शिवादि, अक्षर शारदा, सरस्वती, अक्षर मातृकाएँ, कुल देवी चौडमांबा, हयग्रीव, अनंत, गरुड, विश्वक्सेन, गोविंद राजु, श्री राम, श्री कृष्ण, वराह मूर्ति, वेंकटाचलपति, तरिगोंड नरसिंह, नवग्रहादि की वंदना की है। इन देवताओं का वर्णन अत्यद्भुत है।

पूर्व कवियों की वंदना

प्राचीन तेलुगु कवियों की तरह वेंगमांबा ने भी काव्यारंभ में अपने पूर्व कवियों की विनम्र वंदना की है। आदि कवि वाल्मीकी को, व्यास भगवान को, कालिदास कवि को, श्रीवेंकटेश्वर से वर प्राप्त करनेवाले अन्नमाचार्य को, तेलुगु में आदि कवि के रूप में गौरव प्राप्त करनेवाले नन्नया को, तिक्कना को, पोतराजु को इनसे अलग सुकवियों को, पंडितों को और पौराणिकों को भक्ति से नमस्कार कर रही हूँ।

श्रीनिवास के चरणों में समर्पण करके मुक्ति की कांक्षा रखनेवाली मैं 'वेंकटाचल माहात्म्य' के वैभव को छंदोबद्ध पद्यों में रच रही हूँ।

कवयित्री की विनति

काव्य लेखन के पहले कवयित्री ने पंडितों और जनता से विनम्र विनति की है। हे पंडितगण, हे जन अब मेरी बाल भाषा का विरोध न करते हुए सुनिए। जैसे माता-पिताओं को अपने बच्चों की बातें बुरी नहीं

लगती हैं, वैसे ही आप मेरी भाषा की अशुद्धियों को पकड़ कर मेरी निंदा न करके काव्य को स्वीकार कीजिए। और भी आपको संदेह होगा कि तेलुगु में इतनी महाकृतियों के होते मेरी इस बाल कृति को क्यों पढ़ना है? ऐसा मत सोचिए।

जैसे मिठाई और पकवान खाने के बाद नमकीन खाया जाता है वैसे ही उन महाकृतियों को पढ़ने के बाद मेरी इस बाल कृति को अवश्य पढ़ेंगे, ऐसी आशा से मुझे क्षमा करके कृपया मेरे इस काव्य के बारे में सुनिए। मेरे काव्य के बारे में बताऊँगी कृपया सुनिए। राजीव लोचन, सत्करुणमूर्ति मुझमें बसे हुए हैं, ऐसे भक्ति भाव से योग क्रम से अत्यंत सुंदर ढंग से तेलुगु की रीति का पालन करते हुए अपनी कृति को प्रकट करूँगी।

अपने बचपन में मैंने गुरुओं के पास अक्षर भी नहीं सीखे हैं। तेलुगु के छंद शास्त्र की जानकारी लेकर दस पद्य भी सचमुच ही कभी नहीं सीखे हैं। काव्य, नाटक, अलंकार आदि शास्त्रों को पढ़ा भी नहीं है। पूर्व के इतिहासों को, तेलुगु में विस्तृत रूप से रचे काव्यों को पढ़कर कोई शोध कार्य भी नहीं किया।

सिर्फ तरिगोंड नरसिंह की आज्ञा से अपने को निमित्त बनाकर बताऊँगी। ढूँढ़ने पर भी इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है।

लकड़ी से बनी वीणा के बजने की तरह, गायक के गाने की तरह दयापूर्ण पुरुषोत्तम ही मेरी जीभ पर लास्य करते हुए लिखवा रहे हैं। लेखनी तो मेरी है किंतु लिखनेवाली मैं नहीं हूँ। वे तो पुरुषोत्तम हैं। द्विपद छंद में रचा यह भागवत पुराण भी उन्हीं का है। यहाँ कवयित्री ने तेलुगु के महाकवि पोतना का स्मरण किया है। उन्होंने भी द्वादश स्कंधो में

भागवत को रचकर अपने इष्टदेव रामचंद्र को समर्पित किया। और लिखवाने की प्रेरणा उन्हीं की बतायी है। वैसे वेंकटाद्रि की महिमा को मैं इस धरती पर पद्य काव्य के रूप में रचकर श्रीनिवास को ही समर्पण करना चाहती हूँ। मक्खी के सागर लांघने की तरह मेरे इस दुस्साहस पर शायद पंडितगण हँसेंगे! मुझ पर हँसने पर भी अत्यंत उन्नत रूप से श्रीवेंकटेश्वर के निवास स्थल वेंकट गिरि पुर (आज का तिरुमल तीर्थ) का थोड़ा वर्णन करूँगी।

वेंकटगिरि नगर वर्णन

बड़े-बड़े गोपुर, प्राकारों से बने मंडप, अनेक रथ, पवित्र पुण्य तीर्थ, कमलों की किरणों से शोभित सोने के शिखर, पवित्र परिवार देवतालय, अत्यंत महिमावाले विरक्ति को जगानेवाले मठ, युद्ध में कोलाहल करनेवाले हाथी, घोड़े, अत्यंत सुंदर दिखनेवाली साधु गायें और भी सुंदर तुतली में बोलनेवाले तोते, नील कंठ पक्षीगण, विस्तारित लता-वितान, फलों के वृक्ष, तुलसी आदि पौधे, अनेक कुसुम आदि से वेंकटगिरि नगर लदलदा है।

इसके अतिरिक्त वेद, पुराण, शात्रादि की विद्या से भरपूर विवेकवान विप्रजन, महनीय सत्य, धर्म, पराक्रम आदि से संपन्न बलवान राजागण, रमणीय कृषि करनेवाले कृषक, गोरक्षा और वाणिज्य करनेवाले संपन्न वैश्यगण, ब्राह्मणों की बहु सेवा करके विनम्र रहनेवाले शूद्रजनों से वेंगटगिरि नगर भरा था।

इसके अतिरिक्त लंबी व सीधी गलियाँ, अनेक श्रृंगार वन, अनेक मंदिर, कमलों से भरे सरोवर आदि के होते वेंकटगिरि नगर पृथ्वी पर अत्यंत कीर्तिवान बन गया था।

भूवराह स्वामी के पूरब दिशा में, श्रीनिवास मंदिर की ईशान दिशा में स्पटिक-कांतिमय सीढ़ियों के बीच में मरकत-कांति से सुशोभित श्री स्वामी की पुष्करिणी है। जन-जन के पापों को दूर करनेवाला है। तीर्थ यात्रा करनेवाले यात्री देश-काल के अनुसार संकल्प करके यहाँ दान करते हैं। उन्हें धर्म-शास्त्र विधि से दान करवाकर धनार्जन करनेवाले पंडितगण भी हैं। तीर्थ स्नान के उपरांत यात्री हरि को अपनी मनौतियों को समर्पण करते हैं।

पुष्करिणी की पश्चिम दिशा में भूवराह स्वामी की खिड़की के पूरब में मंच पर अत्यंत भक्ति के साथ निरंतर जप-तप कुछ ब्राह्मण करते थे।

मालव, नेपाल, मलयाल, बंगाल, चोल, कोंकण, सिंधु, शुरसेन, सौवीर, कुंतल, शक, कलिंग, किरात, कोसल, कैकेय, कुकुर, सालुव, द्रविड, पुलिंद, विदर्भ, महाराष्ट्र, बर्बराभीरांध्र, पांड्य, मगध, कांभोज, कोंकण, काश्मीर आदि देशों से भक्त वेंकटाचल पहुँचकर पुष्करिणी में डुबकी लगाकर भूवराह देव के दर्शन करके श्री वेंकटेश्वर के दर्शन करके अपनी मनौतियों एवं संपदाओं को समर्पित करके अत्यंत संतोष के साथ लौटते हैं। वे वेंकटगिरि में रहते समय गाते-खेलते आनंद का अनुभव करते थे।

इसके अतिरिक्त पंकजों, विविध फूलों, फलों की गंध से, मृगादि की मद-गंध से कूपर-सांभ्राणी के सौरभ से, केवड़ों की गंध से, जवादी तेल की गंध से वेंकटगिरि नगर सर्वथा गंध-विकीर्ण करता था।

वह नगर दिव्य तटाकों से सुशोभित, कुंभादि मध्य में, विमान के मध्य में उत्तम पुरुष, महात्मा बनकर संपदाओं से भरे, धरती पर सबसे महोन्नत बनकर सदा लक्ष्मी समेत श्री वेंकटेश्वर विराजमान रहा करते हैं।

उस महात्मा के चरित को लेकर अनेक मुनियों के द्वारा संस्कृत में रचित ग्रंथों का अनुसरण करते हुए नरसिंह की आज्ञा से मैं तेलुगु में अत्यंत भक्ति से पद्य काव्य रचूँगी।

षष्ट्यांत

हेमाक्षांतक को, संग्राम-भयंकर, अखिल कारण को, श्री भूमि वराह स्वामी को, अमित फल देनेवाले करुणानिधि को, अक्षीण, शौर्य, धैर्य, हिरण्याक्षादि राक्षसों का संहार करनेवाले, अतिकोप उग्र रूपी कमलनयन को, अतिघोर सटाझटाधारी जलाधर को, राक्षसों का निवारण करनेवाले हरि को, क्षीरांबुनिध लक्ष्मी के हृदय को जीतनेवाले दुरंधर को, हार, हर, हीर, दर, शर, सारद, नारद, विभा, विभव गात्रवाले को, प्रेम से प्रह्लाद का उद्धार करनेवाले शांतमूर्ति को, भक्तों के क्लेश-कलुष को दुर करनेवाले श्री हरि को, श्री तरिगोंड नरसिंह को, वेंकटगिरि नायक को, पंकजभव जनक को, परमात्मा को शंकर-वर मित्र को, कलंकरहित को, मोक्ष प्रदान करनेवाले लक्ष्मी पति को समर्पित 'श्री वेंकटाचल माहत्म्यम' काव्य का कथा-क्रम इस प्रकार है।

कथा क्रम

नैमिशारण्य

जंबीर, मंदार, सहकार, मालूर, साल, रसाल, वट, बिल्व, बदरिक, अश्वत्थ, चंदन, कुंद, तक्कोल, नारियल, खजूर, नारंगी, बंधूक, पारिजात, अशोक, कादंब, कांचन, करवीर, पुन्नाग, मधूक आदि बहु वृक्षों से भरा, विविध लताएँ, फूलों और फलों से लबालब लदकर, सर्वकालों में वंसत ऋतु की तरह ही नैमिशारण्य में सदा सुशोभित थीं। झरनें, कमलों से भरे सरोवर, सारे सरोवर जल से भरे हुए थे, सभी कालों में एक जैसा लग रहे थे सुधि जनों की सेवा के लिए।

शौनकादि के प्रश्न

ऐसे नैमिशारण्य में शौनकादि मुनिगण ने सूत मुनि से सारे पुराणों का प्रवचन सुन कर एक शुभ दिन सूत को देखकर 'भूलोक में एक सौ आठ तिरुपति हैं, उनमें श्रीरंगम, श्रीमुष्णम, तोताद्री, सालग्राम, नैमिशम, बदरिकाश्रम, कांचीपुरम, वेंकटाचलम ये आठ स्वयंव्यक्त तीर्थ हैं, इनमें सबसे सकल इष्ट-प्रदायी तीर्थ कौन-सा है? बताइए।' प्रश्न किया। और भी उन्होंने इस रूप में प्रश्न किया।

'अत्यंत मुग्ध-बृहद अर्चारूपधारी नारायण के भूतल में भक्तों का उद्धार करनेवाले प्रचलित तीर्थ की कथा को हमें आप सुनाइए, हे सूत जी!'

सूत जी का समाधान

शौनकादि मुनियों के प्रश्न को सुनकर सूत जी हँस कर ''बहुत अच्छा। आपने लोकहितकारी सवाल किए। कथा सुनाने से और सुनने से लक्ष्मी का वरदान हम सबको प्राप्त होगा। इसलिए मैं बहुत आनंद से वह कथा सुनाऊँगा। 'हे मुनिगण, शांत मन से अत्यंत संतोष के साथ कथा सुनिए। वेद व्यास की कृपा से जो कुछ मेरे पास है मैं सुनाऊँगा, उस परमात्मा की कथा को हे मुनिगण! सुनिए। स्वयं व्यक्त तीर्थों में वेंकटाचल बहु फलदायक और पवित्र तीर्थ है। श्वेतवराह कल्प में वर्णित इस पुण्य तीर्थ के वृत्तांत को मन लगाकर सुनिए।'

ब्रह्म का दिन और रात

नारायण स्वामी के नाभि कमल से ब्रह्म का जन्म हुआ। सृष्टि के सृजन क्रम में उन्होंने अशेष प्राणियों समेत संसार का सृजन किया। अत्यंत निपुणता से चारों युगों में अत्यंत सावधानी के साथ विश्व का

निर्माण किया। तब सूर्य-चंद्र, सागर आदि अपनी सीमाओं में विचरण करते थे। अपनी महिमा से चतुर्दश मनुओं के रूप में विष्णु भगवान के विश्व भर पालन करने से ब्रह्म के लिए एक दिन पूरा हो गया। रात होते ही ब्रह्म सो गए। ब्रह्म के रात को सो जाने से सूर्य उग्र रूप धारण करके अपनी किरणों से विश्व को जलाने लगे। तब स्थावर जंगम सारे प्राणी हताहत हुए। मानो प्रलय ही आ गया, ऐसा वायु आकाश से भीकर रूप में बहने लगी। मेघ संवर्त रूप धारण करके आकाश में गर्जन करने लगे। बिजली चमकने लगी। धरती के कांपने की तरह मूसलधार वर्षा होने लगी। धरती पानी से भरकर धारण करने की स्थिति समाप्त होने से पानी में डूबने लगी। तब हिरण्यलोचन स्वामी प्रकट हुए।

श्वेत वराह स्वामी का अवतरित होना

श्वेत वराह स्वामी धरती को रसातल से ऊपर उठाकर वहीं कई दिन क्रीड़ा करने लगे। तब फिर ब्रह्म जाग गए। फिर हरि ने पुनःसृष्टि करने के लिए तैयार होकर श्वेत वराह स्वामी का रूप धारण किया। महाजल के अंदर पैठकर रसातल में डूबी धरणी को ऊपर उठाते समय हिरण्याक्ष ने उनका विरोध किया। युद्ध के लिए ललकारा। उसने वराह स्वामी के साथ घोर युद्ध किया। उस युद्ध में स्वामी ने हिरण्याक्ष के सर को अनेक टुक्रडों में तोड़ दिया। तब सागरों का पूरा जल रक्तवर्ण में बदल गया। तब उस जल को देखकर लोकवासी भयभीत होकर निज योग दृष्टि से समझ लिया कि यह सब कोप रूप धारण करनेवाले वराह स्वामी के कारण है। उनके इस रूप को शांत करने के रास्ते ढूंढ़ते समय श्वेत वराह स्वामी ने अपने दांतों से पृथ्वी को ऊपर उठाकर लोकवासियों की रक्षा की है। तब इंद्रादि देवताओं ने इस दृश्य को देखकर वराहस्वामी की वंदना की है।

भेरी, मृदंग आदि वाद्य बजाकर उनका जय-जयकार किया। फूलों की वर्षा करवायी। अनेक प्रकार से विनति करते हुए इस रूप में कहा--

''हे हरि! वराह रूपधारी स्वामी! भयंकर राक्षस का संहार करके धरती को यहाँ पर लाकर आप ही पानी पर फिर से धरती को खड़ा कीजिए। यह विनति सुनकर वराह स्वामी ने हर्ष के साथ अपने हाथों से महाजलों को रोक कर पानी पर धरती को खड़ा किया। लोकवासियों के साथ-साथ इंद्र की विनति को स्वामी ने इस रूप में पूरा किया। फिर सारे देवताओं को अपने-अपने स्थानों को लौट जाने की आज्ञा देकर, ब्रह्म की तरफ देखकर उन्हें जगा कर पहले की तरह सृष्टि रचने की आज्ञा दी। सारे देवताओं को विदा किया। फिर अपनी ओर श्रद्धा से देखनेवाले पक्षेंद्र गरुड से इस रूप में कहा।''

वराह देव के द्वारा गरुड को वैकुंठ भेजना

''धरणी के पानी में डूब जाने केकारण उसे बचाने के लिए मैंने इस उग्र रूप को धारण किया। मेरे इस रूप पर मोहित होकर भूदेवी ने कामना प्रकट की है। मैं भी भूदेवी के रूप लावण्य से मोहित हो गया। इस रूप में लक्ष्मी मुझ से प्रेम नहीं करेगी। हे खगेंद्र! मेरे इस भयंकर भीकर रूप को देखकर, कठोर उग्र बातें सुनकर लक्ष्मी शायद भयकंपित हो जाएगी। मुझे देखना भी पसंद नहीं करेगी। इसलिए मैं किस रूप में वैकुंठ आ सकता हूँ? परिहास में लक्ष्मी मुझे देखकर 'आप कौन हैं?' ऐसा सवाल भी कर सकती है। तब मुझे अपने को विष्णु बताने में लज्ञित होना पड़ेगा। इसलिए मैं वहाँ पर नहीं आऊँगा। किसी भी रूप में भूदेवी को छोड़ कर मैं नहीं आ सकता।'' वराह स्वामी की बातें सुनकर गरुड ने उनसे कहा। ''हे देव! धरणी की रक्षा करने के लिए राक्षस का संहार करने अत्यंत अद्भुत ढंग से आपने इस रूप को धारण किया है। आपके

इस कृत्य से सारे देवताओं ने आपकी स्तुति की है। इसलिए संदेह न करके आप शीघ्र ही पधारिए। संदेह मत कीजिए देव! मैं आपकी वंदना करता हूँ। आपकी अनुयायिनी बनकर माँ लक्ष्मी सदा आपके वक्षस्थल में ही रहेंगी। आपके इस सूकर रूप को देखकर भी उन्हें भय नहीं होगा। हे महात्मा! आप ऐसा मत सोचिए। आप सर्वज्ञ हैं, आपको क्या नहीं मालूम? अपनी ओर से सोच कर मैंने यह विनति की है देव! अब आपको मन में जो आयेगा आप ही निर्णय कर लीजिए। जगत के लिए भी वही हितकारी होगा।'' ऐसा गरुड ने पुनः स्वामी को नमस्कार करते हुए विनति की।

फिर वराह स्वामी ने गरुड की ओर करुणा दृष्टि से देख कर कहा। ''हे महाशक्तिवान! खगेंद्र! अब मैं वहाँ नहीं आऊँगा। धरती पर रहनेवाले दानवों का संहार करके शिष्ट जनों की रक्षा करूँगा। अब तुम शीघ्र ही वैकुंठ पहुँच कर लक्ष्मी को यह समाचार देकर क्रीडाचल को उठाकर यहाँ पर ले आओ। अब तुम निकलो।'' तब गरुड ने स्वामी को नमस्कार करके वैकुंठ का रास्ता नापा।

इधर वराह स्वामी ने बसने के लिए धरती पर अपने लिए अनुकूल प्रदेश खोज करना शुरु किया। चारों तरफ उन्होंने अनेक प्रदेश देखे। स्वामी तब गोदावरी नदी के दक्षिण में साठ योजनाओं से दूर पूरब में सागर से पश्चिम में पाँच योजनाओं से दूर दक्षिण में रहनेवाली सुवर्णमुखी के उत्तर में स्थित एक दिव्य स्थल को देखा। उन्हें वह अनुकूल लगा। तब वे गरुड के लौटने की प्रतीक्षा करने लगे।

गरुड के द्वारा श्रीमहालक्ष्मी को स्वामी की आज्ञा को सुनाना :

खगेंद्र गरुड ने वैकुंठ पहुँच कर रमा देवी को नमस्कार करके विनति करते हुए उनसे कहा। ''हे माई! श्री हरि ने महोग्र रूप धारण

करके दानव हिरण्याक्ष का संहार किया है। रसातल में पानी में डूबनेवाली धरती का उद्धार किया है। धरती को फिर से यथास्थान पर खड़ा किया। वहीं पर बसने का संकल्प भी किया। वहीं पर क्रीडाचल को लाने की आज्ञा भी दी है। इसलिए मैं उसे ले जाने यहाँ आया हूँ। कृपया उस पहाड़ को ले जाने की अनुमति दीजिए।'' तब लक्ष्मी ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। ''श्रीहरि के उस अद्भुत एवं वैभवपूर्ण रूप को मैं भी देखना पसंद करती हूँ। शीघ्र ही उन्हें यहाँ ले आओ।'' तब फिर करुणा से लक्ष्मी की वंदना करके गरुड ने फिर से कहा। ''मैंने बहुत विनयशील होकर उन्हें यहाँ बुलाया है। फिर भी उन्होंने भूदेवी को छोड़कर यहाँ नहीं आने की बात कही है। हे माई बहुत निष्ठुर होकर उन्होंने यह कहा। सूकर के उग्र रूप में रहनेवाले स्वामी को देखकर आप भयभीत हो जाएँगी, कहकर इनकार किया है।'' तब लक्ष्मी ने हँसकर गरुड़ से इस रूप में कहा।

श्री लक्ष्मी के संवाद

''मैं सदा उनकी अनुयाइनी हूँ। यह जानते हुए भी आश्चर्य की बात है कि उन्होंने इस रूप में क्यों कहा है? मुझे तो यह किसी की माया है, लग रहा है। उनके किसी भी रूप में रहने पर भी मैं भी उसी प्रकार का रूप धारण करके निश्चित एवं निश्चल मन के साथ उनके साथ रही हूँ। सदा उनके हृदय में बसी हूँ। आज उनका इस रूप में व्यवहार मुझे नया लग रहा है खगेंद्र! अगर वे यहाँ पर नहीं आना चाहते हैं तो मैं ही वहाँ जाकर उनके साथ आनंद से रहूँगी। धरती पर उनके महिमान्वित वक्षस्थल पर रहूँगी। इसके पहले भी कठोर प्रलय के समय मैं उनके वक्षस्थल पर ही रही। स्वामी के कूर्म रूप धारण करके सागर में डूबने पर भी मैं उनके हृदय में ही रही। अंगुष्ट मात्र लघु रूप में पत्ते पर शयन करते समय भी मैं उन्हीं के साथ रही। चंद्र और चांदनी के कभी अलग

नहीं होने की तरह मैं सदा उन्हीं के साथ रही। अब उनसे अलग कैसे रह पाऊँगी? किसी भी रूप में यहाँ के परिवार के लोगों के साथ वहाँ धरती पर उस उग्र रूपधारी स्वामी के वक्षस्थल पर ही रहूँगी। हे निर्मलात्मा! मुझे भी वहीं ले चलो। मोद से भूदेवी के साथ क्रीड़ा करनेवाले स्वामी के पास ही मुझे भी इस क्रीडाचल के साथ ले चलो।''

गरुड के द्वारा क्रीडाद्रि को लाना

लक्ष्मी इस रूप में गरुड से कह कर परिवार समेत अपनी सारी कलाओं को वैकुंठ में ही छोड़ कर सिर्फ एक कला के साथ क्रीडाचल पहाड़ पर चढ़ गयी। तब गरुड लक्ष्मी की आज्ञा का पालन करते हुए क्रीडाद्रि को जड़ से उखाड़ कर अपने सर पर लाद कर शीघ्र ही धरती पर उतरते समय क्रीडाद्रि पर रहनेवाली लताएँ हवा में झूमने लगी। फूलों की वर्षा होने लगी। सुवर्णगिरी पर नीलाद्रि की तरह सुवर्ण वेषधारी गरुड के सर पर क्रीडाचल बहुत अद्भुत लग रहा था। तब पूरा आकाश भी स्वर्णिम रंग से दिव्य कला से उद्दीप्त हुआ। चंदन, जंबीर, चंपक, वकुल आदि फूल-फल वृक्ष-लताओं से लद कर सुवर्ण, महारत्नों की कांति से सुशोभित उस उन्नत शिखरोंवाले क्रीडाचल को, नीलकंठ, मोर, शुक आदि विहंगों के कलरव से प्रतिध्वनित होनेवाले क्रीडाचल को, कमल-नीलकमल आदि पुष्पराजों की सुगंध से भरे क्रीडाचल को, अत्यंत ललित सिद्ध पुरुषों की मुक्ति का आधार क्रीडाचल को, लक्ष्मी की कांति से सुशोभित क्रीडाचल को देखकर श्वेतवराह स्वामी को बहुत आनंद हुआ। उनको आश्चर्य भी हुआ। ऐसा स्वामी ने मन में सोचा कि 'आश्चर्य है कि लक्ष्मी भी मेरे पास आ गयी है। क्रीडाचल के साथ वैकुंठ का परिवार भी आ गया। मुझे यहाँ पर अवश्य वैकुंठ जैसा ही आनंद प्राप्त होगा।'

वराह स्वामी का क्रीडाचल पर बसना

प्रसन्न चित्तवाले वराह स्वामी के पास आकर गरुड ने स्वामी के बताये स्थान पर क्रीडाचल को रखा। फिर स्वामी को दंडवत किया। तब वराह स्वामी अत्यंत प्रसन्न हुए। स्वामी क्रीडाचल पर चढ़ कर उसमें स्थित स्वामी पुष्करिणी की पश्चिम दिशा में बसे। तब ब्रह्म, रुद्र, देवतागण, दिक्पाल, मुनि-ऋषि, गरुड, गंधर्व आदि महात्मागण ने वहाँ पहुँचकर श्वेतवराह स्वामी के दर्शन किए। साथ ही उन्होंने सकल निगमागम शास्त्रों की विधि में अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की है। सभी ने आनंदभाष्प नेत्रों के साथ पुलकित होकर स्वामी के साष्टांग प्रणाम किये। सभी ने जय-जयकार करते हुए हाथ जोड़ कर श्रीहरि से इस रूप में कहा।

ब्रह्म-इंद्रादि स्वामी की स्तुति करना

दंडक : (ब्रह्म-इंद्र आदि देवताओं के द्वारा वराह स्वामी का स्तोत्र)

हे महा श्वेत वराह स्वामी! हे सत्क्रोड रूपा! हे बोध प्रदीपा! हे ब्रह्मांड के भूपाल! हे हिरण्याक्ष काठिन्य संहारा! हे सुराधारा! हे धात्री उद्धारा! हे धर्माद्रि धीरा! हे जगत चित्सारा भूता! हे भवांबुधिपातो! हे सुमोक्ष प्रदाता! हे पंचभूत प्रभु! हे श्रीकर! सुप्रसन्न होकर हमारी रक्षा करो! हे रमाधीश! आपके सत्प्रभावों की गिनती सहस्रों में है हम कैसे कर पायेंगे! आपके इस महा भीकर उग्र रूप को देखने में हम असमर्थ हैं। सामान्य मनुष्य आपके इस भीकर रूप को देखकर भयभीत हुए हैं। हे जगत्पिता! धरती का उद्धार करने अवतरित हुए। सदा शांत-सौम्य रूप में श्री भूदेवी समेत रहकर देवताओं एवं मनुष्यों के जीवन को धन्य बनाइए। सदा नित्य सेवाओं से आपके प्रति भक्ति दिखाने की कृपा कीजिए। सदा

अपनी दिव्य लीलाएँ दिखाते रहिए! इसी क्रीडाचल पर सदा बसिए! हे पूर्णकामा! हे पुरुषोत्तम! हे गुणोत्तम! हे देवोत्तम! हे देवतासार्वभौम! हे तरिगोंडधाम! हे नरसिंह! हे वराहावतार! नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमः!

ऐसा स्तोत्र करते सारे देवतादि ने अनेक प्रकार से वेदयुक्त रीति में स्वामी की स्तुति की। इससे प्रसन्न होकर वराह स्वामी दयासिंधु बने। ब्रह्मादि देवताओं को देखकर इस रूप में कहा। ''हे देवगण! राक्षस के संहार के लिए मैंने उग्र अवतार लिया। राक्षस का संहार किया। धरती को ऊपर उठाया, सागरों की रक्षा की। अब आप आनंद से अपने-अपने स्थानों पर जाकर पहले की तरह अपने-अपने कर्तव्यों को करते रहिए। ग्रह उपग्रह अपने स्थानों में पहले की तरह विचरण करते रहे। मैं सौम्य रूप में समुद्र तनया को अपने वक्षस्थल पर रखूँगा। सुंदर रूप में सभी भुवनों एवं मनुष्यों की रक्षा करता रहूँगा। सदा उनके काम्यार्थों की पूर्ति करता रहूँगा। उन्हें भवबाधाओं से मुक्त करूँगा।'' ऐसा कहते स्वामी ने उनको आज्ञा देकर विदा किया। महोग्र और विकृत वराह स्वामी ने सौम्य रूप धारण किया। इसके अतिरिक्त वरों की वर्षा उन पर बरसाकर शांत मन से क्रीडाचल में बसे।

क्रीडाचल पर स्वामी पुष्करिणी की पश्चिम दिशा में बसे स्वामी। उसी भव्य पुष्करिणी की वायव्य दिशा में चित्र-विचित्र मंडपों का निर्माण हुआ। दिव्य नीलस्तंभ नव्य मरकतकुंभ उन्नत मंडप भी बने। सूर्य किरणों से सुशोभित रत्न गोपुर और प्राकार दिवारें भी निर्मित हुईं। स्वामी के आलय के ऊपर विमान भी बना। वहाँ स्वामी भूदेवी और श्रीदेवी समेत बसकर धरती पर अत्यंत प्रचलित हुए।

ऐसे भू वराह स्वामी को देखकर ब्रह्म-रुद्र प्रसन्न हुए। ऐसे समय अचानक स्वामी विमान सहित अदृश्य हो गए। तब ब्रह्म-रुद्र जय-जयकार करते स्वामी के अदृश्य होने की दिशा को नमस्कार करके वराह स्वामी की प्रशस्ति की है। उसके उपरांत वे अपने निजी स्थानों पर चले गए। तद्पश्चात भूदेवी और श्रीदेवी ने अपने परिजनों के साथ मिलकर स्वामी को प्रणाम किया। उन्हें देखकर हरि ने लक्ष्मी से इस रूप में कहा।

श्रीहरि और लक्ष्मी के वार्तालाप

''हे लक्ष्मी! तुम मुझे देखकर भयभीत हो जाओगी समझ कर तुम्हें यहाँ पर बुलाने से दूर रहा। तुम्हारा करुणा से परिजनों के साथ यहाँ पर चले आना बहुत अच्छा हुआ।'' यह सुनकर लक्ष्मी ने इस रूप में कहा। ''हे स्वामी! आपको छोड़कर एक पल भी मैं कैसे दूर रह पाऊँगी। इसलिए इस धरती पर आ गयी हूँ। हमारी गलतियों को भुलाकर हमारा उद्धार कीजिए।'' यह सुनकर हँसते हुए स्वामी ने लक्ष्मी से कहा। ''पूरी धरती भर छान मारने पर मुझे यह स्थल अच्छा लगा। यहाँ बसने का मन हुआ। हे कोमली! यही हमारा वैकुंठ है। यहाँ के फलों के वृक्ष, फूलों की ये लताएँ, यहाँ के पुण्य तीर्थ, मुनियों के आश्रम मनुष्यों को मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। धरती के लोग इनसे धन्य हो जायेंगे। देखते-देखते मुझे भी बहुत संतोष होने लगा है। इसलिए मैं यहीं पर रह गया। भूलोकवासियों का उद्धार करने का काम बच गया। उसके लिए यहीं रहना अच्छा है। मेरे मन के अनुकूल और तुम्हारे मनोनुकूल यहीं पर हम रहेंगे।'' यह कहते स्वामी ने लक्ष्मी की सम्मति मांगी। यह सुन कर लक्ष्मी ने हंसते हुए स्वामी को देखकर इस रूप में कहा। ''आप सर्वज्ञ हैं। इसलिए आप जहाँ रहेंगे हम सब वहीं रहेंगे। हमें कोई चिंता नहीं है देव! आप ही की इच्छा

है देव!'' लक्ष्मी के इस रूप में कहने पर स्वामी ने लक्ष्मी को अपने वक्षस्थल पर धारण किया। तब वराह स्वामी पूर्ण कलापूर्ण बने। तब भूदेवी और श्रीदेवी समेत वराह स्वामी पृथ्वी पर बड़ी उदारता से राज करने लगे। विपुल पराक्रम राजाओं और भक्तों की निष्कपट भक्ति पाकर स्वामी लक्ष्मी समेत सुखी रहने लगे।

स्वामी पुष्करिणी का प्रभाव

सूत के द्वारा पुराण सुननेवाले शौनकादि ने सूत से इस रूप में कहा। ''हे स्वामी सूत! स्वामी पुष्करिणी के बारे में हमें बताइए।'' इस रूप में पूछने पर सूत ने उन दिव्य मुनियों से इस रूप में कहा। ''हे मुनिगण! वैकुंठ में रहनेवाले क्रीडाचल पर रहनेवाली पुष्करिणी में सुगंध-परिमल से भरा पानी सदा रहता था। वहाँ पर श्रीदेवी और भूदेवी के साथ स्वामी क्रीड़ा किया करते थे। वे स्वामी ही श्रीदेवी और भूदेवी के साथ क्रीडाचल पर बसने धरती पर उतर आये हैं। हरि के मनोनुकूल गंगादि नदियाँ यहाँ इस तीर्थ में अखिल जनों के पापों को दूर करने प्रवाहित हुई हैं। इसके अतिरिक्त यह पुष्करिणी सबके इष्ट कार्य भी पूरा करनेवाली है।

ऐसी स्वामी पुष्करिणी के दर्शन से और उसके जल को पान करने से स्त्री, शूद्र जनादि अपने जन्म को धन्य बना लेंगे। इसके अतिरिक्त नित्य नैमित्तिक स्नान संध्यावंदन करनेवाले ब्राह्मण भी इसमें स्नानादि करने से पुण्य प्राप्त करेंगे। इसके अतिरिक्त पुष्करिणी के स्नान के साथ-साथ एकादशी व्रत, सद्गुरु पाद सेवा आदि करने से विशेष फल प्राप्त होगा। ऐसा अवसर अन्यत्र दुर्लभ है। सकल स्थावर जंगम प्राणियों में मनुष्य जन्म अत्यंत दुर्लभ जन्म है। ऐसे मनुष्य जन्म में वेंकटाद्रि में रहते हुए पुष्करिणी में स्नान करना अत्यंत पुण्यप्रद है। इसलिए वेंकटाद्रि

माहात्म्य और पुष्करिणी के प्रभाव के बारे में बताना बहुत कठिन है। इसलिए संक्षेप में बताने की चेष्टा करूँगा। इसके इतिहास के बारे में बताऊँगा। ध्यान से सुनिए हे मुनिगण!'' सूत ने आगे इस रूप में कहा। ''पूर्व काल में तारकासुर का वध करनेवाले कुमार स्वामी को ब्रह्म हत्या करने का पाप लग गया। ब्रह्म हत्या के दोष से मुक्त होने के लिए शिव पुत्र कुमार स्वामी ने इसी पुष्करिणी में स्नान किया। अपने ब्रह्म हत्या पाप से मुक्त हो गए। इस पुष्करिणी की महिमा के बारे में सुनकर कुमार स्वामी ने शीघ्र ही वेंकटाद्रि पर पहुँच कर इस पुष्करिणी में स्नान करके वराह स्वामी के दर्शन करके उनकी प्रार्थना की। तब वे अपने पाप से मुक्त हो गये।

इसलिए वेंकटाद्रि में स्थित यह पुष्करिणी भयंकर पापों को भी दूर करनेवाली है। सारे पापों को पावन बनानेवाली पुष्करिणी है। इस धरती पर ऐसी पुष्करिणी दूसरी नहीं है। इसलिए सारे राजा और जन समेत सारे लोग पाप निवारण के लिए यहीं पर आते हैं। इस रूप में यह पुष्करिणी राजाओं से ही नहीं बल्कि रुद्र, शुक्र आदि देवताओं से भी सेवित है। इस रूप में यह सकल लोगों को श्रीकर और शुभकर बनी है। हरि कल्याण का यह गुण सदा यहाँ पर रहेगा। और बहुत कुछ कहने का मतलब भी यही है। एक ही पुष्करिणी है। हे पंडितगण! सुनिए! प्राकृत जनों को यह प्रकृति की तरह, पुण्यात्माओं को यह पुण्य तीर्थ की तरह दिखाई पड़ेगी।''

''ऐसी पुष्करिणी के तट पर वेंकटाचल में स्वामी वराह मूर्ति जनों को पुण्य दर्शन देते हैं। यह पर्वत ही अत्यंत महत्ववाला पुण्य स्थल है। इसमें कोई संदेह नहीं है। यह सत्य है।'' ऐसा कहनेवाले सूत को देख कर शौनकादि मुनियों ने इस रूप में आगे पूछा।

वराह देव की विहार लीलाएँ

''यह वराह देव उस पर्वत पर रहते क्या कर रहे थे? किन-किन को क्या दिया? सुनने की इच्छा पैदा हुई। हमें उसके बारे में बताइए। हे सूत!'' उनकी बातें सुनकर सूत ने इस रूप में कहा। ''वे महान वराह देव उस गिरि पर अत्यंत शोभायमान रूप से रहते, अपनी देवेरियों के साथ अत्यंत प्रसन्न थे। वन पुष्पों से प्रकाशवान, पौधे-झुरमुटों के बीच में क्रीड़ा करते, पर्वत सानुओं में विहार करते थे। क्रीडाचल पहाड़ पर सुगंध से भरे फूलों पर भ्रमरों की झुंड दावा बोलते, शीतल पर्ण कुटीर मंदिरों की तरह रमणीय लग रहे थे। फूलों के मकरंद से भरे पुष्पवाटिकाओं में स्वामी अपनी देवेरियों के साथ विहार लीलाएँ कर रहे थे। इसके अतिरिक्त स्वामी अधर्मी लोगों के पापों को दूर करते थे। इसके साथ ही धर्मचित्त पुण्य लोगों को सुख प्रदान करते थे। वैसे ये गुण श्रीहरि के नैसर्गिक गुण हैं। ऐसी जरुरत पड़ने पर धर्मकर्ता बनकर हरि सदा अवतार लेकर धरती पर आया करते थे।

रात होने पर बार-बार ब्रह्म के सो जाने से हरि सकल गुरु बनकर जागकर धरती की रक्षा करते थे। फिर ब्रह्म की नींद से जागने के बाद सृष्टि-कार्य को उन्हें सौंप कर अपनी सखियों से क्रीड़ा करते थे। हरि के मीन, वराहादि अवतार ऐसे क्रम में ही अवतरित हुए हैं।

वे इस क्रम में दुष्टों का संहार करके शिष्टों की रक्षा करते थे। ऐसे ही वराह कल्प में एक दिन ब्रह्म ने चक्री के पास जाकर उन्हें नमस्कार करके विनय के साथ इस रूप में निवेदन किया।

ब्रह्म देव की विनति

''हे श्वेत वराह रूपा! मेरी प्रार्थना को स्वीकार करके राक्षसों के संहार करने के लिए इस शेषगिरि पर्वत पर वास कीजिए। यहाँ पर

अत्यंत प्रसिद्ध होकर जनता की पूजाओं को स्वीकार कर लीजिए। युग-युगों तक मनुष्य आपकी पूजा-वंदना करते रहेंगे। हे तात! मेरी यह विनति स्वीकार कर लीजिए।'' ब्रह्म की इस विनति को सुन कर चक्री ने प्रसन्न होकर इस रूप में कहा। ''हे जलज संभव! आपकी इच्छा के अनुसार ही मैं अत्यंत विकृत एवं उग्र रूप में इस शेषाचल पर्वत पर बस जाऊँगा। आश्रित भक्त जनो की रक्षा करूँगा।'' यह सुनकर ब्रह्म विष्णु को नमस्कार करके लौट आये। श्वेत वराह स्वामी इसलिए शेषाचल पर प्रसन्न चित्त होकर निवास करते हुए भक्त जनों की रक्षा करते रहे।

इस प्रकार वैकुंठ, आदित्य मंडल, स्वर्ग में रहनेवाले हरि अत्यंत प्रसन्न चित्त से वेंकटाद्रि पर रहने के लिए तैयार हो गए।

वेंकटाद्रि के विविध नाम

सूत महर्षि की बातें सुनकर मुनियों ने सूत से आगे पूछा।''हे सूत! शेषाद्रि, क्रीडाद्रि, वेंकटगिरि आदि ये तीन नाम एक ही पहाड़ को कब क्यों दिये गए। इसके क्या कारण हैं। कृपया हमें बताइए।'' मुनियों की इस जिज्ञासा का समाधान करते हुए सूत ने इस रूप में कहा। 'हे मुनिगण! ये तीन ही नाम नहीं हैं। बल्कि धरती पर शेषगिरि के लिए निमित्त के अनुसार अलग-अलग नामकरण किये गये हैं। इसलिए वे सारे वृत्तांत मुझे प्राप्त ज्ञान और समाचार के अनुसार मैं बताऊँगा। कृपया सुनिए।'' सूत मुनि ने आगे उन्हें इस रूप में बताया।

चिंतामणी

जन-जन की चिंताओं को तथा उनकी मनौतियों को असीमित रूप से पूरा करते रहने से इस श्रीगिरि को चिंतामणी कहा गया है। मनुष्य

मात्र के मन में उत्पन्न होनेवाली इच्छाओं की पूर्ति यह पर्वत करता है। इसलिए इसे चिंतामणी कहा गया है।

ज्ञानाद्रि

ज्ञान से ही जन-जन सब कुछ प्राप्त करते हैं। इसलिए सबके मूलाधार ज्ञान प्रदान करनेवाला पर्वत होने के कारण इसका नाम धरती पर ज्ञानाद्रि रखा गया है।

तीर्थाचल

जन-जनों की कामनाओं को तथा धनादि को प्रदान करनेवाले अनेक तीर्थ इस पर्वत पर रहने के कारण यह पर्वत तीर्थाचल रूप में प्रसिद्ध हुआ है।

पुष्कर शैल

निष्काम से तप करनेवाले मुनियों को पर्याप्त जल प्रदान करनेवाले पुष्करिणियों के होने से धरती पर इस पर्वत का नाम पुष्कर शैल पड़ गया।

वृषभाद्रि

पूर्व यहाँ पर वृषभासुर नामक मुनि-कंटक राक्षस रहा करता था। उसने इस पर्वत पर तप किया था। इसलिए अवनि में इसका नाम वृषभाद्रि पड़ गया।

कनकाचल

मनुष्यों को अति सरल रूप में पहचानयुक्त इसके शिखर कनक वर्ण में कांतिमय दीखते हैं। इसलिए अवनि में इसका नाम कनकाचल पड़ा है।

नारायणाद्रि

पूर्व में नारायण नामक एक ब्राह्मण ने यहाँ तप किया था। इससे हरि संतुष्ट हुए। दर्शन भी दिये। उस बाह्मण के नाम से इसका नाम नारायणाद्रि पड़ गया।

श्री वैकुंठाद्रि

वैकुंठ में रहनेवाले क्रीडाचल को पक्षेंद्र के द्वारा लाये जाने के कारण इसका नाम श्री वैकुंठाद्रि पड़ गया।

नरसिंह गिरींद्र

नारायण के हिरण्याक्ष का संहार करके अपने भक्त प्रह्लाद का उद्धार करने का स्थल होने के कारण इसका नाम नरसिंह गिरींद्र पड़ गया।

अंजनाद्रि

संतान के लिए अंजनी देवी ने इस पर्वत पर तप किया। हनुमान को वर-पुत्र के रूप में प्राप्त किया। तब देवताओं ने अत्यंत प्रसन्न होकर इस पर्वत को अंजनाद्रि नाम दिया।

वराहाद्रि

पूर्व में यहाँ पर वराह समूह रहा करता था। श्रीहरि के वराहावतार धारण करने के बाद यही स्थल उन्हें अच्छा लगा। तबसे इसका नाम वराहाद्रि पड़ गया।

नीलाद्रि या नीलगिरींद्र

नील नामक एक मुनि पहले इस पर्वत पर निवास करते थे। उन्हीं के नाम से इसका नाम अवनी में नीलाद्रि या नीलगिरींद्र पड़ गया।

श्रीनिवास पर्वत

श्री के लिए वास स्थल बनकर, भूलोक में मनुष्यों के उद्धार के लिए हरि यहाँ पर श्रीनिवास के रूप में बसे। इसलिए अवनि में इस पर्वत का नाम श्रीनिवास पर्वत पड़ा है।

आनंदाचल

लक्ष्मी को हृदय पर धारण करके जन-जन को संपदाएँ देते हुए श्री नारायण आनंद से रहनेवाले इस पर्वत को आनंदाचल कहा गया है। स्वामी के मंदिर के मुख्यालय को आनंदनिलय भी कहा जाता है।

श्री सद्गिरि

श्री के साथ श्री हरि वैभवपूर्ण रूप से इस पर्वत पर वास करने के कारण अवनि में इसका नाम श्री सद्गिरि पड़ा है।

क्रीडाचल

श्रीहरि सिरि के साथ और उनके परिवार जनों के साथ आनंद से क्रीड़ा करने के कारण अवनि में यह क्रीडाचल के रूप में कीर्तिमान बन गया।

गरुडाद्रि

गुरुभारवाले इस पर्वत को गरुड वैकुंठ से धरती पर ले आये। इसलिए यह गरुडाद्रि के रूप में कीर्तिमान बन गया।

शेषाचल

शेषाकृति में रहते विशेष को प्राप्त करके सर्वशेषी भगवान को अपने ऊपर भूषण के रूप में ढोनेवाले पर्वत होने से यह शेषाचल नाम से लोक प्रचलित हुआ।

वृषाद्रि

अनेक धर्मों का मूलाधार और जन-जन को धर्म सिद्धि प्रदान करने के कारण धरती में इसका नाम वृषाद्रि पड़ा है।

वेंकटाद्रि

जन-जन के संकटों को दूर करते अमृततुल्य जीवन और संपदाओं को प्रदान करनेवाला पर्वत होने के कारण इसका नाम वेंकटाद्रि पड़ा है।

इस प्रकार से कल्प भेद से इस पर्वत को अनेक नाम प्राप्त हुए। उस पर्वत की महिमा के बारे में बताना-सुर-गुरु, चतुर्मखी, षड्मुखी, सहस्रमुखी लोगों के लिए भी संभव नहीं है। ऐसे पर्वत पर श्रीमन्नारायण वास करते रहे। ऐसे में इस गिरी के उत्तर भाग में एक दिन रमा समेत स्वामी श्रृंगार-विहार और विनोद करते समय एक घटना घटी।

मुनियों की यज्ञ-शाला

रमा के साथ विहार करनेवाले रमापति ने देखा कि तप करनेवाले कुछ मुनिगण अपनी पत्नियों के साथ उस वेंकटाद्रि पहाड़ पर दिखाई दिए। कंद, मूल, फल-फूलों के वृक्षों को, अनेक तीर्थों को उस पर्वत पर देखकर वे अत्यंत प्रसन्न हुए। वहीं पर सुख से रहने का संकल्प किया। कुटीर बनायी। अपनी कुटिरों में रहते यज्ञ करने वाले उनको लेकर हरि ने लक्ष्मी से इस रूप में कहा। ''हे जलाब्धि कन्या! निर्जन इस महास्थल में कुटीर बनाकर कोलाहल करनेवाले इनको देखकर अच्छा लग रहा है। इन पर अवश्य दया करनी चाहिए।'' संतोष के साथ आगे इस रूप में कहा। ''हे सती! देखो वे यज्ञशालाएँ, वे सद्शशालाएँ, यहाँ देखो अग्निशाला। हे सखि! वह हविर्भाग शाला, पत्नीशाला, यह जजमान शाला है वहाँ देखो। वह महानस गृह, वे अग्नि पात्र हैं, पशुओं को बांधकर

रखनेवाली वे पंक्तियाँ हैं, वे ऋत्विक हैं, ये नधर्वय हैं, वह सोमयाजी और वह सोमिदेवी है। अच्छी तरह देखो। सिरि! यह श्रौत कर्म करनेवाले सभी मुझसे ही पैदा हुए हैं। सवन स्वरूपी मेरे लिए अत्यंत प्रीति से वे यज्ञ करनेवाले हैं। इनकी कर्मनिष्ठा को आनंद से अब देखना चाहिए। यज्ञशाला पर जाकर उनके द्वारा किए जानेवाले यज्ञ करने की विधि को देखना चाहिए। हे चंद्रवदनी! चलो। इसके लिए तुमको वेश्या का वेश धारण करना पड़ेगा। अपने नटकटी व्यवहार दिखाते तुमको देखने मैं विट के रूप में वहाँ आकर यज्ञ कुंड के पास ब्राह्मणों के द्वारा भक्ति से हविस के समर्पण करते समय मैं उसे ग्रहण करूँगा। वहाँ मेरी प्रशंसा सुनते तुमको भी बहुत अच्छा लगेगा।''

कामिनी के रूप में लक्ष्मी का वेश धारण

श्रीहरि की बातें सुनकर लक्ष्मी ने मंदस्मित होकर कामरूपिणी के रूप में वेश बदल लिया। साथ ही नखरे करने लगी। उनका वेशधारण अतिसुंदर है। रेशमी लहंगा पहनी हुई है। उस पर सुवर्णिम रंगवाली चमकीली जरी से बनी हुई साड़ी पहनी है। मोतियों से जटित सुंदर रंगीली रेशमी चोली पहनी हुई है। कुच भार से कमर उसकी कांप रही है। कटिबंध बांधी हुई है। आंखों में सुरमा, शरीर भर चंदन लेप, ललाट पर कस्तूरी तिलक लगायी है। सर से नील कुंतल केश लटक रहे हैं। अपनी संपूर्ण कलाओं से वे गुड़िया जैसी सुंदर लग रही है।

सुंदर मोतियों से बनी नथ को माँग में लगायी है। कर्णफूल्ल, चोटी का आभरण, गले में पगड़ों की माला और भी अनेक कंठाभरण, कान, नाक, गला, भुजाओं में अनेक आभरण पहनी हुई है। उन आभरणों में रत्न, हीरे आदि जटित हुए हैं। सोने के कड़े, रत्नों से बनी वंकी, रत्नों से बने कंगन हाथों पर पहनी हुई है। सारे आभरण अपनी-अपनी कांति से

लक्ष्मी के पूरे शरीर को कांतिमय बना रहे थे। आभरणों से लदी लक्ष्मी का रूप मनमोहक था। पैरों में पायल पहनकर लक्ष्मी हंस की तरह चलती दिखाई दे रही है। मानो लक्ष्मी विश्वमोहिनी बन कर वहाँ पर नखरे कर रही हैं। मानो धरती की सारी बिजलियाँ एकत्रित होकर लक्ष्मी के शरीर से विकीर्ण हो रही हैं। वहाँ देखनेवालों को लक्ष्मी अद्भुत लग रही थी। हाथ में कमल लेकर लक्ष्मी नाचते नखरे दिखाते अपनी चमक-दमक से सभी को मुग्ध कर रही है। ऐसी लक्ष्मी ने हरि की ओर देखा। लक्ष्मी को देखकर श्री हरि ने मुस्करा दिया।

श्रीहरि का विट वेश धारण

सुंदर लक्ष्मी को देखकर श्रीहरि ने भी अपना वेश बदल लिया। मनुष्य रूप धारण कर लिया। वे कैसे हैं? नील वर्णवाले, आजानुबाहू, आह्लाद चेहरेवाले, काले बालवाले, विशाल ललाटवाले, कंबु कंठवाले, मंगलकरवाले, नीरजाक्ष, विशाल वक्षवाले, सिंहकटिवाले, कोटि मन्मथ आकारवाले, बहुत सुंदर मंदस्मित चेहरेवाले, सुकुमार पुरुष देखनेवाली स्त्रियों को मोहित करनेवाले विट पुरुष हैं। श्रीहरि का यह वेश सबके लिए बहुत सुंदर है। इसके अतिरिक्त वे अनेक आभरणों से सुशोभित हैं। सर की पगड़ी पर रत्न चमक रहे हैं। गले के फूलों की मालाएँ भुजाओं पर फैल रही है। साफ किए हुए सफेद धोती उनके शरीर पर सुंदर लग रही है। उनकी इस सुंदरता को देखते ही बनता है। सुगंध परिमलयुक्त लेपन उनके वक्ष पर लगाया गया है। उसके ऊपर मोतियों की माला चमक रही है। मोतियाँ, रत्न, हीरे, नीले रंग के पत्थर आदि जटित होने से उनके शरीर के आभारणों से कांति विकीर्ण हो रही है। कानों में कुंडल हिल रहे हैं। काश्मीर शॉल ओढ़ा हुआ है। अपने इस वेश से सबको वे सम्मोहित कर रहे हैं। ललाट पर चंदन का तिलक, जैसे पूर्णचंद्रमा पूर्ण

कलाओं के साथ चमक रहे हों, दांतों की कांति विचित्र रूप से विकीर्ण हो रही है। मानो वे हीरों की पंक्ति को भी पराजित कर रहे हों। मुँह में कर्पूर तांबूल सेवन के कारण उनके ओंठ लाल-लाल बिंब फलों को लज्ञित कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त नासिका पर मोती लगा हुआ है। उसके दोनों तरफ शरीर का नील रंग चमक रहा है। उनकी नवंकुर चमकनेवाली मूंछे सुंदर लग रही हैं। इस रूप में मनुष्य के रूप में श्रीहरि बहुत सुंदर लग रहे हैं। उनके शरीर की चमक ऐसी थी कि मानो घने मेघों केबीच में बिजली चमक रही हो। हाथों में सोने के कड़े चमक रहे हैं। वाम हस्त में छुचुरी पकड़े हुए हैं। दाएँ हाथ से धवल वस्त्र को हिला रहे हैं। शरणागत वत्सल आर्तजनों के उद्धार करने की उपाधि रखनेवाले श्रीहरि पैरों में कड़ियों समेत चल रहे हैं। ऐसे पुरुष वेशधारी हरि नखरे करते हुए सुंदर कामिनी जैसी लगनेवाली लक्ष्मी से मिलकर पादुकाएँ पहन कर उस यज्ञ को देखने चले आ रहे हैं। इस रूप में सिरि और हरि दोनों अपने-अपने वेश बदल कर वहाँ संपन्न होनेवाले यज्ञ को देखने पधारे हैं।

विप्र जनों की ऊहाएँ

इस रूप में चले आ रहे सिरि और हरि को देखकर विप्र जन सोच में पड़ गए कि ''वे कौन हैं?'' बाहर से उनसे सवाल किया। ''वनितामणी के साथ मिलकर आनेवाले वे कौन हैं? महिमावान वसंत माधव तो नहीं है! नल, जयंत, नलकुबर, इंद्र, चंद्र या शिव भगवान तो नहीं हैं! इस महाजंगल में इस समय क्यों आये हैं? उनसे विकीर्ण होनेवाली कांति गगन दिग्भाग में फैल रही है। वे विप्र हैं या क्षत्रिय हैं? विप्र के लिए आवश्यक यज्ञोपवीत चिह्न के रूप में लटक रहा है। क्षत्रिय के लिए वाम हस्त में आयुध धारण किया हुआ है। व्यवहार केलिए साथ में सुंदर स्त्री को लाये हैं।'' यह कहते वे सब उनकी तरफ आश्चर्य से देखने लगे। तब

हरि यज्ञकुंड के पास पहुँच गए। विप्रों के बीच में सिरि के साथ बैठ गए। उनसे संवाद करने लगे।

उनकी शरीरों से विकीर्ण होनेवाली कस्तूरी गंध मुनियों की नासिकाओं में फैल गयी। तब उन्होंने पद्म दलाक्ष की ओर देखकर इस रूप में कहा।

विप्रों का श्रीहरि से संवाद

''हे महाराज! आपका कौन-सा गाँव है? आपका नाम क्या है? आपके माता-पिता कौन हैं? आप यहाँ क्यों आये हैं? यहाँ इस वन में हम यज्ञ करनेवाले हैं। हम पर दया करके हमारे इस कार्य में आप सहायता कीजिए। हमारा रक्षक बनकर असुर, चोर, मृगादि के भय से हमें मुक्त कीजिए। हम जैसे तापसियों को आप जैसे राजाओं की जरूरत है। यही धर्म पद्धति है। इसलिए हे निर्मलात्मा! आप यहाँ रहते हुए हम से यज्ञ कराइए।'' विप्रों की बातें सुनकर हंसते हुए चक्री ने उनसे कहा। ''मैं राजा नहीं हूँ। न ही मैं विप्र हूँ। आखिर मैं वैश्य या शूद्र भी नहीं हूँ। मेरे माता-पिता नहीं हैं। इस धरती पर मेरे लिए कोई वास नहीं है। मैं सर्वस्थलों में सर्वरक्षक बनकर घूमता रहता हूँ। मैं सगुण हूँ और नाम, वर्णाश्रम विहीन हूँ।'' चक्री के इस रूप में कहने से विप्रों ने यह कहा। ''हे महात्मा! आपकी बातें इस समय हमारी समझ में नहीं आयीं। आप के साथ रहनेवाली यह स्त्री कौन है?'' पूछने पर हरि ने मंदस्मित होकर उनसे इस रूप में कहा। ''मेरे लिए मैं अकेला हूँ। मेरे लिए कोई नहीं है। मैं अकेला हूँ। मुझे अकेले पाकर इस जंगल में मोहिनी के रूप में मुझे इस यानादी स्त्री ने पकड़ा है। हम दोनों साथ-साथ बात करते आप मुनियों को यहाँ देखकर आपके पास चले आये हैं। यहाँ आप क्या-क्या करते गीत किस रीति से गा रहे हैं? यौदुंबर शाखाओं को पकड़कर उन के नामों के साथ देवताओं का आह्वान क्यों कर रहे हैं? आपकी यह पशु

हिंसा किसलिए है? अब आप ही बताइए।'' इस रूप में हरि के पूछने पर उन कर्मनिष्ठ मुनियों ने बताया। ''यह वप याग करने का समय है। इसलिए वेदोक्त शास्त्रों के अनुसार वपयाग पूरा करने के बाद आपके द्वारा पूछे गए सारे सवालों का जवाब देंगे। तब आप हमसे सुन सकते हैं।'' कहते हुए।

श्रीहरि के द्वारा 'वप' को ग्रहण करना

मुनियों की बातें स्वीकार करने से वे मुनिगण हरि को लेकर वप याग करने लगे। तब हरि ने शंख, चक्र सभी को दिखाकर वप को ग्रहण किया।

विप्रों का आनंद

हरि को अच्युत, परमात्मा, अनंत के रूप में सबके जानने के बाद अपने हाथों से हरि ने वप को ग्रहण करके एक ही बार उसे निगल लिया। इस दृश्य को देखकर सारे मुनिगण आश्चर्य चकित रह गए। मानो वे निर्जीव गुडियाएँ ही बन गए। भक्ति में परवश होकर वे पद्म दलाक्ष की ओर ताकने लगे।

तब श्री वत्सलांचनांचित विशाल वक्षवाले, सकल दिव्य रत्नाभरण भूषण वाले, सहस्र कोटि मार्तांड प्रभास समान गात्रवाले, वपा परिमल मिलित अधरोंवाले नारायण ने करुणा कटाक्षों के साथ विप्रों की ओर देख कर कहा। ''मैं परम तुष्ट हुआ हूँ।'' कहते हुए रमा समेत अदृश्य हो गए। तब उन विप्र जनों ने संतोष का अनुभव किया। क्योंकि साक्षात हरि ने ही वपा ग्रहण किया। इससे हमारा जन्म ही धन्य हो गया। बड़े संतोष के साथ आगे उन्होंने यज्ञ को समग्र पूरा किया। बाद में अवबृथ स्नान करके वे मुनिगण धन्य हुए।

इस रूप में शौनकादि मुनियों को सुनाकर उनकी तरफ देखते हुए सूत ने आगे उनसे इस रूप में कहा। ''पूर्व जाबाली नामक महात्मा ने मुझे मुख्य रूप से इस कथा को सुनाया। वही कथा अत्यंत प्रीति से मैंने आप को सुनायी। उसी समय रमाधीश द्वारा की गयी एक और कथा है, जो धरती में विशेष इतिहास के रूप में प्रचलित होगी। उस कथा के बारे में भी सुनाऊँगा।'' अत्यंत विश्वास के साथ सूत ने फिर से कथा सुनाना शुरु किया। ''यज्ञ में भाग लेकर ब्राह्मणों के द्वारा दिये गए 'वप' को ग्रहण करके श्रीहरि ने उनका उद्धार किया। तदुपरांत श्रीमन्नारायण सुंदर सुकुमार शरीर के साथ वेंकटगिरि के उत्तर भाग में सिरि समेत विहार करते समय एक दिन देशांतर की यात्रा करते एक विप्र ब्राह्मण दिखाई दिया।

कुमारधारा की महिमा

वह विप्र अत्यंत बलहीन और शुष्क शरीरवाला था। वह अपने भटके हुए पुत्र कौंडिन्य की खोज कर रहा था। वह उसे न पाकर अत्यंत दुखी था। वह रास्ता भी भटक गया था। वह वेंकटाद्रि मार्ग पकड़कर जा रहा था। घना जंगल था। निर्जन था। उसे भूख प्यास भी लग रही थी। वह अब नीचे गिरनेवाला ही था। उसने अपने पुत्र को याद किया ''हे पुत्र कौंडिन्य! कहाँ चले गए हो?'' बोलते बहुत दुःखी हो रहा था। तब दीनरक्षक भगवान ने उसके सामने खड़े होकर बड़ी दया दिखाते इस रूप में कहा।। ''हे वृद्ध ब्राह्मण! इस महा जंगल में क्यों आये हो? अब धरती पर तुम कुछ दिन रह पाओगे या नहीं। शायद अभी देह छोड़कर जा सकते हो। अपने बारे में बताओ?'' यह सुनकर विप्र ने इस रूप में कहा। ''हे महात्मा! अब मुझे शरीर पर आसक्ति नहीं है। मनुष्यों का ऋण चुकाये बिना मैं कैसे जा सकता हूँ।'' इन बातों को सुनकर माधव ने उस विप्र के हाथ को पकड़ कर उसे पावन तीर्थ के पास ले गए। उस विप्र ने वहाँ स्नान किया। वहाँ स्नान करने के बाद वह सौ साल वृद्ध ब्राह्मण सोलह सालों का युवक बन गया। सोलह कलाओं के साथ परिपूर्ण होकर बाल-युवक बन कर खड़ा हो गया। हरि ने तब सहस्र शीर्ष, सहस्र बाहु, सहस्रपाद, सहस्र नेत्रवाले बनकर उस युवक को दर्शन दिए। यह देखकर गगन से इंद्र देवादि ने फूलों की वर्षा बरसायी। धुंधुभी बजायी। हरि के सिर पर फूलों की वर्षा बरसायी। विश्व रूपी भगवान को देखकर उन्होंने उनकी खूब स्तुति की। तब हरि विप्र की ओर देख कर ''तुमको धन समृद्धि प्राप्त होगी। अब तुम देव ऋण चुकाने अपने आश्रम पर जाकर याग करो।'' ऐसी आज्ञा देकर हरि अदृश्य हो गये। विप्र भी अपने निजाश्रम लौट गये। इस प्रकार वृद्ध ब्राह्मण इस तीर्थ में स्नान करके बाल सुकुमार युवक बने हैं। इसलिए इस तीर्थ का नाम 'कुमार धारा' पड़ गया। इस तीर्थ में तीन महीने कोई जितेंद्रीय बनकर त्रिकाल स्नान करेगा तो वह बज्र शरीरवाला बनेगा। वृद्धाप्य के बिना सुखी जीवन बितायेगा।'' ऐसा निर्णय करके देवतागण अपने-अपने स्थानों पर लौट गए। जाबाली मुनि के द्वारा सुनी हुई कथा को सूत मुनि ने शौनकादि मुनियों को सुनायी है। और आगे सुनिए।

शंखणराजु का वृत्तांत

सूत ने कहा ''मुझसे पूर्व वाल्मीकी ने एक ऐसा ही इतिहास बताया। उसके बारे में बताऊँगा। सुनिए! चंद्र वंश में शंखण नामक एक राजा हुआ करते थे। कालदोष के कारण शत्रुओं से पराजित होकर वह अपने राज्य को खोकर रामेश्वर पहुँच गया। वहाँ रामसेतु के पास स्नान करके सुवर्णमुखी नदी के पास पहुँचा। फिर सुवर्णमुखी में स्नान करके उसके उत्तर में रहनेवाले पद्म सरोवर के पास पहुँच गया। पद्म सरोवर में स्नान

करके उसके तट पर खड़े होकर इस रूप में सोचने लगा। 'मेरा कैसा भाग्य है! शत्रुओं के साथ युद्ध करके हार गया। अपने राज्य को खो दिया। अब मेरा खान-पान कैसे चलेगा। इन कष्टों को मैं कैसे झेल पाऊँगा। भगवान ने मेरी ऐसी गति क्यों करवायी। आगे मेरा क्या होगा?' ऐसे सोचते वह बहुत चिंता कर रहा था।

ऐसे अनेक प्रकार से दुख का अनुभव करते हुए नेत्रों को बंद करके वह परवश हो गया था। तब अशरीर वाणी ने ऐसा कहा।

'हे निर्मलात्मा! मन में तुम थोड़ा धैर्य बनाओ। चिंता को दूर करो। यहाँ से उत्तर में एक कोस की दूरी पर वेंकटगिरि नामक पर्वत है। वहाँ तुम शीघ्र ही जाओ। वह पर्वत आर्तजन और पीडितों को कामधेनु समान है। शोकार्थियों को कल्पवृक्ष समान है। वह चिंतामणी नाम से अति प्रसिद्ध पर्वत है। वहाँ अकारण ही पीड़ाओं एवं बाधाओं के शिकार हुए लोगों के कष्टों को दूर करनेवाले श्री वेंकटेश्वर बसे हुए हैं। उनके मंदिर के पास स्वामी पुष्करिणी है। वह अत्यंत महिमावान पुष्करिणी है। वह इष्ट काम्यार्थों को पूरा करनेवाली है। वह सदा जल से भरा रहता है। उसके पश्चिम तट पर वल्मीकों से भरा पहाड़ है। वहाँ पर खड़े होकर त्रिसंध्या कालों में पुष्करिणी में स्नान करके जितेंद्र और निष्ठा के साथ शंख, चक्र, गदाधारी श्री वेंकटेश्वर के षोढोपचार-पूजाएँ करते रहो। तब वे स्वामी तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हें फिर राज्याभिषिक्त करेंगे।'' अशरीरी वाणी की इन बातों को सुनकर शंकण प्रसन्न होकर वेंकटगिरि पर्वत पर चढ़ गया। वहाँ पर स्थित चंदन, पुन्नाग और भी अनेक फल-फूल वृक्षों से सुशोभित, चमरी, कस्तूरी, मृगादि से शोभित, शुक, कलकंठ, मयूर, राजहंस आदि पक्षियों की कलरव ध्वनियों भरे नयनंदकारी दर्शन देनेवाले वेंकटाद्रि पर्वत के दर्शन किए। उसके बीच में अनेक दिव्य परिमल सुगंधों से भरे,

शोणक, नीलोत्पलों से भरे, मत्स-कच्चप आदि जलचरों से भरी स्वामी पुष्करिणी के दर्शन किए। शंकण ने उस पुष्करिणी में तत्संकल्प के साथ त्रिकाल स्नान किया। साथ ही श्री वेंकटेश्वर स्वामी का ध्यान करते विशेष पूजाएँ की।

श्री हरि का शंखण महाराज से प्रसन्न होना

अनेक प्रकार के हारें, कुंडल, किरीट आदि भूषणों से सुशोभित कांतिमय प्रकाश से परिवेष्ठित, तुलसी मालाओं की सुगंध से तथा पुष्पमालिकाओं की सौरभ से सुशोभित, राजित सूक्ष्म उदरवाले, तिलकधारी, कमनीय कुटिल ललाटवाले, श्रीवत्स-कौत्सुभ चिह्नों को धारण करनेवाले, करुणा से भरे नेत्रोंवाले, शंख ,चक्र, गदाधारी, हृदय पर लक्ष्मी को धारण करके प्रकाशवान, नीला और भूदेवी को अपने दोनों ओर धारण करनेवाले, दीन जनों के उद्धारक श्री वेंकटेश्वर स्वामी ने तब अनेक सहस्र-कोटि सूर्यप्रकाश सदृश दिव्य विमान मध्य में स्वामी पुष्करिणी के बीच में खड़े होकर शंखण राजा को दर्शन दिए। तब ब्रह्म, रुद्र, देवताओं ने दुंदुभी बजायी। मृदंग और मंगलवाद्यों के साथ जय-जयकार किया। साथ ही पुष्प वृष्टि करवायी। साथ ही नृत्य, गीतों के साथ निगमांत सूक्तों को भी सुनाया। तब शंखण महाराज ने स्वामी को साष्टांग दंड-प्रणाम करके इस रूप में विनति की। ''हे देवाधिदेव! महात्मा! हे दीन रक्षक! हे जगन्नायक! मुझ पर दया करो! मेरी ओर करुणा से देखो! पूर्व आपके द्वारा मेरे पूर्वजों को दी गयी पृथ्वी को मैंने शत्रुओं में खो दिया। अब मैं दीन हीन हूँ। ऐसे मुझे आपने दर्शन दिए हे परम पुरुष! कृपया मेरे शत्रुओं का निर्जन करके फिर से मुझे अपना राज्य दिलाओ।'' ऐसी विनति करनेवाले शंखण से चक्री ने ऐसा कहा। ''हे राजा तुम अपनी चिंता छोड़ो! अपने देश लौट कर सपत्नी राज्याभिषिक्त होकर खुश

रहो।'' कहते हुए शंखण को आशीर्वाद समेत आज्ञा दी। तदुपरांत हरि अत्यद्भुत ढंग से अदृश्य हो गए।

तब ब्रह्मादि देवतागण हरि की प्रशंसा करके ''स्वामी की पुष्करिणी में स्नान करने के कारण ही स्वामी ने प्रसन्न होकर शंकण को फिर से स्वामित्व प्रदान किया।'' कहते वे सब अपने-अपने स्थानों पर लौट गए।

तब शंखण महाराज स्वामी पुष्करिणी और पर्वत को प्रणाम करके, हरि को भी नमस्कार करके अपनी पत्नी के साथ अत्यंत आनंद से वेंकटाद्रि पर्वत से उतरकर अपने राज्य लौटे। इधर शंखण के शुत्रओं की सोच में परिवर्तन आया। शंखण के साथ अपने विरोध को भी उन्होंने छोड़ देने का निर्णय किया। फिर से शंखण को राज्य लौटाने का निर्णय किया। यह सुनकर उसके देश के जन शंखण महाराज की खोज करते गोदावरी नदी के तट पर पहुँचे। तभी शंखण ने उस मार्ग में जाते अपने देशवासियों को पहचान लिया। अपने शत्रु के बारे में समाचार लेकर वह अपने देश कांभोज देश लौट गया। तदुपरांत श्री वेंकटेश्वर के प्रसाद के रूप में अपने राज्य को ग्रहण करके राज्य पालन करने लगा।'' ''यही नहीं बल्कि एक और इतिहास-वृत्तांत है, उसे भी सुन लीजिए।'' शौनकादि मुनियों से सूत ने कहा।

आत्माराम का इतिहास

मध्य राष्ट्र में आत्माराम नामक एक ब्राह्मण रहा करता था। वह बहुत बड़ा पंडित था। धर्मनिष्ठ भी था। देव, भूसुर आदि की पूजा नियमित रूप से करता था। इस रूप में वह अपना धर्म भली भांति निभा रहा था। पिता से प्राप्त संपदाओं को उसने कालांतर में खर्च कर डाला। फिर संपदाएँ नहीं कमायीं। तब गरीब बन गया। वह अंदर ही अंदर

अपने बारे में सोच कर दुःखी हुआ करता था। ऐसा आत्माराम एक दिन अपना घर छोड़ कर श्री वेंकटेश्वर के बसे पर्वत के पास पवित्र कपिल तीर्थ पहुँच गया। वहाँ पर आत्माराम ने कपिल तीर्थ में स्नान किया। कपिलेश्वर स्वामी की निष्ठा के साथ पूजा की, फिर वहाँ से जंगल के रास्ते पर्वत पर चढ़ने लगा।

सनत्कुमार के दर्शन करना

कपिल तीर्थ के मार्ग में रहनेवाले सप्त तीर्थों में स्नान करके निर्मल चित्त के साथ आत्माराम पर्वत पर चढ़ने लगा। रास्ते में एक गुफा के मध्य में ध्याननिष्ठ सनत्कुमार की सन्निधि में वह पहुँच गया। सनत्कुमार को साष्टांग दंड प्रणाम करके उसने मुकलित हाथों से इस रूप में विनति की।

''हे तापसीवर्य! महात्मा! मुझ पापात्म को अपनाकर मुझे अपने साथ ले चलिए। आपके चरणों को छोड़कर मेरी कोई और शरण नहीं है! हे निर्मल हृदय! मुझ पर दया कीजिए। दारिद्र्य से परिवार को छोड़ कर भागते आपकी शरण में आया हूँ। मेरे कष्टों का निवारण करके सुख प्रदान कीजिए महात्मा!'' आत्माराम की बातें सुनकर उस महात्मा ने कहा। ''अब तुमको कष्ट क्यों? अपने पाप दूर हो जाने का समय आ गया है। तुमने कौन-सा पाप किया है? उसके बारे में सुनो। जन्मांतर में माधव की सेवा करने के विवेक से तुम दूर हो गए हो। साथ ही लोभ में पड़ कर दान कंटक बन कर गर्व करने लगा था। दान देनेवालों और दान लेनेवालों के बीच में तुमने द्वेष पैदा किया था। ऐसी झूठी बातें उन्हें बताकर तुमने दानहानि का पाप किया है। आचार विहीन होकर कहीं भी खाते-पीते अपने को श्रेष्ठ समझ कर दूसरों को नीच के रूप में देख रहा था। दान दिए बिना धन को इकट्ठा किया था। वह पाप अब कपिल तीर्थ

में स्नान करने से दूर हो गया। श्री पद्मालय की कृपा चाहिए तो तुमको ऐसा करना होगा। सुनो! व्यूह लक्ष्मी सदा श्रीहरि के वक्षस्थल पर विराजमान होकर अपनी महिमा से स्वामी के भक्तों को संपदाएँ देती हैं।

सनत्कुमार के द्वारा व्यूह लक्ष्मी के मंत्र का उपदेश देना

तुम उस व्यूह लक्ष्मी की कथा को सुनो। वे अत्यंत दयालु, लोक माता हैं। वे पूर्ण चंद्र प्रभास युक्त हैं। वे पुरुषोत्तम प्रिय भी हैं। पद्माल, अमल, पद्मपाणी, व्यूह भेद से वे साक्षात श्री महालक्ष्मी की अवतारी हैं। उनकी कीर्ति का गायन करने से जय प्राप्त होगी। वे कारुण्यमूर्ति, मंगल विग्रह रूपी हैं। भक्तों की सदा रक्षा करनेवाली हैं। सुनो सुनायास से भक्ति तत्परता से उनके प्रति भक्ति दिखाने से तुम्हारे सारे पाप दूर होकर अपार संपदाएँ प्राप्त होंगी। उस महादेवी का मंत्र मैं तुम्हें बताऊँगा। उस मंत्र का तुम सद्भक्ति से जप करो।'' यह बताकर ''अंगन्यास, करन्यास पूर्वक लक्ष्मी मंत्र का उपदेश देकर ध्यान से करने की विधि को भी बताकर श्रीवेंकटाचल जाने की आज्ञा दी। श्रीनिवास तुम्हारी प्रार्थनाओं से प्रसन्न होकर तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति करेंगे।'' ऐसी आज्ञा देकर सनत्कुमार अदृश्य हो गए। तब आत्माराम मन में भयभीत होकर और पुलकित भी होकर नेत्रों में आनंद भाष्प के आने से तद्गुरु का ध्यान करने लगा। साथ ही लक्ष्मी मंत्र का जप करना शुरु कर दिया। आकाश गंगा धरती पर उतरने की तरह विरजा नदी के रूप में प्रवाहित होनेवाली पवित्र पुष्करिणी तीर्थ को देखा। शैलाग्र से प्रवाहित होनेवाली विरजा नदी के प्रवाह समेत पुष्करिणी को देखकर आत्माराम को बहुत आनंद हुआ। तभी वह पर्वत पर चढ़कर स्वामी के उस ने पुण्य तीर्थ में स्नान किया। उसी के तट पर जप तप करते स्वामी के ध्यान में लीन हो गए। उसके साथ लक्ष्मी मंत्र को अत्यंत श्रद्धा से जप करने लगा।

श्रीहरि का अनुग्रह

तब श्रीहरि ने आत्माराम का अनुग्रह किया। वे कैसे वहाँ पधारे हैं। प्राकारयुक्त बहु मंटप, विविध सत्कल्याण वेदिकाएँ, सोने से बने बड़े-बड़े गोपुर, सुंदर बड़े-बड़े सौद, सरस मोतियों से भरे चप्पर, भानुकोटि प्रकाश से प्रकाशवान रत्नजटित सभा स्तंभ समेत गंधर्व नगर की तरह, सिद्धों से सेवित, गीत-नर्तन वाद्यों से भरे एक दिव्य धाम के मध्य में, कुंडलादि रत्न कुटीर कौस्तुभ शोभित, अनेक मुख भूषणों से सुसज्जित, रमणीय कनकांबर वस्त्र लटकते, नील कांति से परिवेष्ठित, हृदय पर व्यूह लक्ष्मी के विराजित होते शत कोटि मन्मथाकार श्री वेंकटेश्वर ने स्वामी पुष्करिणी के तट पर ध्यान करनेवाले आत्माराम भूसुर को दर्शन दिए। स्वामी के दर्शन से विप्र ने प्रसन्न होकर स्वामी का साष्टांग दंड प्रणाम किया। दंड-प्रणाम करने के उपरांत विनति करने में असमर्थ होकर गद्गद कंठ से मात्र खड़ा रहा। ऐसे आत्माराम को देखकर उस पर दया करके बड़ी करुणा से करुणानिधान हरि ने इस रूप में कहा।

''तुझे भय क्यों है? व्यूह लक्ष्मी की कृपा दृष्टि तुम पर है। अब के बाद आयु-रारोग्य ऐश्वर्य तुम को प्राप्त होंगे। सत्कर्म करने का विवेक भी तुमको प्राप्त होगा। निष्ठा के साथ जीवन जियो।'' ऐसा कहते माधव ने ब्राह्मण को अभय देकर ब्रह्मादि देवताओं से प्रशंसित होते अदृश्य हो गए। तब विप्र आत्माराम थोड़ा भयकंपित होकर सोच में पड़ गया कि अभी अभयदान करनेवाले हरि कहाँ गए? सोचने पर लगता है कि यह सच है या सपना? इस रूप में वह हड़बड़ाहट में सोच में पड़ गया। कुछ समय के बाद सद्गुरु की कृपा से समझ लिया कि यह सत्य है। फिर पर्वत से उतरकर अपने शहर जाकर संपदाएँ प्राप्त करके अनेक दान पुण्य करने लगा।

"इस कथा को पूर्व में मुझे वाल्मीकी ने सुनाया था, हे संयमी मुनिगण! वही मैंने आप लोगों को सुनाया।" शौनकादि मुनियों से सूत ने इस रूप में आत्माराम की कथा के बारे में बताया। यह सुनकर शौनकादि मुनियों ने "वराह पर्वत के माहात्म्य के बारे में आपसे सुनकर हमें बहुत आनंद हुआ। अब इस वैकुंठ पर्वत पर विराजित सद्गिरि पहाड़ के बारे में हमें विस्तार से बताइए।" ऐसा मुनियों ने आशा से सूत से कहा।

सप्तदश तीर्थ

"हे धीरात्मा! सुना है कि उस पर्वत पर लगभग सत्रह पुण्य तीर्थ हैं। उनके बारे में विस्तार से सुनने की इच्छा है। कृपया हमें सुनाइए।" वेंकटाचल पर्वत के माहात्म्य को और विस्तार देते हुए उस पर स्थित विविध तीर्थों के बारे में सूत ने शौनकादि मुनियों को इस रूप में सुनाया। "हे महात्मा! उन तीर्थों के माहात्म्य के बारे में बताना बहुत कठिन है। फिर भी बुजुर्गों ने जो कुछ मुझे बताया है उसी रीति में मैं आपको बताऊँगा। कृपया सुनिए।" कहते उस नारायण का स्मरण करके उन तीर्थों के बारे में बताना शुरु किया। "हे मुनिगण! हरिकलांशज कर्दमाख्य के पुत्र कपिल नामक मुनि ने पूर्व में इस कपिल तीर्थ में योगाभ्यास किया था।

कपिल तीर्थ

यह एक पाताल तीर्थ है। कपिल नामक एक मुनि ने सांख्य-योगाभ्यास करते अपनी सारी इंद्रियों को वश में रखकर अति उत्साह से वहाँ एक शिव लिंग की प्रतिष्ठा करके शिव की अर्चना की। तब शिव लिंग महादीर्घ रूप में महादीप्त हुआ। तब सुर और जनों से पूजा प्राप्त करने के उद्देश्य से पाताल से कपिल लिंग धरती पर आ गया। तब

सगरनंदनों को सद्गति देकर वहाँ की भोगवती महोन्नत रूप में लिंगमूर्ति के साथ ही धरती पर पहुँच गयी। वही भोगवती कपिल तीर्थ बन गयी। वह सदा प्रवाहित होते हुए मनुष्यों के पापों का निवारण करने लगी। इस तीर्थ की महिमा को जानकर देवतागण और मनुष्य बड़ी श्रद्धा के साथ उस शिवलिंग की पूजा करने लगे।

चक्रतीर्थ और विश्वक्सेन तीर्थ

कपिल तीर्थ के ऊपर चक्र तीर्थ प्रवाहित होता है। पूर्व में अहल्या के साथ देवपति इंद्र के द्वारा किए गए पाप को दूर करने के लिए इंद्र ने इसी चक्र तीर्थ में स्नान किया था। चक्रतीर्थ के ऊपर विश्वकसेन तीर्थ प्रवाहित होता है। पूर्व में यहाँ पर वरुण के पुत्र विश्वकसेन ने तप किया था। तब हरि उसके तप से प्रसन्न होकर वहाँ पर आये। तब शंख, चक्र युगल और परिवार के साथ हरि ने विश्वकसेन को दर्शन दिए। उसके स्मरण में इसका नाम विश्वकसेन तीर्थ पड़ गया।

पंचायुध तीर्थ और अनल तीर्थ

पंचायुध तीर्थ संचित तीर्थ है। यह चक्रतीर्थ के ऊपर स्थित है। उनके ऊपर अनल तीर्थ प्रवाहित होता दिखाई देता है।

ब्रह्म तीर्थ और सप्तर्षि तीर्थ

अनल तीर्थ के ऊपर ब्रह्म तीर्थ है। महापाप करनेवालों को इस तीर्थ में नहाने से पुण्य प्राप्त होता है। ब्रह्म तीर्थ के ऊपर सप्त ऋषियों के नाम से सप्तर्षि तीर्थ दिखाई पड़ते हैं। ये एक से बढ़कर एक पुण्य प्रदान करनेवाले हैं। दशाधिक फल भी ये तीर्थ देते हैं। इनके बारे में ब्रह्मादि ही बता नहीं सकते हैं। ऐसे में मैं कैसे बता सकूँगा। यहाँ पर एक और

विशेषता का उल्लेख करना चाहिए। पूर्व में धरती पर रहनेवाले एक राजा इन सारे तीर्थों के दर्शन करने के लिए निकले। रास्ते में वह सो गया। तब उसके सपने में पुरुषोत्तम दिखाई दिए। सपने में पुरुषोत्तम ने इस रूप में कहा।'' हे ब्राह्मणोत्तम! दूर रहनेवाले इन तीर्थों की खोज करते तुम क्यों निकले हो? यहीं देखो इस पुष्करिणी के पास ही पवित्र सत्रह तीर्थ हैं। इनमें क्रम से स्नान करो। तब क्रम से तुमको सारी सिद्धियाँ प्राप्त होंगी। इसमें तुम कोई संदेह मत करो।'' यह सुनकर उस राजा ने संतोष से नींद से जागकर ऐसा ही किया। मैं रमाधीश के द्वारा स्वप्न में बताये मार्ग से पुष्करादि पहुँच कर वहाँ के तीर्थों में स्नान करके विशेष सिद्धियाँ प्राप्त करूँगा। ऐसा सोचकर उसने पहले कपिल तीर्थ से आरंभ करके सप्तादश तीर्थों में क्रम से स्नान करके सकल सिद्धियों को प्राप्त किया।'' ऐसा सूत ने बताया।

इस ब्रह्मांड में तीन करोड़ और आधा करोड़ तीर्थ हैं। त्रिभुवनों के इन तीर्थों में अखिल मुख्य और अनेक तीर्थ इस श्री वेंकटाद्रि पर हैं। इसलिए तीर्थों के लिए यह वेंकटाद्रि प्रसिद्ध बन गया है।

ऐसे वेंकटाद्रि की परिक्रमा करने से भू परिक्रमा करने से प्राप्त होनेवाला पुण्य समान पुण्य प्राप्त होता है। इससे बढ़कर एक और विशेषता यह है कि वेंकटाद्रि शिखर दर्शन से समस्त तीर्थों के फल को प्राप्त कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त युधिष्ठिर आदि पांडु पुत्र वनवास करते समय उनसे श्रीकृष्ण ने ऐसा कहा था।

पांडव तीर्थ

''हे पांडवात्मज! कर्म फल से आज आपको ये कष्ट सता रहे हैं। आप राजमहल छोड़कर वनवास पर निकले हैं। अच्छे लोगों को हमेशा

विजय प्राप्त होती है। ऐसी विजय मैं आप लोगों को प्रदान करूँगा। चिंता मत कीजिए। श्री वेंकटाद्रि पर भक्ति से चले जाइए। वहाँ क्षेत्रपाल परम पावन तीर्थों के पास खड़े होकर स्नान, पान, जपादि कीजिए। तब आपके सारे पाप मिट जायेंगे। उसके बाद सारे मनुष्यों पर आप विजय प्राप्त कर सकते हैं।'' ऐसा श्रीकृष्ण ने उनको उपदेश दिया। उपदेश पाकर वे पांडव वेंकटाद्रि पर पहुँच गए। क्षेत्र पालक के पास सिद्ध स्थल में खड़े होकर स्नान-पान निष्ठा के साथ करते-करते एक वर्ष बीत गया। तब आदर से श्री वेंकटेश्वर पांडवाग्रज युधिष्ठिर के सपने में दर्शन दे कर ''हे महाराज! अपने राज्यों पर तुम लोग लौट कर आनंद से राज्य करते रहो।'' कहा। ऐसी आज्ञा पाकर पांडुपुत्र युधिष्ठिर ने तुरंत नींद से जाग कर भीमार्जुन आदि को बुलाकर अपने सपने के बारे में बताया। तुरंत वह पत्नी समेत और भाइयों के साथ वेंकटाद्रि पर पहुँच गया। वहाँ के जंगल में वास किया। फिर उधर से लौट कर शत्रुओं से युद्ध करके विजय को हासिल किया। हस्तिनापुर में राज्याभिषिक्त हुए। साथ ही नंद सुत का अनुसरण करते रहे।

पांडु सुतों के कुछ दिनों तक भक्तिपूर्वक वहाँ रहने के कारण उनके स्मरण में यहाँ के तीर्थ को पांडव तीर्थ कहा जाता है। उसके महत्व के बारे में सिर्फ क्षेत्र पालक ही जानता है। अन्य लोग कुछ भी नहीं जानते हैं।

जराहरादि तीर्थों की महिमा

इसके अतिरिक्त स्वामी पुष्करिणी की पूर्व दिशा में जराहर, लग्निम, रसायनम नामक तीन तीर्थों के साथ-साथ हरि के निवासयोग्य वैकुंठ पर्वत की गुफा तथा अष्टलोह खान होंगी। इससे अलग स्वामी पुष्करिणी

द्वविंशति शरपात दूरी पर माया तिरोहित शक्ति फैली रहती है। इसलिए वे सुधि जनों को ही दिखाई देते हैं। ऐसे महिमावान वेंकटाचल पर्वत पर लूले, शिखंडी, बधिर, अंधे, निस्संतान, धनहीन लोग श्रद्धा-निष्ठा से हरि पर मन लगाकर, निस्संशय से विश्वास करने पर सारी आपदाएँ दूर होकर सुखी रहेंगे। इसके अतिरिक्त उस पर्वत पर युग भेद से अनेक विशेष कार्य होते रहते हैं।

वेंकटाद्रि युग युगों में कांतिमान होना

वेंकटाद्रि पर युग भेद से अनेक विशिष्ट कार्य होते रहते हैं। एक बार वह वेंकटाद्रि श्रीनिवास के कारण कांतिवान हुआ। एक बार कनकाद्रि के रूप में प्रकाशवान हुआ। एक बार ज्ञान संयुक्त होकर दिखाई देता है। एक बार मणि-स्पटिक रूप में दिखाई देता है। एक बार भूषणों के रूप में दिखाई देता है। एक बार कलियुग में लोगों को पाषणगिरि के रूप में दिखाई देता है।

इसलिए आदिशेष भी वेंकटाद्रि की महिमा के बारे में बोल नहीं पाते हैं। सुधिजनों से सुनकर इतना कुछ मैं बता पाया हूँ। अन्यथा मुझसे भी संभव नहीं हो सकता।'' ऐसा सूत के बताने से सुनकर शौनकादि मुनियों ने कहा। ''वेंकटाद्रि की महिमा इतना कुछ सुनने पर भी तृप्ति नहीं हो रही है और सुनने की इच्छा हो रही है। इसलिए इसके माहात्म्य के बारे में बुजुर्गों ने जो कहा वे सब चित्र-विचित्रों के बारे में और भी बताइए। हे सूत!'' शौनकादि मुनियों के इस रूप में पूछने पर सूत ने कहा। ''जैमिनी मुनि द्वारा बतायी गयी राम कथा अब मैं आपको सुनाऊँगा। सावधानी से सुनिए।'' ऐसा कहकर सूत ने फिर से बताना शुरु किया।

श्रीराम का वेंकटाद्रि पर पधारना

पूर्व में श्रीराम ने दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेकर, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करके, शिव धनुष को तोड़कर सीता के साथ विवाह किया। परशुराम को युद्ध में पराजित करके अयोध्या नगर पहुँच गए। पिता की आज्ञा पर वनवास करने निकले। तब रावण सीता का अपहरण करके लंका ले गया। तब राम भूपाल रावण को मारने के लिए सुग्रीव, हनुमान आदि से मैत्री करके वेंकटाद्रि के पास पहुँच गए। अंजनादेवी ने श्री वेंकटाद्रि के ऊपर से वानरों के साथ आनेवाले श्रीराम को देखा। उस सोने के पहाड़ से उतरकर उनके सामने आयी। उन्होंने राम को प्रणाम किया। ये महान राम साक्षात विष्णु के अवतार हैं, ऐसा मन में सोचा। अतिशय भक्ति से विनति की। उन्हें वहाँ पर प्रसन्न पाकर इस रूप में कहा। ''हे राम! सुकर्ति कामा! बहु राक्षस यूथ विराम! सद्गुण स्तोमा! दिनकर वंशज घन रामा! दशास्य भीम! आपकी महिमा का गायन आदि शेष भी नहीं कर पाता है। ऐसे में मैं कैसे कर पाऊँगी? हे जगदीश्वर! प्रणाम करती हूँ मेरा उद्धार करो! इस वेंकटाद्रि पर मैं रहती हूँ। इसलिए मुझ पर दया करके वेंकटाद्रि पर आप चले आइए।'' अंजनादेवी की इन बातों को सुन कर श्रीरामचंद्र ने कहा। ''वानर वीरों से शीघ्र ही बहुत दूर जाने की यात्रा है। कार्य पूरा होने के बाद मैं वेंकटाद्रि पर अवश्य आऊँगा।'' ''हे देव! आपके दर्शन के लिए वहाँ मुनिगण प्रतीक्षा कर रहे हैं। इसलिए उन्हें देखने वहाँ पर आपको आना चाहिए।'' इस रूप में अंजना देवी के बुलाते समय हनुमान ने वहाँ पधार कर विनय से नमस्कार करके इस रूप में कहा। ''हे देव! मेरी माता अंजनादेवी ने विनति की है। आप उनका सम्मान करके वहाँ पधारिए। वैसे सारे वानर थक गए हैं। इस समय वेंकटाद्रि जाना ही अच्छा है। श्री अंजनाश्रम में सिद्ध स्थलों के साथ-साथ फल वृक्ष अनेक हैं। कंद, मूलादि, पुण्यतीर्थजल

वहाँ बहुत प्राप्त होंगे। इसलिए कुछ दिनों के लिए वहाँ रहकर बाद में जा सकते हैं। अंजनाद्रि बहुत दूर तो नहीं है। अपनी यात्रा के मार्ग में ही वह पड़ता है। इसलिए मेरी माता पर सत्कृपा करके वहाँ आपको अवश्य आना चाहिए।'' हनुमान के ऐसा बताने पर श्री रामचंद्र ने लक्ष्मण, सुग्रीव की ओर देखकर मंदस्मित होकर कहा। ''हनुमान की बातें सही हैं न?'' ''हे देव! हम वेंकटाद्रि जा सकते हैं।'' ऐसा जवाब दिया। सब सुनकर राम ने स्वीकार किया। हनुमान की तरफ राम ने बड़े गौरव के साथ देखकर इस रूप में कहा। ''हे मारुत पुत्र! तुम्हारी विनति मेरे लिए अच्छा लगा है। अब हम उसी सुमार्ग से जंगल से वेंकटाद्रि जाएँगे। सारे वानरों को रास्ता दिखाओ।'' तब हनुमान इसे स्वीकार करके वानरों को संतोष के साथ बुलाकर वेंकटाद्रि पहुँचने का मार्ग बताया। हनुमान राम और लक्ष्मण को अपनी भुजाओं पर चढ़ाकर चला। बाकी वानरवीर भी उनके साथ-साथ वेंकटाद्रि की ओर चल पड़े। वेंकटाद्रि के मार्ग में वन में तप करनेवाले मुनिगण ने सामने आकर अनेक प्रकार से राम की स्तुति की संतोष के साथ उन्होंने इस रूप में कहा। ''हे राम नृपाल! घोरतर रावण शौर्य विफाल! आत्रजन भव्य सुआर्य! योगीजन तापस पाल! कृपालोल! श्रीदेवी भूदेवी आत्म लोल! परिपूर्ण सुकीर्ति विशाल! वानर सेना समेत आनेवाले आपको देखकर हमारा जन्म धन्य हो गया। बहुत समय पहले इस वेंकटाद्रि पर तप करनेवाले हमारे पास आकर उस विधाता ने कहा था कि एक दिन श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण समेत यहाँ पर आयेंगे। तब तक आप इस प्रदेश में ही रहिए। राम के दर्शन होने के बाद आप सत्य लोक जाइए। ऐसा कहा था। इसी कारण से हम लोग आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आज हमने आपको देखा। हमारे तप चरितार्थ हुए। अब हमें आज्ञा दीजिए हम अब ब्रह्म लोक चले जाएंगे। हे महात्मा!'' ऐसा कहनेवाले मुनियों से राम भूपाल ने अत्यंत अह्लाद से उनकी ओर देखकर

''हे तापसवर्य! आपको इस वन के मध्य में देखकर मुझे बहुत संतोष हुआ है। आपके उत्साह के अनुसार आप ब्रह्म लोक चलिए।'' संप्रीति से कहा। तब मुनिगण संतोष के साथ राम से अनुमति लेकर शीघ्र ब्रह्म लोक चले गए।

उसके उपरांत रामचंद्र वानर समेत वेंकटाद्रि पर आगे चढ़ते गए। मार्ग मध्य में कुछ यक्षों का शाप विमोचन भी किया। फिर कंद, मूल, फल-पुष्पों से भरे अंजनाश्रम पहुँच गए। वहाँ आकाश गंगा के समीप वानर समूह और लक्ष्मण के साथ बसे। आकाश गंगा में स्नान-संध्यादि कृत्यों को पूरा किया। अंजनादेवी के द्वारा समर्पित फल-पुष्पों को ग्रहण किया। तब राम और लक्ष्मण ने संतुष्ट होकर अंजना देवी का आदर किया। तदुपरांत राम-लक्ष्मण ने सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जांबवान आदि कपि श्रेष्ठों के साथ स्वामी पुष्करिणी के पास आकर जयप्रद संकल्प के साथ स्नान किया। बाद में फल-पुष्पों से भरे श्रृंगार वन में सुखासीन हो गए। राम दर्शनार्थ आये मुनिगणों को अनेक फलों को दान के रूप में देकर पुष्करिणी की नैरुति दिशा में वानरों के द्वारा बनायी पर्ण-कुटीर में बसे। तब हनुमान ने अनेक कंद--मूल फलों के साथ शहदादि लाकर श्रीराम को समर्पित किया। अपने सारे परिवार के साथ श्रीराम ने उनका भोजन किया। उनको अयोध्या में रहने जैसा वहाँ रहते बहुत अच्छा लगा।

वानर वीरों के विहार

महान हनुमान ने वानर समूह को पास बुलाकर इस रूप में कहा। ''हे वानरगण! इस वन पर्वत पर जूत, जंबू, अंगूर, कटहल, बदरी, केले, पाल आदि अनेक फल हैं। अपनी इच्छा के अनुसार इनका भोजन आप कीजिए। अत्यंत आनंद के साथ इस वन में विहार कीजिए।'' यह

सुनकर कपि समूह उत्साह के साथ फलों के वृक्षों पर चढ़ गए। इच्छा के अनुसार सारे फलों को तोड़कर पेट भर खाकर शहद छत्तों पर दावा बोलकर जी भर शहद पी लिया। इस रूप में सारे वानर इस वन में बड़ी स्वेच्छा से फलों को खाते, शहद को पीते, एक दूसरे से लडते, चीखते, चिल्लाते, आँखें दिखाकर बड़े आकार वाले कपिगण कलरव करने लगे। अपनी निजी चेष्टाओं से पूरे वन को उन्होंने कोलाहल से भर दिया। कुछ लोग एक दिशा में कुछ लोग दूसरी दिशा में बैठकर एक दूसरे पर दूषण भी कर रहे थे। वे कह रहे थे। ''अब तक हमने बहु वनों को देखा है। अहा! यह पर्वत वन अत्यद्भुत है। इसके बारे में बताना असंभव है। राम की कृपा से यहाँ आकर हमने इनका भक्षण किया अब हमको राम की सेवा में लगना चाहिए। श्रीराम को अपकार करनेवाले रावण को अपनी पूंछ से पकड़कर लाकर रामचंद्र के सामने गिरा देना चाहिए।'' ऐसी बड़ी-बड़ी बातें वे कहने लगे।

कुछ वानरों ने यह भी कहा। ''उस सागर को, उस त्रिकटाद्रि को, उस लंका को उठाकर लायेंगे यहाँ।'' कुछ वानरों ने यह भी कहा ''उस पापी को पाताल में रहने पर भी खींच कर लायेंगे।'' कुछ वानरों ने यह भी कहा। ''गगन में रहनेवाले सूर्य-चंद्र को भी पकड़ कर लायेंगे। शहद के नशे में धुत होकर वे बडबोली बोल रहे थे। उनके मन में राम की जय ही धर कर गयी है।

वैकुंठ गुफा की महिमा

इस प्रकार सारे वानर अनेक प्रकार से बड़बोली करते वन में विहार कर रहे थे। तब स्वामी पुष्करिणी के ईशान भाग में एक गिरी गुफा को देखा। गज, गवय, गवाक्ष, मैंद, द्विविद आदि प्रमुख वानरवीर उस अंधेरे से भरी गुफा में घुस गए। अंधकार में जानेवाले उनको उस गुफा में एक

जगह एक दिव्य ज्योति दिखाई पड़ी। उसके पास पहुँचते समय उस गुफा में नवरत्नों से जटित गोपुर-प्राकार दिव्य दीवारों के साथ, वज्रों से बने गवाक्ष, वैडूर्य-माणिक्य, मरकत, मोतियों से बने मंटप, प्रासाद, चित्र भवन समूह, हरे हरे तोरण, सोने के रथ, श्रेष्ठ अश्व, बड़ी-बड़ी वीथियों के साथ, मधुर गीतों, नृत्य, विविध वाद्य ध्वनियाँ घोषित होते, सुंदर स्त्रियों का नाट्य, चतुर्भुज, गदाधर, शंख-चक्र धारण करनवाले लोग वहाँ दिखाई दिए। उनको ये सब अत्यद्भुत लगे। वहाँ पर इन सारे वैभवों के साथ महाप्रकाश की महिमा से सुशोभित उस पुर के मध्य में सुवर्ण कांति से विकीर्ण होनेवाले एक दिव्य विमान में एक दिव्य पुरुष भी दिखाई दिए।

कपिवीरों के द्वारा परम पुरुष का दर्शन करना

नीलाभ्रगात्र, नीरजनेत्र, आजानुबाहु, अच्युत, कनकांबर रूपी, कंबु कंठी, सल्लिलित, सद्भूषणालंकृत, शंख-चक्र, गदा हस्त-धारी, महात्मा, पूर्ण चंद्र वदनवाले, सुरुचिर, सुंदर, सुकुमार देहवाले, विमल-कारुण्य वीक्षण वाले, हँसते हुए, महा भोगी आसन पर बैठे, वाम पाद मोड़कर, लक्ष्मीश्वर दाएँ पाद धरती पर शोभा से रखे हुए थे। दो हाथ आदि शेष पर रहे थे, लक्ष्मी हृदय में बसी हुई थी, भूदेवी और नीला देवी भक्ति से हाथ जोड़ी हुई थी। इस प्रकार के सुखासीन के साथ बैठे परम पुरुष को कपि वीरों ने देखा।

इस प्रकार सुखासीन पर बैठे उस दिव्य पुरुष के दोनों तरफ सुंदर स्त्रियाँ हाथों में श्वेत चामर लेकर पंखा कर रही थीं। उनके चारों तरफ शंख, चक्र, गदादि आयुध लेकर श्वेत वस्त्रों में श्वेत पुष्पों से अलंकृत होकर कुछ लोग इधर-उधर धूम-धाम कर रहे थे। वे सब उस दिव्य पुरुष की उपासना कर रहे थे। कोटि सूर्य कांति से सुशोभित उस दिव्य पुरुष

की ओर कपिवीरों ने देखा। बड़े आनंद से उस दिव्य पुरुष ने भी कपि वीरों की ओर देखा। तभी कपि वीरों की खोज करते दौड़ते आनेवाले एक और कपि ने भी दिव्य पुरुष को देखा। दिव्य पुरुष को देखकर उसे भय हुआ। फिर बाहर लौटने के लिए दूसरा मार्ग न पाकर वहीं घूम-घाम करने लगा था। बाकी कपि वीरों की ओर देखा। तब उस दिव्य पुरुष ने करुणायुक्त दिव्य भाव से उस कपि को रास्ता दिखाया। उसके साथ सभी कपि वीर उस मार्ग से बाहर निकले। उनको बहुत आश्चर्य हुआ था। तब वे अपने आप में बोलने लगे थे। ''श्री रामचंद्र से हार जाने के भय से रावण ने ही गुफा के अंदर पहुँचकर राक्षसी माया से हमें इस रूप में दिखाया है।'' कुछ लोगों ने इस रूप में कहा। ''यह माया दशकंठ की नहीं है बल्कि हरि की माया हो सकती है।'' ऐसा कुछ ने कहा। ''इस संशय को दूर करने के लिए हमें दूसरी बार गुफा में जाना होगा।'' कुछ ने कहा। फिर से उस गुफा के अंदर जाने के लिए कपियों ने गुफा की खोज करना शुरु किया। किंतु उन्हें कहीं भी फिर से गुफा दिखाई नहीं दी। बाकी को भी यह समाचार देकर सभी उस गुफा की खोज करने लगे। फिर भी जहाँ हरि को देखा था वह गुफा कहीं भी फिर से दिखाई नहीं दी। सबने लौट कर रामचंद्र को प्रणाम करके गुफा के बारे में उन्हें बताया। तब रामचंद्र ने मुस्कराकर कहा।

रामचंद्र की रम्योक्ति

''देवर्षी, राजा, नदीमूल आदि के बारे में परीक्षा के बिना नहीं बताना चाहिए। अत्यंत महिमावान रमाधीश यहाँ विचरण करते रहने को गलत नहीं कहना चाहिए। हरिगिरी की महिमाएँ सिर्फ हरि ही जानते हैं। यह देवताओं को भी नहीं मालूम है। वेंकटाचल पर और भी अनेक महिमाएँ हैं। आपको इस रूप में परीक्षा नहीं करनी चाहिए। हरि सचमुच

ही आपको दिखाई दिया तो इसमें क्या बुरा है। हरि को देखकर आपके जीवन धन्य हो गए।'' ऐसा कपि वीरों से राम कह कर वहाँ से निकल गए।

अगले दिन सारे पर्वत से उतरकर कपि वीरों के साथ राम आगे बढ़े। सागर पर सेतु बांध कर अपनी कीर्ति की स्थापना की। कपि वीरों के साथ और भाई की स्तुति करने से लंका पहुँच कर युद्ध किया। विपुल बल से रावण को युद्ध में हरा दिया। कुंभकर्ण को हराकर और रावण को युद्ध के लिए ललकार कर उसका वध किया। राघव ने इस रूप में युद्ध में विजय प्राप्त की यह देखकर देवतागण ने राम की स्तुति की।

सीता की वहाँ परीक्षा करके राम ने सीता को ग्रहण किया। विभीषण की भक्ति से संतुष्ट होकर उसे लंकाधिपति बनाया। बाद में लक्ष्मी सीता समेत पुष्पक विमान पर चढ़कर सुंदर साकेतपुर पहुँचे। वहाँ भरत शत्रुघ्न की भक्ति से कीर्तन करने पर सिंहासन ग्रहण किया। सारी प्रजा को अत्यंत करुणा दृष्टि से देख कर पालन किया।'' सूत ने शौनकादियों को इस रूप में बताया। तब उन्होंने पूछा - ''वानरों ने गुफा में जिसे देखा वह दिव्य पुरुष कौन है? बताइए।'' उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की। तब सूत ने उनसे इस रूप में बताया। ''वेकुंठ से विरक्त होकर वैकुंठ छोड़ कर शेषगिरि पर विचरण करनेवाले नारायण ने ही उस गुफा के अंदर वानरों को दर्शन दिए। उन्हें अपने निज रूप के दर्शन दिए। वानरों के लिए यह अद्भुत अवसर था। वानरों के द्वारा भूलोकवासी मनुष्यों को भी उस नारायण के बारे में पता चला।''

''इस प्रकार पहाड़ की गुफा में हरि ने वानरों को वैकुंठ दिखाया था। इसलिए उसका नाम वैकुंठ गुफा पड़ा। वैकुंठ गुफा के रूप में आगे वह प्रसिद्ध हो गया। उसमें मुक्तिकामी सन्यासी, देवताओं की पूजा करने

से स्वामी श्रीदेवी और भूदेवी समेत बसे। इस रूप में वह पर्वत वैकुंठाद्रि के रूप में जगत्प्रसिद्ध बन गया। ऐसे वैकुंठाद्रि के बारे में सुनने वालों को भी कलि का दोष नहीं लगेगा। ऐसे लोग पुत्र पौत्राभिवृद्धि पाकर महा ऐश्वर्य संपदाओं से संपन्न बनकर मोक्ष को भी प्राप्त कर लेंगे।'' सूत की इन बातों को सुनकर शौनकादि मुनियों ने सूत की तरफ देखकर इस रूप में कहा।

आश्वांत

''हे पंकज लोचन! दानव भयंकर! सुगुणाभिराम! यव्याधामा! शंकर मित्र! शुभाकर! वेंकटगिरि रमण! मौनि विनुत वितरणा! कलश जलाधिबाला! कांत श्रृंगार लीला! सललित गणजाला! साम सनलोल! खलदनुज विफाल! कालकर्मादि मूला! विलसित गुणशीला! हे वेंकटाद्रि पालक!

गद्य

इसमें तरिगोंड लक्ष्मी नरसिंहा के करुणा-कटाक्ष से बना विचित्र काव्य वशिष्ठ गोत्र कृष्णयामात्य की पुत्री वेंगमांबा प्रणीत श्री वेंकटाचल माहात्म्य नामक वराहपुराण का अंश वेंकटगिरि पुर का वर्णन है। नैमिशारण्य का वर्णन, शौनकादि महामुनियों के प्रश्न, ब्रह्म का दिन और प्रलय प्रकार, हरि के श्वेत वराह के रूप में अवतरित होकर हिरण्याक्ष का संहार करके पाताल में डूबे धरती को यथा स्थान पर लाकर खड़ा करना, श्वेतवराह स्वामी का श्रीदेवी और भूदेवी समेत वेंकटाचल पर बसना, गरुड के द्वारा वैकुंठ क्रीड़ाचल को लाकर धरती पर स्थापित करना, वराह स्वामी का उस पर्वत पर चढ़ कर बसना, ब्रह्म, इंद्रादि देवतागण वहाँ पहुँचकर स्वामी की स्तुति करके विनतियाँ सुनाना, वराह

स्वामी शेषाद्रि पर विहार करना, पुष्करिणी का माहात्म्य, वेंकटाद्रि को एक-एक निमित्त से अलग-अलग नाम प्राप्त होना, वराह स्वामी क्रीड़ाचल के उत्तर भाग में बसना, वहाँ से यज्ञ करनेवाले मुनियों को देखना, स्वयं और लक्ष्मी के वेश बदलकर यज्ञशाला में प्रवेश करना, हरि के द्वारा वप का ग्रहण करना, देशांतर यात्रा करनेवाले वृद्ध ब्राह्मण से हरि के द्वारा कुमार धारा में स्नान करवाकर उसे बाल कुमार बनाकर भेजना, शंखण महाराज को पुष्करिणी में हरि के दर्शन देकर उसे राज्याभिषिक्त करवाना, आत्माराम नामक भक्त को हरि प्रत्यक्ष होकर उसके दारिद्र्य को मिटा कर संपदाएँ प्रदान करना, कपिल लिंग, कपिलतीर्थोद्भव, उस कपिल तीर्थ के ऊपर सप्तादश तीर्थो का प्रभाव, तीर्थ यात्रा पर निकले ब्राह्मण को सपने में दिखाई देकर पुष्कराद्रि में अनेक तीर्थों के दर्शन करवाना, युधिष्टिरादि एक वर्ष के लिए वेंकटाद्रि के पुण्य तीर्थों के आश्रय में रहना, युगभेद से वेंकटाद्रि के प्रकाशित विविध चिह्न, रावण संहार करने जानेवाले श्री राम के द्वारा एक दिन वेंकटाद्रि पर निवास करना, वेकुंठ गुफा में कपिवीरों को परम पुरुष के दर्शन होना आदि अनेक कथा-प्रसंगों का यह प्रथम आश्वास है।

* * *

द्वितीय आश्वास

तरिगोंड नरसिंह

हे व्यास मुनीश्वर हृदय निवास! चिद्विलास! क्षीर सागर शयन! वासव वंदित पदयुगल! भास्वर तरिगोंड नृसिंह! पापविनाश!

शौनकादि के प्रश्न

पुराण प्रवचक सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने कहा। ''विश्व भर में होनेवाले अनेक कार्यों का विवरण आपने हमें दिया है और भी आप बता सकते हैं। इसलिए विष्णु-कथाओं को हमें क्रम से बताइए हे सूत! हे विमल धीसमेत! अपनी माया से विष्णु अनेक स्थलों पर एक ही बार वास करके अपने भक्तों को नायक के रूप में दिखाई देते हैं। बाकी को नहीं है, ऐसा आपने कहा था हे सूत! अंजनाद्रि के समान श्री स्वामी पर जो कोई मन लगायेगा, जो कोई प्रार्थना करेगा उनके पास ही हरि नित्य बन कर रहते हैं। ये कैसी रीतियाँ हैं बताइए सूत!''

सूत का समाधान

''व्यास मुनि के द्वारा मुझे सुनायी गयी कथा को ही मैं आपको सुनाता हूँ। सनकसनादि मुनियों के शाप से वैकुंठ द्वार पालक जय और विजय ने धरती पर जन्म लिया। वे ही हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप हैं। वे साधु जनों को बाधा पहुँचा रहे थे तो चक्री ने वराह अवतार लेकर हिरण्याक्ष का संहार किया। इससे कुपित होकर हिरण्यकश्यप साधु जनों को और सताने लगा। इससे श्रीहरि ने नरसिंह अवतार लेकर उसका संहार किया। साथ ही हिरण्यकश्यप के पुत्र परम विष्णु भक्त प्रह्लाद की रक्षा की। वे हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप ही बाद में रावण और

कुंभकर्ण बने। ने दोनों धरती पर रहनेवाले मुनिगण और साधु लोगों को सताने लगे। रावण और कुंभकर्ण के दुर्गुणों को मुनियों और देवताओं ने विष्णु के पास जाकर बताया। ''हे देव देव! रावण की बाधाओं से हमें मुक्त करके हमारा उद्धार कीजिए। हे परम पुरुष!''

इंद्रादि देवताओं और मुनियों का क्षीर सागर जाना

क्षीर सागर के उत्तर भाग में खड़े होकर उन लोगों ने विष्णु भगवान से विनति की। व्यापकता के साथ अपनी बाधाओं और यातनाओं को श्रीहरि को बताया। ''हे देव! क्षीरसागर वासा! बहु दीन दयालु! सुनिए! रावण नामक एक राक्षस भयानक पापकर्मी बनकर पृथ्वी पर पुण्यात्माओं को पीड़ा पहुँचा रहा है। उसका संहार आपको ही करना होगा। दूसरा कोई नहीं कर सकता है। हे माधव!'' इस रूप में बहुविध प्रार्थना की। साथ ही 'विष्णोहो'' कहते हुए उन्हें पुकारा। तब एक विष्णु दूत ने आकाश में दिखाई दे कर इस रूप में कहा। ''वनजाक्ष! यहाँ नहीं है। अवनि में पर्वत के ऊपर बसे हुए हैं। आप लोग वहाँ जाइए। यहाँ कोई कोलाहल मत कीजिए।'' उसके इस रूप में कहने पर मुनिगण और देवतागण आश्चर्यचकित हो गए। फिर वे हरि के लिए जगह-जगह खोज करने लगे। सारे पहाड़ छान मारे। हरि कहीं भी दिखाई नहीं पड़े। हरि के दिखाई नहीं पड़ने से हरि पर्वत पर नहीं बल्कि वैकुंठ में रहेंगे, समझ कर वेकुंठ मार्ग जाने लगे। तब।

वैकुंठ मार्ग से नारद का आगमन

शुभ्र भास्वर शरीर पर श्वेत बभूति चमकते, धवल संपूर्णचंद्र कलंकहीन कृष्णमृग चर्म प्रकाशित होते, सुरुचिर जटाजूटाएँ सर पर शोभित होते, ललाट पर चंदन बिंदु चमकते, सदा नारायणाक्षर बजानेवाली

वीणा को भुजा पर रखकर श्रीहरि की स्तुति में लीन नारद आते उनको दिखाई पड़े। नारद को देखकर उनको आनंद हुआ। इंद्रादि सभी ने उन से कहा। ''हे नारद! आप सदा त्रिभुवनों में विचरण करते रहते हैं। अनेक रहस्य इसलिए आपको मालूम हैं। इसलिए आप महात्मा हैं हे मुनिश्रेष्ठ! श्रीशैल भूप्रदेश में रावण पहुँच कर वहाँ के लोगों को बहुत सता रहा है। उसे किसी भी रूप में रोकना होगा। यह काम सिर्फ रमापति ही कर सकते हैं। इसलिए हम विष्णु देव की खोज करते क्षीर सागर पर गए। वहाँ कितनी स्तुति करने पर भी हमें श्रीहरि के दर्शन नहीं हुए। हमारी बातें सुनने के लिए वे नहीं आए। इतने में वहाँ पर एक शंख, चक्रधारी ने हमसे कहा कि हरि यहाँ नहीं हैं। भूलोक में विपुल पर्वत पर हैं। वहाँ जाइए। यह सुनकर विष्णु की खोज करते हम निकले। किंतु कहीं भी हमें विष्णु दिखाई नहीं पड़े। कानन, जंगल सब जगह छान मारे। इस मार्ग में हमें कहीं भी हरि दिखाई नहीं पड़े। हमें लगा कि हरि अब वैकुंठ में ही होंगे। रावण के वृत्तांत को बताने हम इस मार्ग से वैकुंठ जाना चाहते हैं। हे मुनींद्र! विष्णु को सुनाने के लिए ही हम निकले।'' उनकी बातें सुनकर नारद ने कहा। ''हे मुनिगण।! वैकुंठ में विष्णु को देखने मैं भी गया था। किंतु वहाँ किसी ने बताया कि विष्णु भगवान वैकुंठ छोड़कर अपनी देवेरी के साथ भूतल पर पर्वत पर बसे हुए हैं। वहीं जाने की उसने मुझे भी सलाह दी है। इसलिए मुझे भी वहीं जाना चाहिए। अब हम सबको ब्रह्म के पास जाकर उनके बारे में पता लगाना चाहिए।''

इंद्रादि का सत्य लोक जाना

नारद के इस रूप में कहने पर देवेंद्र, देवतागण और मुनिगण सब सत्य लोक के लिए निकले। महान चतुर्मुखी, कर चतुष्ट्य से शोभित कमलभव को उन्होंने वहाँ पर देखा। तप्त कनक देहवाले, लोकवंदित,

द्रष्टालोचक, महनीय दंड कमंडल हस्ती, बालभानुप्रभा शोभित, दिव्य पद्मासन पर आरूढ़, परम तापस जनों से परिवेष्ठित निर्मल, सत्कर्म, श्रेष्ठ, सदा परमात्मा के ध्यान में परवश ब्रह्म को देखा। सदा धर्म, शास्त्रानुसार सृजन करनेवाले, सावित्री, गायत्री, भारती के द्वारा पूजित जलजभव को देखा। तब देवतागण, मुनिगण को ब्रह्म ने देखा। तब वे सविनय उन्हें प्रणाम करके हाथ जोड़कर खड़े रहे। तब बह्म ने उनसे पूछा। ''आप सब यहाँ क्यों आए हैं? यहाँ आप बैठ जाइए।'' कहते बड़ी करुणा और आदर के साथ उन्हें बिठाया। बाद में इस रूप में कहा। ''आप सब कुशल-मंगल तो हैं न?'' तब उन्होंने कहा। ''आपकी ललित करुणा से हम सब कुशल हैं। किंतु धरती पर अब एक संकट आ पड़ा है। वह ऐसा है कि रावण से प्रेरित होकर राक्षस श्रीशैल भूभाग में पहुँच कर हमें और जनों को बहुत सता रहे हैं। मनुष्यों को पकड़ कर उन्हें खाते उनका विनाश करते, पापकर्मी बन कर गर्व के साथ मदमत्त होकर मुनियों को बाधाएँ पहुँचा रहे हैं। इस प्रकार राक्षसों को प्रेरित करके साधुओं को सतानेवाले रावण को मारे बिना लोकों में शुभ नहीं होगा। उस पापात्म को शाप देने हम शांतात्म हैं। शाप देने में असमर्थ हैं। अब हमारे कष्ट श्रीहरि ही दूर कर सकते हैं। हमने क्षीर सागर में, वैकुंठ में, त्रिभुवनों में हरि की खोज की है। किंतु वहाँ कहीं हरि दिखाई नहीं पड़े। इसलिए हम आपके पास पधारे हैं। आपकी शरण में आए हैं। श्रीहरि के निवास स्थान के बारे में अब आप को ही हमें बताना होगा। आप सर्वज्ञ हैं। अवश्य हरि के विहार स्थल को जानते हैं। हमें उनके बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। हमारे तप-जप में विघ्न डालकर हमें बहुत कष्ट देनेवाले लोगों का निवारण करने की शक्ति सिर्फ श्रीहरि को ही है। इसलिए उनकी इतनी खोज कर रहे हैं।'' सबके इस रूप में कहने पर ब्रह्म ने यह

कहा। ''वह अब किसी के हाथों में नहीं मरेगा। समय आने पर मनुष्य के हाथों में ही वह मरेगा। देवतादि से नहीं मरने के वर उसे प्राप्त हैं। इसके लिए उसने बड़ा घोर तप किया था। अब उसे कोई हरा नहीं सकता है। फिर भी मैं एक उपाय आपको बताऊँगा। अब आपको श्री वेंकटाद्रि पर बसे श्रीहरि की शरण में ही जाना चाहिए। वे आपकी पीड़ा को समझ कर रावण को मारने के लिए मानव रूप धारण करके उसे मार कर आपकी रक्षा करेंगे। आप चिंता छोड़ दीजिए। श्री वेंकटाद्रि पर आपके साथ मैं भी आऊँगा। आप और मैं पृथ्वी की परिक्रमा करके पद्माक्ष के रहनेवाले स्थान की खोज़ करके हरि को प्रणाम करके अपने कार्य पूरा करेंगे। श्रीहरि अपनी देवी के साथ मिलकर अपनी माया से खग-मृगादि के साथ मिलकर क्रीड़ा करते होंगे। इसलिए यहाँ कहीं हरि दिखाई नहीं पड़ेंगे। फिर एक और विशेषता है। वह यह है कि दशरथ नामक सूर्यवंशी राजा संतान के लिए पुष्करिणी के तट पर तप कर रहा है। अब हरि उसे दर्शन देंगे। तब हमको उस पर्वत पर ही प्रतीक्षा करनी होगी। वहाँ उस राजा को दर्शन देनेवाले श्रीहरि से हमें अपनी विनतियाँ सुनानी चाहिए।'' यह रहस्य व उपाय देवताओं को बताकर तदुपरांत ब्रह्मा उनके साथ श्री वेंकटाद्रि के उत्तर भाग से हरि की खोज करते गिरि की परिक्रमा करने लगे।

गिरि अत्यंत सुंदर और अत्यंत व्यापक है। गिरि मंदार, चंपक, वकुल आदि फूलों के पौधों-लताओं से परिवेष्ठित, चारों दिशाओं में पुष्पों की सुगंध फैल रही है, फलों के वृक्ष भी भरे पड़े हैं, शुक, पीक आदि प्रमुख पक्षीगण विनोद के साथ उत्साह से कूजित करते, गंडबेरुंड, कंठीरव आदि के कलरव ध्वनि आकाश को पहुँच रही थी, गरुड, गंधर्व,

यक्ष, किन्नेर आदि वहाँ विचरण कर रहे थे, नदियों और सरोवरों से भी वह गिरि भरा हुआ था।

ब्रह्म-इंद्र आदि वेंकटाद्रि पर आना

ऐसी सुरम्य गिरि पर ब्रह्म समेत सभी पहुँच गए। सभी ने उस गिरि के महोन्नत तीर्थों में स्नान करके, वन में उपलब्ध फल-पुष्पों को ग्रहण करके श्रीहरि की पूजा की। सुनिश्चित भक्ति के साथ सारे स्वामी के दर्शन के लिए वहीं रहे। स्वामी पुष्करिणी आदि प्रमुख तीर्थों के आश्रय में तप भी करने लगे।

दशरथ का वेंकटाद्रि पर आना

सूर्यवंशी राजा दशरथ निस्संतान है। पुत्र संतान के लिए परिताप करनेवाले दशरथ ने अपने गुरु के पास जाकर उनको प्रणाम करके इस रूप में विनति की। ''हे मुनिनाथ! आप जैसे गुरुओं के होते मुझे पुत्र संतान क्यों नहीं हो रही है। मैंने कौन-सा कुकर्म किया है?'' इस रूप में कहने पर वशिष्ट ने इस रूप में उत्तर दिया। ''हे राजन! आपने तो बड़ा पुण्य किया है। किंतु थोड़ा दोष होने के कारण पुत्र संतान नहीं हुई। इसलिए कर्मों के अनुसार आप वेंकटगिरि पहाड़ पर जाकर पुष्करिणी में हर दिन स्नान कीजिए। उसके तट पर ही रह कर तप कीजिए। इससे आपका पाप दूर हो जाएगा। आपके वंश को बढ़ानेवाली पुत्र संतान होगी। राजन आप चिंता मत कीजिए। शीघ्र ही आपका वेंकटगिरि जाना उचित है। उस वेंकगिरि पहाड़ पर वेंकटेश्वर नाम से श्रीहरि अपनी देवियों के साथ महा विनोद के साथ रह रहे हैं। इसलिए वे आप के पापों को दूर करके पुत्र संतान प्रदान करेंगे। अब संदेह मत कीजिए।'' वशिष्ट की बातें सुनकर दशरथ को बहुत आह्लाद हुआ। फिर पूछा। ''वह वेंकट गिरि

कहाँ पर है? वहाँ जाने के लिए शुभ मुहुर्त कौन-सा है? आप शीघ्र ही मुझे बताइए। हे मुनीश्वर!'' दशरथ के इस प्रश्न के समाधान में वशिष्ट ने कहा। ''गंगा नदी के उस पार दक्षिण में, उस सुवर्णमुखी के उत्तर में एक क्रोश की दूरी पर गंगा के लिए दक्षिण में द्विशत योजनाओं की दूरी पर वेंकटगिरि है। वहाँ पर गंगा से भी पवित्र तीर्थ बहुत प्रवाहित होते हैं। सबसे श्रेष्ठ स्वामी की पुष्करिणी है। वह अति दिव्य पुष्प लताओं से, मधुर फल वृक्षों से महा महिमा के साथ सर्व कालों में वसंत ऋतु की तरह वहाँ फल-पुष्प होते हैं। मेरु पहाड़ की तरह श्रृंगारित रथ के रूप में वेंकटाद्रि दिखाई देगा। रमणीय चैत्र रथ की तरह नेत्र पर्व वह करेगा। किन्नेर, गंधर्व, गीर्वण भामिनियों के नृत्य वहाँ पर होंगे। घने वृक्षादि से, हेम शिखरों से वह सदा प्रकाशवान होता है। प्राकृत लोगों के लिए वह पर्वत अति सुंदर लगता है। उस पर्वत के गौरव के बारे में अतिश्रेष्ठ भी वर्णन नहीं कर पाता है? मुझ जैसे व्यक्ति के लिए तो असंभव है! हे सम्राट दशरथ! ऐसी वेंकटाद्रि के लिए आज ही निकलिए। आज ही शुभ मुहूर्त है, हे राजन!'' ये बातें सुनकर दशरथ पुत्र संतान के लिए शीघ्र ही अपने गुरु के साथ वेंकटाद्रि के लिए निकले।

दशरथ ने वंशाभिवृद्धि के लिए पुत्र संतान का संकल्प करके गंगा में स्नान करके, जप-तप का आचरण करके, षोढश महादान करके, निकलकर गोदावरी, कृष्ण, मलापहरि, तुंगभद्रा आदि प्रमुख नदियों में स्नान का आचरण करते आकर उत्तुंग, तुंग, श्रृंग समेत, फल-पुष्पों से भरे, चैत्र रथ सदृश, मेरु समान दिखाई पड़नेवाले वेंकटगिरि पर चढ़ने लगे। रास्ते में अनेक गव्हार, गुफाओं के दर्शन करते वेंकटगिरि पर पहुँच गये।

दशरथ स्वामी पुष्करिणी के तट पर सत्कर्म निष्ठा में जुटे मुनिवर्यों के दर्शन करना

पद्म, नीलोत्पल आदि प्रमुख अंबुज पुष्पों से सुशोभित, उन पर बैठने के लिए झुंकार ध्वनि करनेवाले भ्रमरों के झुंड, कमलों पर बैठ कर मकरंद पीकर नशे में डूबे भ्रमरों के साथ, मत्स्य, कच्चप आदि महनीय जलचरों से शोभित, उनके कलरव से, वर्तुल लहरों से, प्रकाशवान रूप में दिखाई पड़नेवाली स्वामी पुष्करिणी को देखकर दशरथ बहुत आश्चर्यचकित हुए। उस पुष्करिणी के तट पर जप-तप करनेवाले मुनिगणों को देख कर सद्भक्ति से हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करके वहीं खड़े रहे। वहाँ खड़े होकर देखने पर दशरथ को उस पुष्करिणी के तट पर अनेक फल-पुष्पों से भरे श्रृंगारवन दिखाई दिए। उन वनों में जटा-जूटधारी सिद्ध पुरुष सिद्धासन, सिंहासन, भद्रासन, गोमुखासन, स्वस्तिकासन आदि अनेक प्रमुख आसनों पर बैठ कर रेचक, पूरक, कुंभक आदि योग युक्त प्राणायाम कर रहे थे। आधार, स्वाधिष्टान, मणिपूर, कानोहत, विशु, द्राज्ञा चक्र तक पहुँच कर योग साधना में लीन योग पुरुष अपने-अपने अधिष्ठान देवताओं को समर्पित हो रहे थे। नाडी शोधन करके क्रम-क्रम से चक्रों को पार करते षष्टचक्रों को पार करके षुषुम्ना नाड़ी के मार्ग से ऊर्ध्वमुखी बनकर गमन कर रहे थे। कुछ लोग तो षुषुम्ना से भी आगे सहस्रार कमल चक्र तक पहुँचकर अमृतविंदु का पान करके परवश होते दिखाई दे रहे थे। कुछ लोग तो हृदय कमल और कर्णिका मध्य में अंगुष्ट मात्र आकार में प्रकाशवान परम पुरुष का ध्यान करके आनंद परवश हो रहे थे। सांख्य, तारा, कामना सुयोग्याभ्यास करते अंतर्लक्ष्य, बहिर्लक्ष्य, मध्य लक्ष्यावलोकन करनेवाले भी थे। श्रोत्रा, नेत्र, नासापुट निरोध करके आत्म-प्रत्यय प्रकाश का वीक्षण करनेवाले भी थे। दशविध नाद

सुननेवाले भी थे। अंतर्लक्ष्य से एक नेत्र से स्वरूप ध्यान करनेवाले भी थे। नेत्र बंद करके, सर झुकाकर ऊर्ध्वकंठ में नाद का निरीक्षण करनेवाले भी थे। अपने को निमित्त भूल कर शेषी के लिए ध्यान करनेवाले भी थे। वे सिर्फ आत्मानुभव ही कर रहे थे। स्थूल जिह्वाग्र के बाद सूक्ष्म जिह्वाग्र को स्पर्श करते हुए एकनिष्ठ होकर लंबिकायोग कुछ कर रहे थे। इस प्रकार ध्यान, षण्मुखी, शांभवी, राधा यंत्र, खेचरी मुद्राभ्यास करनेवाले थे। एक पैर पर खड़े होकर सवित्वमंडल मध्य में नारायण का वीक्षण करनेवाले थे। पंचाग्नि के मध्य में बैठकर महाघोर तप करनेवाले भी थे। नृसिंह, रामतारक मंत्र, गोपाल मंत्र, वराह मंत्र, वासुदेव द्वादशाक्षर मंत्र, नारायण अष्टाक्षर मंत्र, शुद्ध प्रणव मंत्र को नित्य सप्तकोटि बार महामंत्र को अंगन्यास, करन्यास, ध्यानपूर्वक एकाग्र चित्त से जप करनेवाले भी थे। श्रीमन्नारायण के विग्रह को ध्यान में लाकर षोढोपचार पूजाएँ समर्पित करते नारायण मंत्र का पारायण करनेवाले भी थे। व्याग्र चर्म, कृष्णचर्म, वल्कलांबर धारण करके पर्ण, कंदादि फलहार खाकर इस प्रकार अनेक प्रकार के कर्म, ज्ञान, भक्ति और वैराग्य जप, तप, होमादि सकल सत्कर्म निष्ठ बनकर रहनेवाले महामुनिजन मध्य में ब्रह्म ध्यान मग्न दिखाई दिये।

ब्रह्म के ध्यान-योग में लीन रहना

चतुर्मुखी, चतुर्बाहु, आठ नेत्र, अनल सद्दश शरीर से दीप्त होनेवाले ध्यान योग में पद्मासन पर बैठकर अनुपम नारायण अष्टाक्षरी मंत्र को जप करने वाले, नासिकाग्र पर द्दष्टि केंद्रित करके स्पटिक सदक्षमाला हाथ में लेकर, मन पर नियंत्रण करके चित्त को चक्रपाणी के पादयुग्म पर केंद्रित करके परम भक्ति से योग करने तैयार होनेवाले ब्रह्म को वशिष्टादि मुनियों ने देखा। उनको बहुत आश्चर्य हुआ। सभी ने वहाँ पर

महाद्भुत निष्ठा से योगसाधना करनेवाले, परतत्व विवेक चिंतन करनेवालों को देखा। उन्होंने उस परमात्मा मधुसूदन पर मन निश्चल करके आत्मज्ञान करनेवालों को देखकर वशिष्ट ने इस रूप में कहा। ''हे दशरथेश्वर! इन महातापसियों के साथ मिलकर श्रीहरि महातप कर रहे हैं। इसलिए श्रीहरि के दर्शन इनको होना सत्य है। धन्यात्मा सर्वलोक पिता की भक्ति से ये यहाँ बसे हुए हैं। इनके तप से संतुष्ट होकर लक्ष्मीपति अवश्य इन्हें दर्शन देंगे। इसलिए इस दिव्य पुष्करिणी को काम्य फल प्रदायिनी समझ लीजिए, इस पर विश्वास कीजिए, हे राजन! अब आप अतिशीघ्र इस पुष्करिणी में डुबकी लगाकर सद्भक्ति से निष्ठा के साथ जप कीजिए।'' वशिष्ट की बातें सुनकर दशरथ ने हँस कर ऐसा कहा। ''हे परमदेशिक! वह जप कैसा है बताइए।''

दशरथ के द्वारा श्रीवेंकटेश्वर मंत्र को जपना

यह सुनकर वशिष्ट महामुनि ने पुत्रकामना करनेवाले दशरथ को दया से श्रीवेंकटेश्वर के अष्टाक्षरी मंत्र का उपदेश दिया। तब दशरथ वशिष्ट की पूजा करके पद्मासन पर बैठ कर पुत्र संतान के लिए महा निष्ठा के साथ जप करने लगे। तब वशिष्ट भी शुचिर-भूत बन कर स्वयं भी तप करने लगे। तब आकाश में गर्जन ध्वनि सुनायी दी। ऐसा है कि मानो नवमेघ वृंद ने महाध्वनि की है। उस ध्वनि के कारण ध्यान परवश ब्रह्म, देवतागण ने अपने नेत्र खोले। तब दशरथ ने अपने आसन से उठ कर उनको प्रणाम किया। तब उन्होंने ''आपकी वंशाभिवृद्धि होगी'' अद्भुत गति से राजा को वरदान दिया। 'कानों को चीरनेवाली आकाश में हुई भीकर ध्वनि किसलिए हुई है? इसका क्या कारण है?' इस रूप में सभी ने आकाश की तरफ देखा तो आकाश में महाप्रकाश दिखाई दिया। उसे देखना किसी के वश की बात नहीं है।

दिव्य विमान का साक्षात्कार होना

ज्वलन, ग्रह, नक्षत्र, बिजली, अनेक चंद्रों आदि के एक साथ मिलने से जो अमित द्युति होती है, ऐसी द्युति के साथ आकाश भर गया। यह देखकर वहाँ सभी विस्मय हो गए। जहाँ देखो वहाँ कांति। देखने में असमर्थ गीर्वाण मुखी सभी ने आंखें बंद कर ली। ब्रह्म मात्र ने उसे देखा। तब कोटि सहस्र मार्तांड भानु प्रकाश से प्रकाशित विमान दिखाई दिया। उस विमान में अनेक गोपुर, अनेक सुंदर प्राकार, अनेक बड़े बड़े भवन, अनेक ललित नीलस्तंभ हैं, बहु वज्रों से जटित रेशमी द्वारःबंध, सुरम्य कवाट, प्रकाशवान विद्रुम मंटप, दीर्घ मंदिर, कांचनोन्नत गोपुर कलश, भूरि मरकतों से बने तोरण, महान ध्वज, पताकों के चमकते, पंचवर्ण द्युति से चमकनेवाला एक शहर ही दिखाई दिया। फूलों एवं मोतियों की मालाएँ, भूरि कलशजाल हवा के हिलाने से हिले, तोते, शिखि, कलकंठी पक्षियों के कलरव ध्वनि से मिल कर वह शहर दीप्त हो रहा था।

इस प्रकार दिखाई पड़नेवाले उस शहर के मध्य में सभा मंटप और उसके मध्य में सहस्र मणिस्तंभों के साथ एक क्रीड़ा मंटप प्रकाशित हो रहा था। उस मंटप के चारों द्वारों पर द्वार पालक खड़े थे। उस शहर में रंग उत्तुंग मातंग तुरंगों का समूह था। राज वीथियाँ बहुत सुंदर ढंग से सुसज्जित थीं। सुंदरी जनों से वे वीथियाँ और भी सुंदर लग रही थीं। इस प्रकार अनेक चित्र-विचित्रों से शोभित विमान को देखनेवाले वशिष्टादि प्रमुख मुनियों से ब्रह्म ने आनंद से इस रूप में कहा। ‘‘हे मुनिवर्य! आकाश मंडल में मुख्य विमान सत्प्रकाश के साथ दिनकर, चंद्र, अनल के प्रकाश के साथ दीप्त होकर दिखाई पड़ रहा है। अब हम उसे देख रहे हैं।’’ उसे देखने मनुष्य, मुनि आदि सभी को बुलाया। आकाश मार्ग में

जानेवाले उस विमान में पूर्व द्वार से आगे बढ़कर वनजविभु श्रीहरि के जाते देखकर दशरथ के मन में बहुत संशय हुआ। तब दशरथ सम्राट ने श्रीहरि के गए मार्ग में उस विमान में प्रवेश करके अंतरालय में श्रीहरि की भय-भक्ति से खोज करने लगे। वासुदेव को देखने की इच्छा के प्रबल होते मन में उत्साह के बढ़ने से सभा मंटप में प्रवेश करके लोक कर्ता और दयालु नारायण को देखा।

श्रीमन्नारायण का ब्रह्मादि को प्रत्यक्ष होना

श्रीमन्नारायण क्रीडामंटप के मध्य में नवरत्न खचित पद्मपीठ पर बैठ कर प्रकाशित हो रहे थे।

सर पर मकुट, वक्षस्थल पर कौस्तुभ रत्न, कानों में मकर कुंडल, बड़े मेखल कंकण, गले में वरवन मालिका वैजयंती, चमकनेवाली अनेक हार, कनकांबर, नील कांति से शोभित देह, अभय हस्त, वाम हस्त में कमल, पावन चरणों के साथ श्री वेंकटेश्वर भास्वर दिखाई पड़ रहे थे। वाम हस्त कटि पर रहते, अन्य दोनों हस्तों में शंख, चक्र युगल प्रकाशित हो रहे थे, शांत भाव से, दयालु हरि दिखाई पड़ रहे थे। हरि आनंदमग्न थे। उनके वक्षस्थल पर अनेक भूषणों के साथ सिरि विराजमान थी। उनके दोनों तरफ भूदेवी और नीलदेवी खड़ी थीं। नील मेघ के बीच में चमकनेवाली बिजली की तरह सिरि वक्षस्थल पर, नील देवी दाएँ ओर, भूदेवी बाएँ ओर शोभित खड़ी थीं। वे अनेक आभरण और रेशमी वस्त्र पहनी हुई थीं। फूल मालिकाएँ उन्हें सुशोभित कर रही थीं। कस्तूरी तिलक धारण की हुई थी। आंखों में काजल, शरीर पर चंदन लेप, सर पर किरीट धारण करके, चंद्रबिंब जैसे मुखड़ों से वे स्वामी की पूजा करते अत्यंत प्रसन्न थीं।

इस प्रकार अतिकोमल शरीर छायावाली, देहकांति से परिवेष्ठित दक्षिण हस्त में नीलोत्पल लिए भूदेवी, विद्युतलता समान प्रकाशित होनेवाली हस्तों में शुभ्र कमल लिए श्रीदेवी, कमल कर्णिकाओं से दीप्त, वाम हस्त में नील कमल लिए नीला देवी हरि के साथ रहकर अत्यंत प्रसन्न लग रही थीं। उनके समीप ही छत्र चामर लेकर सुंदरी स्त्रियाँ पंखा कर रही थीं। इन सबसे परिवेष्ठित श्रीनिवास करुणा-कटाक्षों के साथ ब्रह्म, इंद्रादि देवताओं को प्रत्यक्ष हुए। तब ब्रह्म, वशिष्ट, महामुनिगण, सनकसनंद महायोगी, इंद्रादि देवतागण ने ऐसे श्रीमन्नारायण को देखकर प्रणाम किया। साष्टांग दंड प्रणाम करके जय-जयकार किया। पुलकांकित शरीर, गद्गद कंठ के साथ, नेत्रों में भाष्प के निकलते फिर हाथ जोड़कर इस रूप में विनति की।

ब्रह्मादि के द्वारा श्रीमन्नारायण की प्रार्थना करना

दंडक

वहाँ एकत्रित सभी ने श्रीमन्नारायण की एक कंठ से स्तुति की।

''हे श्रीमत्पराकाश! हे शेषाचलधीश! हे मंगामुखोल्लास! मौनींद्रहृद्वास! संपूर्ण श्रृंगार! सर्वार्थ निर्णेता! सन्मोक्ष संधाता! श्रीभूमि नील समेत! अंबताक्ष! पाठीन कूर्ममित क्रोडरूपा! नृसिंहा! वामन! राम! राम! महासीर हस्ता! यशोदार्चक! बुद्ध! कल्की! प्रभावोज्वालाकार! कालानुरूप प्रकारद्भुतानंद! लीलावतार! निराकार वेदांत सारा! अब्धि गंभीरा! हेमाद्री धीरा विकरापार संसार दूरा! चिदाकारा! कारुण्यपूरा! रमागण्या! पुण्याणुगण्या! सदाक्षिण्या! हैरण्य नेत्रादि दैत्येशरण्या! दावानल ज्वाला! देवेंद्रमुख्य सुरश्रेणिपाला! सुशील! सुवर्ण बचेल! रमालोल! विश्वादि मूल! महायोगी जालात्मकंजात रोलंब! बिंबाधरा! कंबुकंठा! निरालंबा! गोविंद!

नंदात्मज! गोपबृंदावना! दिव्य बृंदावनवासा! कंदर्प सौंदर्य! मंदास्मिता! अब्जोप मनाना! नंदाकंदा! मुकुंदा! गदा शंख चक्रादि अनेकायुधा! घोर नरकांतका! दीनशुंडाल संरक्षका! खंड चंड प्रताप! लसत्कुंडलालंकृत! जांड बंडोदर! अनंत शांत स्वरूपा! अघनिर्लेप! निर्वाण मार्ग प्रदीपा! रणोद्धामा! लोकाभिरामा! घनश्यामा! संपूर्णकामा! महाशत्रु भीमा! जितक्रूर भौमा! मुनिस्तोम! देवोत्तमा! देवतासार्वभौम! सदा आपकी सेवा करने वाले हमारी रक्षा करो ईशा! तरिगोंड धामा! नृसिंहा! नमस्ते नमस्ते नमस्ते नमः'' इस रूप में एक कंठ से सभी ने श्रीमन्नारायण की स्तुति की।

श्री हरि के वात्सल्य वचन

इस प्रकार विनति करनेवाले ब्रह्मादि देवताओं पर करुणा दिखा कर श्रीहरि ने मेघ गंभीर वचनों में इस रूप में कहा। ''हे वनज गर्भा! आप किस काम से आये हैं? बताइए।'' यह सुनकर ब्रह्म देव ने फिर से विनति करके मधुसूदन को देखकर आनंद से इस रूप में कहा। ''हे देव देव! परात्मा! दीन रक्षक! अपनी विनति को सुनिए। उस विश्रुवसु के पुत्र रावण ने महाघोर तप करके सुर, यक्ष, किन्नेर, गरुड़, गंधर्व आदि प्रमुखों से नहीं मरने का वरदान मांगा था। अस्वीकार किए बिना मैंने उसे वरदान दे दिया। इससे वह गर्वाधित होकर लंका से बाहु बल के साथ अपनी सेना को प्रेरित करके श्री गिरि प्रदेश में विचरण करनेवाले महा साधु जनों को सता रहा है। हिंसा से उन्हें भयभीत कर रहा है। अब उसका नाश नहीं होगा। वरदान मांगते समय उसने मानव के हाथों में नहीं मरने का वर नहीं मांगा। इसलिए उसका अंत होना समीप आ गया। आप मानव का अवतार लेकर उसका संहार कीजिए।'' ब्रह्म की इन बातों को

सुन कर श्रीहरि ने मुस्कराते तब अगत्स्य मुनि की ओर करुणा से देख कर पूछा। ''हे महा मुनिवर! आप यहाँ पर क्यों आये हैं?''

तब अगत्स्य मुनि ने कमलाक्ष को प्रणाम करके इस रूप में कहा। ''बहुत उत्साह के साथ मूर्ख दशकंठ धरती पर मनुष्यों को बुहत नुकसान पहुँचा रहा है। जनों की दीन दशा को मैं देख नहीं पा रहा हूँ। इसलिए आपके यहाँ चले आये हैं। हे ईश्वर! अब आप ही उस दसकंठ को मार कर प्रजा की रक्षा कीजिए।'' कहते मुनिवर ने विनति की। यह सुन कर श्रीहरि हँसकर सनकसनंदादि महायोगियों की ओर देखकर ''आप आदि योगी हैं, सदा आनंद में विचरण करनेवाले हैं, आपके यहाँ आने का कारण क्या है?'' पूछने पर उन्होंने इस रूप में कहा। ''हे महात्मा! आपके सद्विग्रह को आंतरिक ज्ञानचक्षु से सदा आनंद का अनुभव करनेवाले हमने कर्माक्ष को होनेवाली भ्रांति से यहाँ पर आये हैं हे परमोपदेशा!'' इस रूप में सनकसनंदादि योगियों ने आत्म रहस्य विचार लक्षणों के साथ योग मार्गरति सूक्तियों के साथ विनति करने पर सुनकर प्रसन्न होकर श्रीहरि इंद्र को देख कर ''आप यहाँ पर क्यों आये हैं? हमें बताइए।'' कहने पर इंद्र ने ऐसा कहा। ''हे यज्ञेश! हे यज्ञांग! हे यज्ञ भावना! यज्ञ कर्म फलप्रद! निर्मलात्मा! माधव! हमारे पितामह, अगत्स्य की विनति की तरह अवनि में रावण दुरात्मा बनकर हमें बहुत सता रहा है। श्रीगिरि प्रदेश में मुनि, मनुष्यादि पर मूर्ख बन कर हिंसा कर रहा है। उसे मारनेवाला कोई नहीं है। हे देव! शीघ्र ही उसे मारकर सकल जन, मुनिगण और हमारी रक्षा कीजिए। ऐसी शक्ति और युक्ति सिर्फ आपके ही पास है। इसलिए हम सब क्षीर सागर के पास आपकी खोज करते-करते वहाँ आपको न पाकर फिर इन गिरियों में खोज-खोज कर, तीन लोक और वैकुंठ में भी आपको न पाकर अब आपके चरणों में आ

पहुँचे हैं। आपके दर्शन से हमारी चिंता मिट गयी है। आप बहुत दयालु हैं। पापात्मा उस रावण को मारकर हमारी रक्षा कीजिए हे मुकुंदा! क्षीर सागर को छोड़कर, श्री वैकुंठ से विरक्त होकर, इस शेषाचल पर आप क्यों बसे हैं? आप किसी को भी दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। इसका क्या कारण है? आपके इसी लोक में होते इस लोकवासियों को रावण कैसे सता सकता है? दुष्टों का संहार करके शिष्टों की रक्षा कीजिए। हे महनीय! स्वकीर्ति आपको प्राप्त होगी। हे परमपुरुष! हमें पहले की तरह अपनी शरण में लीजिए। अवतार लेकर दशकंठ का संहार कीजिए।'' प्रणाम करते ऐसी विनति की। इंद्र की बातों को सुनकर ब्रह्मादि को देखकर श्रीहरि ने इस रूप में कहा। ''हे ब्रह्मादि जन! आपकी सत्कृपा के अनुसार ही आप की रक्षा मैं ही करूँगा। दुष्ट रावण का काल आने दीजिए। अत्यंत बल के साथ सागर को पार करके दशकंठ का यहाँ पहुँचना संभव नहीं है। आप सब यहाँ निश्चिंत रहिए।''

हर के द्वारा हरि से विनति

इस रूप में श्रीहरि के कहते समय शिव भगवान ने वहाँ पर आकर इस प्रकार कहा। ''हे कमलेश! वैकुंठपुर को छोड़कर धरती के शेषाचल पर रहते हुए मनुष्यों के कष्ट-दुर्दशाओं को दूर न करके यहाँ क्यों छिपे हुए होंगे? शायद आप धरती पर मनुष्यों के संकटों को दूर करने के लिए शेषाचल पर वास करते यहाँ जनों का प्रत्यक्ष होकर रहने से यहाँ पर राक्षस नहीं आ पायेंगे। उनके यहाँ न आने से मानव सब आपकी सेवा करते रहेंगे। ऐसे यह पर्वत आपके लिए भूलोक वैकुंठ बनेगा। अब आप इसे मत छोड़िए। मैं भी इसी धरती पर रहना चाहता हूँ। मेरे लिए अनुकूल स्थल शीघ्र ही बताइए। हम दोनों इसी पर वास करेंगे।'' हर के इस रूप में कहने पर हरि ने हँस कर कहा। ''हे परमेश! आपका यहाँ

रहना मेरे लिए सम्मति है। इस महान पर्वत श्रृंखला के नीचे की ओर आप वास कीजिए। आपकी रक्षा में प्रजा भक्ति से आपकी पूजा करती रहेगी। आप यह काम कीजिए।'' हरि की इन बातों को हर ने स्वीकार किया। हरि और हर के इस रूप में धरती पर रहने के निर्णय से ब्रह्मादि देवताओं और मुनिवरों को बहुत आनंद हुआ। तब दशरथ को देखकर श्रीहरि ने कहा। ''हे दशरथेश! आप तापसियों के साथ मिल कर यहाँ पर क्यों आये हैं? बताइए।'' यह सुनकर भक्ति से दशरथ ने श्री रमेश की ओर देखकर हाथ जोड़ कर अनेक प्रणाम करते विनय से विनति की।

दशरथ के द्वारा श्री हरि की स्तुति करना

''हे विश्वकारण! हे विश्वात्मा! विष्णु देव! संततानंद विग्रह! चक्रपाणी! आपके दर्शन करने की इच्छा से आपकी कृपा को प्राप्त करने के लिए आया हूँ। हे इंदिरेश! जिसे पाने के लिए ब्रह्मादि देवतागण तप करते हैं, जिनकी सूक्तियाँ सुनने के लिए मैं तैयार रहता हूँ। जिसके दर्शन के लिए मैं सदा तत्पर रहता हूँ। वे गुरु आप ही हैं। हे विष्णु देव! सकल विमत संहरण कारण! पुरत्रय को सृजित करने की शक्ति भी आप में ही है। आपके प्रभाव के बारे में बताना ब्रह्म देव को भी संभव नहीं है? हे स्वामी! सृष्टि कर्ता भी आपकी महाज्ञा की प्रतीक्षा करते रहते हैं। आपकी आज्ञा के अनुसार देवतागण अपने-अपने कर्तव्य निभाते रहते हैं। आपसे बढ़कर और कौन हैं? आप नाश रहित, अनादि प्रकाशवान, ऊर्ध्व लोक ही आपका निवास स्थान है। इसलिए आपकी सर्वज्ञता के बारे में तत्वज्ञान से कुछ कहने में किसी को भी संभव नहीं है? हे देव देव! परमात्मा! दीन बनकर मैं एक विनति करूँगा। कृपया सुन लीजिए! आपके द्वारा प्रदत्त भूरी भाग्य मेरे पास बहुत है। वंश गौरव बढ़ानेवाले

पुत्र संतान ही नहीं हैं। इसलिए मुझे चिंता हो रही है। 'पुत्र संतानहीन को सत्पुण्य लोक प्राप्त नहीं होंगे' ऐसा वेद-शास्त्र कहते हैं। इसलिए मैं अत्यंत दुःखी होकर आपकी शरण में आया हूँ। आपके दिव्य चरणों में आया हूँ। इसलिए आप सम्मति से सत्य, धर्म, पराक्रम, शक्तिवान पुत्रों को वरदान के रूप में दीजिए। हे कमलनाथ!'' दशरथ के इस रूप में कहने के बाद श्रीहरि ने मन में आनंदित होकर इस रूप में कहा। 'हे भूप! जन्मांतर में घोर पाप आपने किया था इसलिए आपको पुत्र संतान नहीं हुई।'' यह सुन कर दशरथ ने मन में लज्जित होकर शीघ्र ही धैर्य के साथ इंदिराधीश को देखते हुए पुनः कहा।

''हे नारायणाच्युत! अपने पूर्व जन्म में मेरे द्वारा किया गया पाप कितना भी हो सूर्य के उदय होने पर जिस रूप में अंधकार भाग जाता है, उसी रूप में आपके दर्शन मात्र से मेरे पाप सब दूर हो गए हैं। अब मैं पाप मुक्त हो गया हूँ। अब मेरे पापों के बारे में न सोच कर मुझे पुत्र संतान प्रदान करके मुझ पर अनुग्रह करके मुझे पुण्यगति प्रदान कीजिए। यह वरदान आप ही दे सकते हैं। हे नीरजाक्ष! इस रूप में दशरथ हरि के चरणों में समर्पित होकर महादीन बनकर खड़े हो गए। तब स्वामी ने दशरथ की ओर देखकर अपने निर्हेतुक कृपा-कटाक्ष उस पर करते, वीक्षणमात्र से अमृत बिंदु उस नृपति पर बरसाया।

श्रीहरि के द्वारा दशरथ को वरदान देना

''हे दशरथेश्वर! आपको चिंता करने का कोई कारण नहीं है। मैंने ही आपके सारे पापों को दूर करके तुम्हें कृतार्थ किया। अत्यंत बाहुबल पराक्रमी धरती पर मेरे समान चार पुत्रों को दे दूँगा। मुझ पर विश्वास करके तुम अब अपने नगर वापस लौट जाओ। वहाँ तुम शीघ्र ही पुत्रकामेष्टि यज्ञ करो। चार श्लोकों में तुमने मेरी जो स्तुति की है उससे

मैं अत्यंत संतुष्ट हूँ। इसलिए मुख्य वरदान तुझे दे दिया है। अब तुम अपने राज्य लौट जाओ।'' श्रीहरि की इन बातों को सुनकर दशरथ ने श्रीहरि को नमन करके अनेक प्रकार से स्तुति करके फिर से उनसे आज्ञा लेकर, ब्रह्मादि देवताओं को भी प्रणाम करके उनसे भी वरदान प्राप्त करके अपने गुरु वशिष्ट समेत अयोध्या लौट आये। वहाँ पर उन्होंने पुत्रों की प्राप्ति के लिए पुत्रकामेष्टि करने लगे।

तब हरि ने ब्रह्म से कहा। ''हे जलजगर्भा! तुम्हारा अपना सत्यलोक छोड़कर यहाँ रहना क्या उचित है? मैं कुछ समय के लिए इसी पर्वत पर रहूँगा। अब तुम अपने लोक चले जाओ।'' इन बातों को सुनकर ब्रह्म कुछ न कह कर सर झुकाकर खड़े रहे। फिर हरि ने ब्रह्म को इस रूप में देख कर कहा। ''हे पुत्र! तुम्हारे मन में जो इच्छा है मैं उसे पूरा करूँगा। तुम अपना सर उठाकर पूछ लो।'' यह सुनकर ब्रह्म ने हरि के पादपद्मों को नमस्कार करके विनति की।

ब्रह्म के द्वारा प्रकटित कामनाएँ

''हे जनक! इस शैलाग्र पर जिस रूप में आप खड़े हुए हैं उसी रूप में जनों को भी कल्पांतर तक दर्शन देते रहिए।'' ''यह क्यों है?'' प्रश्न करने पर ''कलियुग में। इस अवनि पर जन्म लेनेवाले मनुष्य सत्य, शौचाचार आदि को छोड़कर अधर्मी हो जायेंगे इसलिए यम उन्हें महानरक ले जाएंगे। डांटते उन्हें बहुत बाधाएँ पहुँचाएँगे। बाद में उनको छोड़ने पर भी अनेक प्रकार के दुःख और रोगों से मरते फिर जन्म लेते रहते हैं। इस भू थल में उनका उद्धार करने के लिए यहाँ पर कोई नहीं है। हे स्वामी! आप ही को उनकी रक्षा करनी है। कलियुग में मनुष्यों को होनेवाली अल्पायु, दुराग्रह, कठिन, लोभी, कामुक, कपटी, क्रोधी, जडमति, कुत्सित बुद्धिवाले, परधनासक्त, परसती को मोहनेवाले, दुर्भाग्य,

गर्वी, पामर, साधुदूषक, मात्सर्य संकलित, जारु, चोर, सकल पाप करके वे कष्ट-संकट को प्राप्त करेंगे। उनका उद्धार करने आप वेंकटगिरि पर ही रहते हुए, हे परमपिता! उनकी रक्षा करते रहिए।'' ब्रह्म की इन बातों को सुनकर विष्णु ने इस रूप में कहा। ''अहो कुमार! अपने मन में रहनेवाले विचार को तुमने बहुत अच्छे ढंग से बताया। इस महान भूत दया रखनेवाले तुम्हारी प्रशंसा करूँगा। जनहित करने के लिए इसी शेषाचल पर ही रहूँगा। हे पद्मज! सकल तीर्थों का स्वामी तीर्थ पुष्करिणी को वैकुंठ से मंगा कर यहाँ रखवाया। इस पर्वत पर इस पुष्करिणी के रहते प्रजा पाप कैसे प्राप्त करेगी।। वैकुंठ में पापमुक्त से दीपित सत्पुण्य तीर्थ है यह। इतना ही नहीं गंगादि तीर्थो के लिए स्वामी बनकर इस शेषाचल पर महती ढंग से रहनेवाली इस पुष्करिणी में भक्ति से स्नान करनेवाले जनों के सारे पाप, सकल रोग दूर हो जायेंगे। और उन्हें संपदाएँ प्राप्त होंगी। धरती पर उनकी सारी कामनाएँ मैं पूरा करता रहूँगा। हे जलजगर्भ! तुम चिंता मत करो। आनंद से रहो।'' इस रूप में कहनेवाले चक्री को देखकर ब्रह्म ने इस रूप में कहा। ''दुष्ट राक्षस भूलोक में वनदुर्गों में छिपे रहकर पर्वत पर रहनेवाले जनों को सतायेंगे। इसलिए हे ईशा! यह पर्वत दुर्भेद्य होना आवश्यक है।'' कहने पर सुनकर चक्र की तरफ देखकर विष्णु ने इस रूप में कहा। ''हे चक्र राज! तुम अपने लोगों को लेकर विविध आयुधों के साथ शीघ्र जाकर अभी राक्षसों का संहार करो।'' विष्णु की ये बातें सुनकर विष्णु को नमन करके चक्र ने अपनी सेना के साथ निकल कर प्रलय कालभील भानुबिंब की तरह शीघ्र ही जाकर सकल दुर्गों में रहनेवाले जन-देव कंटकों पर युद्ध प्रकट किया। उन राक्षसों पर क्रोध दिखाते उन पर आक्रमण करके उनका

संहार करके सकल देशों को ठीक करके फिर शीघ्र ही हरि के पास निज बल के साथ लौट कर नमन करके इस रूप में कहा। ''हे स्वामी! रावण के बलों का संहार करके आया हूँ।'' वासुदेव ने तब चक्र को ग्रहण करके ब्रह्म से कहा। ''हे जलजगर्भ! तुम्हारे कहने के अनुसार ही चक्र ने जाकर राक्षसों का संहार किया है। अब जन की चिंता छोड़कर अपने निजी स्थान पर लौट जाओ।'' इस रूप में कहने पर भी ब्रह्म वहाँ से नहीं निकले। ऐसे ब्रह्म को देखकर विष्णु ने कहा। ''हे वनजज! मेरे कहने पर भी तुम नहीं गए। अब तुम्हारे मन में कौन-सी कामनाएँ बची हैं?'' यह सुनकर ब्रह्म ने अति विनय के साथ इस रूप में कहा। ''हे देव! आप और रमादेवी मेरी विनति को स्वीकार कीजिए। मेरे मन में वेंकटगिरि पर अत्यंत प्रसिद्ध और उन्नत आपके रथोत्सव करवाने की कामना है। आप इसकी आज्ञा दीजिए।'' ब्रह्म की इस विनति को सुनकर महाविष्णु ने सिरि के साथ मिल कर सम्मति दी। तब ब्रह्म ने अत्यंत संतोष के साथ मुनिगण, देवताओं से मिल कर तब से स्वामी के रथोत्सव के लिए प्रयत्न करना शुरु किया। विश्वकर्म को बुलाकर आदेश दिया ''वहाँ पर चित्रपुर का निर्माण करो। साथ ही धरती पर इसके निकट ही अनेक शहरों का निर्माण भी करो।'' यह सुनकर विश्वकर्म ने विपुलाद्भुत चित्र-विचित्र रीति से अत्यंत दृढ़ सुवर्ण दीवारों के साथ पुर का निर्माण किया। तत्पश्चात घनतर मेरु तुल्य कनक-रत्न जटित रथ का निर्माण किया।'' विश्वकर्म के इस काम को देखकर ब्रह्म को बहुत संतोष हुआ। तब महान विखानस मुनि की ओर देखकर कहा - 'हे मुनींद्र! वैखानस आगम के अनुसार रथोत्सव के लिए अनुकूल सुनिश्चित लग्न देखिए।'

ब्रह्मोत्सव क्रम

ब्रह्म की इन बातों को सुनकर विखानस ने इस रूप में कहा ''कन्या राशी में सूर्य के प्रवेश करने के मास में चित्राख्या नक्षत्र के दिन शास्त्र सम्मत सद्वजरोहण करके उत्तराषाढ़ में रथोत्सव करके श्रवण नक्षत्र के दिन ही तीर्थ स्नान कराना चाहिए।'' विखानस की इन बातों को सुनकर ब्रह्म ने शीघ्र ही रथोत्सव के लिए आवश्यक प्रयत्न करना शुरु किया। प्रीति से अपने दूतों को बुलाकर सकल देशाधिपति और देवताओं को रथोत्सव में भाग लेने के लिए निमंत्रण भेजा।

ब्रह्म के दूतों ने जाकर हरि के महोत्सव करने के प्रयत्न के बारे में सभी को बताया। सबने अत्यंत संतोष के साथ उत्सव में भाग लेने के लिए हामी भरी। उनमें द्रविड, कर्णाट, कुरु, कुकुर, केकय, कोसल, बर्बर, महाराष्ट्र, मगध, मालव, शूरसेन, सुधेष्ण, चोल, नेपाल, मलयाल, पांड्या, बंगाल, पांचाल, कोंकण, विदर्भ, टेंकण, सौराष्ट्र, सौवीर, शक, किरात, युगंध, आंध्र, विदेह, मत्स्य, पुलिंद, चेदि, त्रिगर्त, सिंहल, सिंधु, लाट, घोट, कांभोज, काश्मीरादि देशाधीश ने अति शीघ्र गति से रथ, गज, तुरंगादि वाहनों पर चढ़कर सकुटुंब उत्सव में भाग लेने निकले। उनके आने के मार्ग में वहाँ जनों ने अन्न-धर्मशालाएँ, नीरागार, छायादार वितानों का निर्माण करके, अन्नोदक वस्त्र-भूषण, छत्र चामर, पादुका, वाहनादि का दान दिया। उन दानों को ग्रहण करके संतोष के साथ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जन, दीन भक्त सभी गोविंद नाम स्मरण करते पर्वत पर चढ़कर वेंकटाचल पर पहुँच गए। वहाँ पर अनेक वासस्थानों पर बसे। तदुपरांत स्वामी पुष्करिणी में स्नान करके आदिवराह स्वामी के दर्शन किए। उन्हें भेंट चढ़ाकर बाद में श्रीनिवास के दर्शन किए। उन्हें भी अनेक वस्त्र, भूषण, धनराशियों को समर्पित किया। सभी

श्रीनिवास की सेवा करने लगे। तब ब्रह्म ने सेनापति विश्वक्सेन को बुला कर इस रूप में कहा। "हे सेनाधिपति! सुनो। हमारे जनक को यहाँ पर उत्सव करने का निर्णय लिया गया है। सारे कार्यों को करने के लिए सारे लोगों को इकट्ठा करके सुरुचिपूर्ण ढंग से निरीक्षण करो।" यह सुनकर विश्वक्सेन को संतोष हुआ। तब सेनाधिपति ने हरि को और ब्रह्म को नमस्कार करके रथ पर आरूढ़ होकर अपने परिजनों के साथ तिरुवीथियों में विचरण करते हुए सभी को अपने-अपने काम सौंप दिए। फिर ब्रह्म के पास आकर हाथ जोड़कर वहाँ किए जानेवाले कार्यों का विवरण दिया। साथ ही सारे कार्यों के लिए अपने को आद्य बना लिया। आगम विहित मंत्रोच्चारण के साथ मत्स्य ग्रहण करके, पुण्याहावाचन करके, मृत्तिका की पालिकाओं में नवधान्य डाल कर नवांकुर शुरु करवाया। इस रूप में अंकुरार्पण और नैवेद्यादि कृत्यों को संपन्न करके अगले दिन प्रातःकाल पुण्याहवचन, वास्तु होम, गरुड प्रतिष्ठा, गरुड होम, भेरी, ताल ताडन, कंकण धारण, अर्चकों को भेंट प्रदान करना आदि कार्यों को पूरा किया।

इसके अतिरिक्त हरि को, भूदेवी को, लक्ष्मी को और नीला देवी को नूतन वस्त्र, आभरणादि समर्पण करके, श्रृंगार करके, वज्र-रत्न खचित तिरुच्चि पर बिठा कर विविध मंगल वाद्यों को भू वायुमंडल में प्रतिध्वनित करते उन्हें बजाया गया। आगे फूलों की वर्षा करवाते ध्वज पट को आविष्कार किया। स्वामी के चक्र और सेनाधिपति आगे-आगे चलने से मुनिगण, सनकासनादि योगियों की प्रशस्तियों के साथ छत्र चामर लेकर सकल देवतागण भक्ति से कीर्तन करते तिरुच्चि तिरुवीथियों में आगे बढ़ी।

अति वैभवपूर्ण ढंग से आनंद निलय में परिक्रमा करते रमेश श्रीहरि को ले आने पर विखानस ने शास्त्रसहित रीति से चित्र का ध्वजारोहण

करवाया। उस रात को अत्यंत वैभव के साथ नवकलशों की स्थापना करके अष्टदिक्पाल और हरि को वहाँ आह्वान करके परिपूर्ण दीक्षा के साथ अग्नि प्रतिष्ठा करके, सकल दैवत्य, पारमात्मिक होम किया गया। इसके अतिरिक्त वाहन, नक्षत्र, वरदिन, साप्ताहिक नित्य होम सब करके दिग्बलि से दिव्य चक्र को ले आकर नेत्र पर्व से भेरी, मृदंग मंगल वाद्यों के घोषण से चारों दिक प्रतिध्वनित होते ब्रह्म रथ के साथ महा शेष वाहन पर श्रीनिवास को विराजित करके वाहन सेवा को निकाला गया। इस वाहन सेवा को अनेक सेवकों के साथ पूर्व रीति से विमान की परिक्रमा करवाते ब्रह्म श्रीहरि को स्वस्थान पर ले आये।

इस प्रकार नवकलश स्थापना, पालिकाराधना, नैवद्य, होम, चक्रबलि आदि नित्य प्रमुख कृत्यों को संपन्न करते रात को शेषवाहनोत्सव को, अगले दिन प्रातःकाल लघु शेषवाहनोत्सव को, उस रात को हंस वाहनोत्सव को, तीसरे दिन प्रातःकाल को सिंहवाहनोत्सव को, उस रात को पुष्प-मोती मालिक वाहनोत्सव को, चौथे दिन प्रातःकाल को सर्वभूपाल वाहनोत्सव को, उस रात को कल्पवृक्ष वाहनोत्सव को, पांचवें दिन प्रातःकाल को मोहिनी के वेश में श्री हरि को नांदोलिकोत्सव को, उस रात को गरुडोत्सव को, छठे दिन प्रातःकाल को हनुमतोत्सव को, उस दिन शाम को वसंतोत्सव के बाद रात को गजवाहनोत्सव को, सातवें दिन प्रातःकाल को सूर्यप्रभा वाहनोत्सव, उस रात को चंद्रप्रभा वाहनोत्सव को, आठवें दिन प्रातःकाल को षोढष महादानादि विहित कृत्य संपन्न किया।

ब्रह्म के द्वारा रथोत्सव का निर्वहण

उसके बाद रंग-बिरंगे वस्त्रों से सुसज्जित कनक रथ पर श्री देवी, भूदेवी, नीला देवी समेत श्री हरि को विराजित करके ब्रह्मादि देवताओं

ने खींचते उत्सव किया है। इसमें सकल दिक्पाल, गरुड, गंधर्व, किन्नेरगण, सिद्ध, विद्याधरों की सेवा के साथ, देवताओं ने दुंदुभी बजाते महाद्भुत रूप में उत्सव किया है। रंभादि अप्सरसाओं ने पारिजात कुसुमों को उस ब्रह्म रथ पर बरसाकर नाचते-गाते महोत्सव के साथ नेत्र पर्व से उत्सव मनाया। महोद्भुत ढंग से मनुष्यों ने वेंकटाद्रि पर इस नेत्र पर्व उत्सव को देखा।

वासुदेव के सुरचिर भक्तों ने इन उत्सवों को देखकर अपने जीवन को धन्य बनाया। तब स्मार्त भक्तों ने उपनिषदों का पठन करते तत्व ज्ञान को प्राप्त किया। तत्ववादियों ने श्रीहरि को श्रुतिसार के रूप में देवोत्तम के रूप में अनुभव किया। वैष्णवों ने प्रबंधानुसंधान के रूप में माधव भक्ति को प्रकट किया। बड़े उत्साह के साथ कविगण ने हरि-कीर्तन किया। पंडितों के द्वारा श्रीहरि की प्रशंसा की गयी। ब्राह्मण स्त्रियों ने गीत गाकर हरि को घी की आरती उतारी। परम भागवत सद्भक्ति से कीर्तन करते उत्साह के साथ नाच रहे थे। भोग स्त्रियाँ हाथों को फिरोते नाच रही थी।

क्रम-क्रम से वंदि मागाधि सूत बृंद पुरुषोत्तम की कीर्ति का गायन करते, सर पर कलश धारण करके कुछ भक्त जन नाच रहे थे। कुछ भक्त 'गोविंद' नामस्मरण कर रहे थे। इस रूप में सभी भक्ति परवश में नाचते गाते उत्सव में भाग ले रहे थे। तब कुछ सुहागिन स्त्रियाँ अट्टालिकाओं से उस स्वर्ण पर चावल और रत्न गिरा रही थीं।

इस प्रकार अनेक प्रकार से उस रथोत्सव में भाग लेते भक्ति परवश में विनोद करते, विनति करते उत्सव मनाते समय कनक कमल, सुगंध पुष्प, मोती मालाओं से सुशोभित मेरु समान रथ आनंद निलय की परिक्रमा करके यथास्थान पर आकर खड़ा हो गया। तब श्री वेंकटेश्वर ने श्री देवी, भूदेवी समेत रथ से उतरकर ब्रह्म रुद्रादि देवताओं समेत

कल्याण मंटप में प्रवेश किया। उन्होंने नित्य होमादि किया। देवताओं ने उनकी पूजा की। ध्वजारोहण से लेकर अब तक स्वामी ने भक्तों से समर्पित घी से बना अन्न, मुद्गान्न, तिलस्यान्न, मरीचान्न, माषान्न, गेहुओं से बना अन्न, पुलिहोर, गूडान्न, परमान्न, दद्यान्न, अतिरस, वड़ा, मनोहर आदि विविध भक्ष्यों का भोजन किया। इससे वे अत्यंत तृप्त हुए। ब्रह्मादि भी इनका भोजन करके अत्यंत तृप्त हुए। तदुपरांत श्रीनिवास को एक पालकी में बिठाकर विमान की परिक्रमा करवायी गयी। फिर कल्याण मंटप में ले आये। अगले नौवें दिन ब्रह्मादि नित्य नैमित्तिक कर्म पूरा करके श्रीहरि को भूदेवी, नीलादेवी समेत मोतियों की पालकी में बिठाकर तिरुमाड वीथियों में शोभा यात्रा निकाली। फिर उन्हें यथास्थान ले आकर उनका हरिद्र चूर्णाभिषेक किया। बाद में चक्रतल्वार को, हरि को, श्रीदेवी, नीला देवी को तिरुच्चि में विराजित करके विमान परिक्रमा के साथ स्वामी पुष्करिणी के तट पर ले आये। वहाँ उनको वराह स्वामी मंटप में रखकर पंचामृत के साथ स्तपन तिरुमंजन, चक्रस्नान, नैवेद्य समर्पण आदि को क्रम से संपन्न किया। तदुपरांत ब्रह्मादि ने अवभृत स्नान किया। तब श्रीनिवास ने उन्हें देखकर इस रूप में कहा।

श्रीनिवास के दिव्य वाक्

''ब्रह्म, रुद्रादि दिक्पालक सभी मेरी बातों को सुनिए। श्रवण नक्षत्र में मेरे चक्र के साथ मिलकर पुष्करिणी में स्नान करनेवालों को अपने पूर्व जन्म में किए गए सारे पाप दूर हो जाएंगे और भाग्यवान बनकर इह-परलोक में सुख-भोग करेंगे। मेरी बातें सत्य हैं। विश्वास कीजिए।'' कहने पर शिव और ब्रह्म ने कहा ''यह सत्य है'' तदुपरांत श्रीनिवास सकल वैभव से अपने मंदिर पहुँचकर वहाँ कल्याण मंटप में बसे।

इसके बाद विखानस आदि प्रमुखों ने प्रसून याग, नित्य होमादि कृत्यों का निर्वहण करके पत्नी समेत हरि को विमान परिक्रमा करवाकर उनके निज स्थान पर विराजित किया। बाद में ब्रह्मादि दिग्देवता बलि, समापन के रूप में द्वजावरोहण, संकुराक्षतरोहण, संपूर्ण होम, कलशोद्वान और स्वामी को प्रधान कलश वाहन किया। तब श्रीनिवास ने विखानस को कनक, रत्न, खचित सभा मंटप में भेंट प्रदान की। उसी सभा मंटप में श्रीदेवी, भूदेवी और नीला देवी समेत सकल दिव्य भूषण करनकांबर परिमल गंधपुष्प मालाओं से अलंकृत होकर ब्रह्म, रुद्र, देवेंद्र, मुनि, योगीश्वर प्रमुखों, सकल देशाधीश राजाओं से परिवेष्ठित होकर उनकी स्तुति करने से हरि ने सकल वैभव को ग्रहण किया। सहस्र करों से दीपित होते सुवर्ण सिंहासन पर आरूढ़ होकर संतोष के साथ ब्रह्म की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''हे कमलज! आपका संकल्प संपन्न हुआ। मुझे बहुत आनंद हुआ। सुमहित के रूप में संपन्न ये उत्सव आगे 'ब्रहोत्सव' नाम से धरती पर प्रसिद्ध होंगे।। स्थिर चित्त से तुम्हारे द्वारा यहाँ संपन्न दिव्य रथोत्सव को भास्वर भक्ति से यहाँ आकर देखनेवाले दुष्कर घोर भव वारिधि पार करके सुख को प्राप्त करेंगे। उन सबकी मैं सदा रक्षा करता रहूँगा। हे विधाता! अपने मन में इस पर विश्वास करो। मेरे रूप को मन में लाकर मेरे कीर्तन गाते हुए दूसरे विचारों को छोड़कर मुझ पर विश्वास करके, मुझ पर भक्ति से अपने को समर्पित करने की विधि में पूजा करनेवालों के प्रति मैं सदा आसक्त रहूँगा। उनकी आपदाओं को दूर करूँगा। भक्ति से उनकी सारी कामनाओं को पूरा करूँगा। धन, रत्न, वस्तु, वाहन, धान्य, संतान आदि सब कुछ उन्हें प्रदान करूँगा। इसके अतिरिक्त उन्हें मोक्ष दूँगा। मुझ पर सद्भक्ति दिखानेवाले जनों को सदा मैं सहचर बन कर लाभ पहुँचाऊँगा। जितना वे मुझ पर विश्वास करेंगे उतना फल उन्हें मैं प्रदान करूँगा। मुझ पर न विश्वास करनेवालों को मैं कुछ नहीं दूँगा। इस पावन स्थल पर भक्ति से जो कोई अन्न, वस्त्र, गृह, पात्र आदि को आर्तजनों को दान करने से वे धन्य हो जाएँगे। अवनि में उन्हें भाग्य प्राप्त हो जाएँगे।'' ऐसा कहकर रुद्र, देवेंद्र आदि को देखकर फिर से इस रूप में कहा।

''हे देवतागण! सूर्य के कन्याराशि में प्रवेश करने पर इस प्रकार उत्सव करना चाहिए। तब आप सब यहाँ पधार कर पर्व के रूप में प्रति वर्ष भक्ति से इस उत्सव में भाग लेना चाहिए। आगे इसी रूप में यहाँ पर भक्ति से इस महोत्सव को मनाना चाहिए। अब मैं यहीं पर रहूँगा।'' कहते हुए राजाओं को बुलाकर 'हे अवनीश! आप वर्ष में एक बार यहाँ पहुँच कर धरती पर आपके द्वारा अर्जित धन राशि में चौथे भाग को ले आकर मुझे समर्पित करके पूरा साम्राज्य आप प्राप्त कर लीजिए।' कहते हरि ने भूमिपतियों को आज्ञा दी। आगे इस रूप निर्मल पुण्य कर्म करने के लिए विप्रों से कहा, बिना भूले ब्राह्मण परिवारों की रक्षा करने के लिए राजाओं से कहा, द्विजों का अनुसरण करते हुए धरती पर वाणिज्य करने के लिए वैश्यों से कहा, विप्रों की सेवा करते हुए दास बनकर सुखी रहिए, ऐसा शूद्रों से कहा। ''ऐसे नियम बनाकर आप सब यहाँ पर नित्य पुष्प, तुलसी वनों की स्थापना कीजिए। शांति से कभी भी अपने धर्म से विचलित मत हो जाइए।'' इस रूप में श्री हरि ने सभी को हित शुभ उपदेश दिया।

ऐसा कहते हरि ने चतुर्वर्ण लोगों को उनके अनुकूल अनुसरणीय धर्मों का उपदेश दिया। वस्त्र, भूषण, चंदन, तांबूलादि अपनी सन्निधि में सभी को भेंट के रूप में दिलाया। 'अब अपने स्थानों पर जाकर एक वर्ष के बाद यहाँ पर आइए' ऐसी आज्ञा देकर श्री हरि ने उनकी विदाई की।

तब वे सभी हरि को नमस्कार करके उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए वेंकटाचल पर्वत से उतरकर अपने-अपने देश लौट गए। तब हरि ने ब्रह्म आदि प्रमुखों को देखकर इस रूप में कहा।

श्रीहरि के द्वारा ब्रह्मादि को विदाई देना

''हे ब्रह्मादि देवतागण! मेरी बातें सुनिए! इस वेंकटाद्रि पहाड़ पर जो जन कन्यादान करते हैं उससे मुझे अत्यंत तृप्ति होगी। उन पर मेरी कृपा होगी। इस पहाड़ पर सकल विद्या दान करनेवालों को और उनके वंशजों को, अनेक पीढ़ियों तक के लोगों को पुण्यगति प्राप्त होगी। यहाँ पर कोई वृंदावन का निर्माण करके उसमें तुलसी के पौधे को गाढ़कर उसके दलों से भक्ति से जो मुझे समर्पित करेंगे मैं निश्चय के साथ उनको स्वर्ग-साम्राज्य दूँगा।

इस प्रकार एक तुलसी दल का फल अत्यंत दिव्य वर्ष, स्वर्ग भोग, मोक्ष प्रदान करेगा। उन्हें स्वर्ग भोग भी प्राप्त होंगे। इसलिए इस पावन वेंकटाद्रि पर सकल दिव्य पुष्पों को पैदा करके उन पुष्पों को सद्भक्ति से मुझे अर्पित करने से वे अहंकार मुक्त होंगे। साथ ही उन्हें जीवन शांति और मोक्ष भी प्राप्त होगा। इसके अतिरिक्त सद्भक्ति से जो षढ्रोप अन्नों को यथोचित रूप में मुझे समर्पित करेंगे उन्हें मैं सकल लोकों में शुभ-फल दूँगा। इस प्रकार अनेक प्रकार से कर्म, ज्ञान, भक्ति, धर्म सूक्ष्मों को ब्रह्मादि देवताओं को सुनाकर तदनंतर ब्रह्म की ओर देखकर श्रीहरि ने इस रूप में कहा।

''हे जलज संभवा! तुमने सत्यलोक छोड़कर इतने दिन यहाँ वास करके ब्रह्मोत्सव जैसे महोत्सवों का निर्वहण किया। इससे हे वनधिजा! मैं, श्री देवी, भूदेवी और नीला देवी अत्यंत संतुष्ट हुए। आपकी कीर्ति यहाँ

बनी रहेगी। अब तुम्हें और क्या वरदान दे सकता हूँ।'' यह सुनकर सरस्वती पति ने इस रूप में कहा। ''हे जनक! पहले ही मुझ पर कृपा दृष्टि करके मुझे सब कुछ दिया है। मुझे किस चीज की कमी है? अब मुझ पर कृपा करके हे पिताश्री यहाँ से अदृश्य न होकर यहीं पर बने रहिए। नरक जाने से बचा कर सभी नरों का उद्धार आप यहीं रहते कीजिए। इससे बढ़कर मुझे किसी वरदान की जरूरत नहीं है। हे भक्त वरद! हे मुकुंदा!''

श्रीहरि के द्वारा दिया गया संदेश

ब्रह्म की इन बातों को सुनकर श्री हरि ने इस रूप में कहा। ''तुम्हारी बातें मुझे सम्मत हैं। अब मेरा एक विचार है। उसे सुनो। मुझ पर विश्वास करके भक्ति के साथ रहनेवाले साधुओं को सतानेवाले का मैं निश्चय रूप से विरोध करूँगा। मेरी निंदा करने से मैं सहूँगा। अपने भक्तों की निंदा को मैं सहन नहीं कर सकूँगा। जय, विजय के द्वारा सनकसनंदादि का किया गया जो अपमान छोटा होने पर भी उनका मैंने संहार किया। उसी रूप में आगे भी मैं अपने भक्तों की रक्षा करता रहूँगा। भागवतोपचार महा पाप है। इसलिए ऐसे पाप को जानबूझ कर करनेवालों को मैं नरक भेजूँगा। उनकी रक्षा मैं किसी भी रूप में नहीं करूँगा। इसके विपरीत अनेक याग करके मेरे पास आकर मेरी शरण में आनेवाले दीनजनों का उद्धार मैं करूँगा। हे पद्मजा! मेरे भक्तों की निंदा करनेवालों को, गुरु दूषकों को, विश्वास करनेवालों को धोखा देनेवालों को मैं नरक भेजूँगा। उनका उद्धार किसी भी रूप में नहीं करूँगा।

अतिशय दंभ करनेवाले, दर्प-अभिमान करनेवाले, दुराचारी, घोर दुराग्रह का अनुसरण करनेवाले सजा पाने योग्य हैं। उन सबको मैं बाधाएँ

पहुँचाऊँगा। धरती पर ऐसे पापात्माओं को मैं ही सजा दूँगा। दुष्टों का संहार करके शिष्ट जो बलहीन हैं, उनकी रक्षा करने के लिए ही मैं शेषाचल पर ही वास करूँगा। अब तुम सत्य लोक लौटकर संकट मुक्त होकर सृष्टि करते रहो। तुम पर सदा मैं अनुग्रह करता रहूँगा। अब हे पुत्र! अपने लोक के लिए निकलो।'' कहते ब्रह्म को आज्ञा देकर इंद्र से श्रीहरि ने इस रूप में कहा। ''हे देवेंद्र! तुम देवतागणों के साथ अपने लोक जाकर अपने बल को बढ़ाकर तीनों लोकों पर राज करो! आगे दैत्यों से डरकर विचलित मत हो! तुम्हारी जय हो। शांति से रहो हे सुराधिनायक!'' इस रूप में इंद्र को आज्ञा देकर स्नेह से शिव की ओर देखकर मुस्कराते स्नेह भाव से इस रूप में कहा। ''हे गौरी नायक! मेरे महोत्सव का संकल्प करके आप सबने यहाँ पर आकर इस महोत्सव में आनंद से भाग लिया। मुझे बहुत आनंद हुआ। अब तुम अपने कैलास जाकर वहाँ पर पहले की तरह अपने भक्त वृंदों की देखभाल करो। हे शंकर! वैकुंठ से बढ़कर, क्षीरसागर से भी बढ़कर, सूर्य मंडल से भी बढ़कर, धन्य श्वेत द्वीप से भी बढ़कर शेषाचल पर्वत विशेष महिमावान है। यह भूलोक वैकंठ की तरह प्रचलित हुआ है। इसलिए मैं यहीं रहूँगा। यहाँ से पूरब की दिशा में सुवर्णमुखी तट पर तुम वास करो। वह भूलोक कैलास के रूप में प्रचलित हो जायेगा।'' इस रूप में कहते तदुपरांत अगत्स्य की ओर देखकर आदरता से इस रूप में हरि ने कहा। ''हे परम पावन! कुंभसंभव! महात्मा! जो स्थल आपको पसंद है वहाँ आप बसिए।'' ऐसे कहते मुनियों की तरफ देखकर हरि ने इस रूप में कहा। ''हे योगीश्वर मुनिगण! आप लोग विराग की महिमा को जानकर ज्ञानामृत पीकर सदा तृप्त रहते हुए स्वेच्छा से विहार करते रहिए।'' ऐसा आनंद से चक्रधर ने कहा।

तब ब्रह्म, इंद्र, रुद्र, कुंभ संभव, सनकसनंदादि को इस रूप में आज्ञा देकर श्री देवी, भूदेवी और नीला देवी समेत श्रीहरि ने अंतर्विमान में प्रवेश किया। तब ब्रह्म हंस पर आरूढ़ होकर सत्य लोक गए। इंद्र ऐरावत पर चढ़कर इंद्र लोक गए। रुद्र नंदि वाहन पर आरूढ़ होकर शेषगिरि की दक्षिण दिशा में कपिलतीर्थ की ओर से निकल कर कैलास चले गए। अगत्स्य आदि प्रमुख मुनिगण, सनकसनादि प्रमुख योगीश्वर स्वामी पुष्करिणी की उत्तर दिशा में रहनेवाले पापविनाशन तीर्थादि तीर्थो में पुण्य स्नान करते अपने पापों को नष्ट करते हुए फाल्गुण मास के शुद्ध पौर्णमी तिथि के दिन पुण्य तीर्थ तुंबुरकोन तीर्थ के समीप लक्ष्मी को लेकर अरुंधती के द्वारा तप करके वरदान प्राप्त करनेवाले पुण्य सरोवर तीर्थ के तट पर बसकर तप करने लगे। वहाँ कुछ मुनिगण और कुछ पुण्यतीर्थों का आश्रय लेकर तप करने लगे। यह ब्रह्मोत्सव का क्रम है।

फल श्रुति

'इस ब्रह्मोत्सव के बारे में लिखने से, पढ़ने से, सुनने से लोगों को आयुरारोग्य और ऐश्वर्य आदि प्राप्त होंगे।' ऐसा कहने पर सुनकर सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने इस रूप में कहा।

आश्वांत

हे सुंदर विग्रह! घनतर मंदर गिरिधर! समस्त मौनि हृदाब्जानंद कर! वेंकटाचल मंदिर! सुरराजु विनुत! मायातीता!

हे सुरचिर गुणहारा! शुभ्रकीर्ति प्रचारा! वरजलधि गंभीरा! वासवारि प्रहारा! दुरितचय विदारा! दुःख संसार दूरा! गुरुतर गिरिधीरा! क्रूर गर्वपहारा!

यह तरिगोंड लक्ष्मी नृसिंह करुणा-कटाक्ष से कलित काव्य विचित्र वसिष्ठ गोत्र पवित्र कृष्णयामात्यानुभव वेंगमांबा प्रणीत श्री वेंकटाचल माहात्म्य के वराहपुराण में देवेंद्रादि प्रमुख क्षीराब्धि के पास श्रीहरि की खोज करना, तदुपरांत नारद से प्रेरित होकर ब्रह्मलोक को जाना, ब्रह्म के साथ देवेंद्रादि मिल कर हरि की खोज करने वेंकटाचल पर्वत पर चढ़ना, दशरथ अपने गुरु वशिष्ट के साथ वेंकटाद्रि पर आना, पुष्करिणी के तट पर ब्रह्मादि का तप करना, श्री वेंकटेश्वर विमान समेत ब्रह्मादि को दर्शन देना, ब्रह्मादि के द्वारा स्वामी को विनति सुनाना, हरि प्रसन्न होकर ब्रह्मादि से संवाद करना, दशरथ के द्वारा हरि की स्तुति करना, श्रीनिवास के द्वारा दशरथ को वरदान देकर अयोध्या भेजना, ब्रह्मोत्सवों का क्रम आदि कथा-सहित यह द्वितीय आश्वास है।

* * *

तृतीय आश्वास

तरिगोंड नृहरि (संबोधन)

हे श्रीकर! निर्जर मौनिशीकर! सद्भक्त बृंद चित्त विहारा! राकेंदु वदना! शुभकर! प्राकट तरिगोंड नृहरि! पाप विदारी!

सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने कहा। ''हे सूत! हमने ब्रह्मोत्सव क्रम को आश्चर्य के साथ सुना है। तब विष्णु के चक्र ने बहु चोर समूहों का संहार किया, ऐसा आपने बताया। उनका संहार उसने कैसे किया? उसके बारे में जानने की इच्छा है। आप कृपया उसके बारे में बताइए।'' तब सूत ने संशय दृष्टि से देखकर ''हे मुनिगण! सुनिए। उस महान चक्र के बारे में बताने के लिए मैं कितना महान हूँ? फिर भी थोड़ा बहुत बताऊँगा।'' कहते फिर कहना शुरु किया। ''चक्र ने माधव की आज्ञा का पालन करते हुए संतोष के साथ निकलकर महान राजा के रूप में अपना वेश बदल लिया।

चक्रराज का अष्टदिशाओं के चोर समूहों पर विजय प्राप्त करना (चक्रराज की दिग्विजय यात्रा)

चक्रराज अपने बल पर सहस्र बाहु के रूप में बना। मुकुट आदि रत्नभूषण, रक्त वर्ण वस्त्र धारण करके, कालाग्नि समान, दुष्टों का संहार करनेवाले कराल चक्र के रूप में चमकते, विपुल रथ पर आरूढ़ होकर विविध आयुधों के साथ निकला। गंधर्वगणों को इकट्ठा करके मुद्गर आदि आयुधों को धारण करके साथ चलने पर चोर समूहों को मारने निकला। गुमुड नामक ज्वालामुखी सकल सेना का नेतृत्व करते बलवान अश्वों समेत घन रणभेरी बजाते कोलाहल आकाश को छूते संग्राम के लिए निकला।

पूरब की दिशा

इस प्रकार अनेक वैभवों के साथ और सेना के साथ चक्रराज ने शेषाचल से आरंभ करके पूरब में सागर तक वन-पर्वतादि को आक्रमण करके सकल साधु जनों को बाधा पहुँचानेवाले चोर समूहों को ढूँढ़-ढूँढ़ निकाल कर उन्हें परिवारसमेत संहार करके साधु जनों को उनकी बाधाओं से मुक्त किया। तब साधु जनों ने चक्रराज के आगे आकर इस रूप में विनति की। ''हे महाराज! इस भूमि के लिए कोई राजा नहीं है। इसलिए चोरों ने साधु मानवों को अनेक प्रकार के कष्ट दिए। आपने उनका संहार करके हमारी रक्षा की है। हे पुण्य पुरुष! आप कहाँ से और किस इच्छा से यहाँ आये हैं? आपने हमें नया जीवनदान दिया है। आप ऐसे पुण्यात्मा हैं। आप आगे भी यहीं रहिए महात्मा!'' ऐसे कहनेवाले सुजनों का आदर करते चक्रराज ने उस भूमि के लिए एक राजा को ढूँढ़ कर उसे पट्टाभिषिक्त किया 'विप्र आदि साधु जनों की रक्षा करो।' कहते उसे नियुक्त करके मनुष्यों को श्रीनिवासाद्रि को पहुँचने के मार्ग के बारे में बतलाया। साथ ही उन मार्गों में अद्भुत रूप में धर्मात्माओं को भी रखा। फिर वहाँ पर जयभेरि बजाकर वहाँ से निकला। उस चक्रराज के साथ अश्व सेना, रथ-सेना, पदातिदल आदि युद्ध के वाद्यों को बजाते अपने शौर्य का कीर्तन करते निकले।

आग्नेय दिशा

अत्यंत संतोष के साथ चक्रराज दुष्टों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर तब आग्नेय दिशा में आया। चोरों को रणभेरि सुनाते उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। पहले मूर्ख बनकर साधु जनों को बाधा पहुँचानेवाले पापात्माओं पर आक्रमण किया। चक्रराज को देखकर दैत्य डर गए। तब उन्होंने भी

आयुध धारण करके घोर अट्टहास करते युद्ध किया। दोनों ओर से घमासान युद्ध हुआ। चक्रराज की ओर से ज्वालामुख और कुमदादियों ने अट्टहास करते हुए कालांतक बनकर चोरों से युद्ध किया। उन चोरों का संहार किया। बाकी चोर वहाँ गिरे शवों को कुचलते भाग निकले। तब गंधर्वों ने अपने गदाओं से उनका संहार किया। इसके अतिरिक्त गंधर्व जन दिव्यास्त्र धारण करके बड़े उत्साह के साथ शत्रुओं की ओर दौड़ कर रोष के साथ उन पर गिर पड़े।

तब मृत्यु से बचे चोरों ने भागकर अपने प्रभुओं को अपनी पराजय के बारे में बताया। तब चोर प्रभुओं ने स्थल दुर्ग, वनदुर्ग, जलदुर्ग में रहनेवाले तथा त्रिपुर में रहनेवाले राक्षस बलों को बुला लिया। साथ ही विविध मायाओं से विचित्र आयुधों के साथ लड़ना शुरु किया। उनके पास तलवार, शूल, मुद्गर, खिंडिनाल, परशु, पट्टिस, शर, चाप, परिघ्यादि अनेक साधन थे। उनको ले आकर गंधर्व बलों के साथ युद्ध करना शुरु किया। तब गंधर्वों ने भी एकमुखी होकर चोर समूहों पर दावा बोल दिया। चित्र-विचित्र ढंग से उनके बीच में घमासान युद्ध हुआ। तब युद्ध भूमि में भेरि निनाद, प्रमुख रण वाद्यों के बजते भीषण युद्ध वातावरण छा गया। चारों दिक युद्ध ध्वनियों से गूंज उठे। दोनों तरफ के वीरों ने एक-दूसरे पर शूल भोंक कर, तलवारों से वार किया। गदा और मुसलों से एक दूसरे को मारा। इस प्रकार दोनों ओर के सैनिकों ने घमासान युद्ध किया। तब धरती पर रक्त की नदियाँ प्रवाहित हुईं। तब चोर नायकों ने गंधर्वों को भगाते समय ज्वालामुख ने चक्रराज को यह समाचार दिया। तब चक्रराज ने अत्यंत रोष के साथ भीषण रूप धारण करके त्रिपुरांतक की तरह कालाग्नि बन कर महोग्र रूप धारण करके सहस्र बाहु और सहस्र हस्तों में तलवार उठाकर, बाकी सहस्र हाथों में वृक्षों के कांडों को पकड़

कर चोर नायकों पर धावा बोल दिया। शंख नाद करके शत्रुओं के समूहों पर अनेक भीषण बाण छोड़े। बाणों की वर्षा करके उन्हें तितर-बितर किया। उनमें कुछ टूटे, कुछ कुचले, कुछ धंस गए। इस रूप में चोर समूह के सैनिकों का नाश हुआ। तब बाकी चोर अपने नायकों के साथ भाग निकले। भागकर वे अपने दुर्गों में छिप गए।

उनका पीछा करते हुए चक्रराज ने आग्नेय दिशा तक उन्हें खदेड़ा। दूर से ही उन पर आग्नेय बाण छोड़कर उन सबको मार दिया। उन बाणों ने उन सबको जला डाला। दुर्गों में छिपे चोरों को भी बाणों ने नहीं छोड़ा। उन सबको जलाकर भस्म किया। तब धरती उन चोरों से मुक्त हो गयी।

इस प्रकार निश्शेष शत्रुओं का नाश करके चक्रराज ने धरती पर अमित वृष्टि करवायी। भूमि शीतल हो गयी। तब धर्माध्यक्ष नामक राजा को उस भूमि का राजा बनाकर उसे राज्य पालन सौंप कर 'धर्म के साथ प्रजा पर शासन करो।' ऐसी आज्ञा देकर वहाँ से विजय के साथ निकला।

दक्षिण दिशा

चतुरंग सेना कोलाहल करते, उनके द्वारा पूजित होते चक्रराज तब दक्षिण दिशा की ओर निकला। वन दुर्गों में चोर समूहों को क्रम से ढूंढ़ते पकड़े गए चोरों का संहार करते आगे बढ़ा। तब वहाँ रहनेवाले सज्जन जन ने उस चक्रराज का दर्शन करके वे अपने लिए ईश्वर समझ कर, वसुधा को बचाने आये हैं, समझ कर अत्यंत आनंद प्रकट किया। दूसरी ओर चोरों की ओर से यंक, वंक, पुलिंद, बिडाल, चालुक नामक दैत्य थे। वे अपने हाथों में विविध आयुध लेकर युद्ध के लिए तैयार हो गए। किसी के हाथ में गदा, किसी के हाथ में कुंत, किसी के हाथ में मूसल, किसी

के हाथ में मुद्गर, इसी रूप में शूल, चाप, तलवार आदि प्रमुख साधन थे। वे अपने आप में इस रूप में बात भी कर रहे थे। 'इस रूप में हमारे सामना करनेवाले चोरों को मैं ही मार दूँगा।' ऐसा एक ने कहा। दूसरे ने कहा 'अपने गदा से उस पूरे समूह को मैं ही मार दूँगा।' एक और ने कहा 'चलते आनेवाले पदाति सेना को मैं अकेला ही मार दूँगा।' एक और ने कहा 'प्रबल रथ चढ़कर आनेवाले प्रभु की तरह मैं ही उन चोरों को मार दूँगा।' 'हाथियों से, घोड़ों से, अमित पदाती सेना से, रथ से आनेवाले वीरों से राजा के साथ मिलकर मैं अकेला ही मार दूँगा।' एक और मूर्ख ने अपने बल पर अतिविश्वास करके कहा। इस प्रकार पंच महापापी यंक, वंक, पुलिंद, बिडाल, चालुक नामक दैत्यांश संभूत चोर अपने प्रचंड बल से चक्रराज से युद्ध करने तैयार हो गए।

अपने सामने की तरफ से आनेवाले इन दैत्यांश चोरों को चक्रराज ने देखा। उन्होंने उन्हें देखकर हुंकार किया। चक्रराज की तरफ से स्फुलिंगाक्ष, बलाध्याक्ष, ज्वालाकेश, गालांतक, रणाघ्न आदि वीर चक्रराज के अभिमत से हाथों में करवाल, शूल, मुद्गर, खिंडिवाल, कांड, कोदंड आदि प्रमुख आयुध धारण करके अपने-अपने निज बल से शत्रुओं पर टूट पड़े। तब उन्होंने पंचपातकों को देखकर इस रूप में कहा। ''हे पापात्मा! सद्ब्राह्मणोत्तम को नुकसान पहुँचाकर, अनाचार और अत्याचार करके उनके जीवन को आपने नरकप्राय बनाया। यज्ञों को भंग करके, धर्म को नुकसान पहुँचानेवाले आपका अंतिम काल समीप आ गया है। अब आप कहाँ छिपेंगे? आपका संहार करके अब आपके शरीरों को टुकड़े टुकड़े करके सारे प्राणियों और भूतों को आहार के रूप में डालेंगे। आपका संहार करके अब भूसुरों की रक्षा हम करेंगे। अब आपका कुछ

भी नहीं चलेगा। आप हमें रोक नहीं सकते।'' ऐसा उनको ललकारते युद्ध करना शुरु किया।

अतिभीषण आकार से शस्त्रादि के प्रयोग से भी न डरकर, न हटकर वंका, यंकादि राक्षांश चोर मूसल, गदा आदि आयुध लेकर स्फुलिंगादियों पर टूट पड़कर अतिघोर युद्ध करने लगे। तब स्फुलिंगाक्ष ने डंकुंड नामक राक्षस को मारा। बलाध्यक्ष ने वंकु नामक राक्षस को मारा। ज्वालाकेश ने पुलिंद नामक राक्षस को मारा। कालांतक ने बिडालु नामक दैत्य को मारा। रणघ्न ने चालुकुंड नामक शत्रु का संहार किया। इस प्रकार कटकर गिरे यंकादि के बाकी सहचर भागकर वनदुर्गों में छिप गए। कुछ लोगों ने चक्रराज पर अपने आयुधों के साथ युद्ध किया। चक्रराज ने उन पर चक्र का प्रयोग करके उनके दो टुकड़े कर डाले। बचे लोग डरकर जंगल में छिपने भाग गए। तब चक्रराज ने विचित्र बाण छोड़े। वे बाण जाकर जंगल में, दुर्गों में छिपे राक्षसों का संहार करके लौट आये। तब दक्षिण भूमि निष्कंटक बन गयी। तब आकाश से देवतागण ने चक्रराज पर फूलों की वर्षा की। उनकी अनेक प्रकार से स्तुति करके इस रूप में कहा। ''हे चक्र राजोत्तम! सकल पापात्माओं को मार कर यहाँ के साधु जनों की रक्षा आपने की है। आपके पराक्रम अवर्णित हैं। आपके पराक्रम का वर्णन शेष भी करने में असमर्थ हैं। और शेषाद्रि के पश्चिमोत्तर में भी क्रूर चोर बसे हुए हैं। हे चक्रराज! आप उनका भी संहार करके धरती पर रहनेवाले सज्ज्नों की रक्षा कीजिए।'' ऐसा कहते देवतागण चक्रराज से प्रार्थना करके अपने-अपने स्थलों पर चले गए। इस प्रकार वहाँ चक्रराज ने शत्रुओं के संहार करने से ब्राह्मणादि को अत्यंत आनंद हुआ। उन्होंने चक्रराज की ओर देखकर इस रूप में विनति की। ''हे विमलात्मा! इस देश में कोई धर्मात्मा राजा के रूप में नहीं है। इसलिए चोर सज्ज्नों और ब्राह्मणों को सता रहे हैं। आप हमारे लिए भगवान के समान हैं। आपने सकल पापात्माओं को मार दिया है। हमारी रक्षा की है। हमारे लिए अच्छे राजा की नियुक्ति भी कर दीजिए।'' ऐसी उनकी प्रार्थना सुनकर तब चक्रराज ने उस राज्य के लिए अनुकूल एक राजा की नियुक्ति की। फिर 'धर्म का आचरण करते हुए राज करो' ऐसी सलाह उसे देकर ब्राह्मणों की तरफ देखकर इस रूप में कहा। ''आप सत्कर्म निष्ठ होकर यज्ञादि करते रहिए।'' ऐसा आदेश देने पर सभी ने उन्हें आशीर्वाद देकर विदा किया। तब चक्रराज ने दक्षिण प्रदेश से वेंकटाद्रि पर आने के मार्ग के बारे में उन्हें बताकर, रास्ते में सुजनों की नियुक्ति करके, उनकी देखभाल करते रहने का दायित्व राजा को सौंप दिया।

नैरुति-पश्चिम दिशाएँ

वहाँ से सारी सेना के साथ मिल कर जयभेरी बजाकर बड़े उत्साह और उल्लास के साथ निकल कर नैरूति प्रदेश के लिए चक्रराज निकल पड़े। यात्रा के दौरान ही दुर्गों में छिपे राक्षसों को ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकाल कर उनका संहार करते हुए फिर पश्चिम दिशा में आगे बढ़े। चक्रराज ने तब अपने चतुरंग बलों के साथ वहाँ युद्ध-भेरी बजायी। तदुपरांत राक्षसों को पकड़ने के लिए दुर्गों को छान मारना शुरु किया। अनेक चोरों को मारने के बाद बचे हुए बाकी चोर भय से तितर-बितर होकर अपने प्रभु के पास पहुँचे। फिर अपनी बाधाओं के बारे में प्रभु से इस रूप में अवगत कराया। ''हे प्रभु! कहीं से बड़ी सेना यहाँ पर आयी है। सारे चोरों को मारने लगी है।'' यह सुनकर राक्षसों के प्रभु को बहुत गुस्सा आया। अत्यंत कुपित होकर इस रूप में कहा। ''शिव को लेकर महातप करके किसी के हाथों में नहीं मरने का वरदान प्राप्त किया। अपने सहचर चोरों

को इकट्ठा करके साधु जनों को सतानेवाले निर्बल राहगिरों को मारकर उनकी संपदाओं को लूटनेवाला लुटेरा, कालकिंकर नामक सहचरों को साथ में रखनेवाले बलवान, जंगल में रहनेवाले रिपुघ्न नामक राक्षस के पुत्र वनकर्ता नामक राक्षस को बहुत बड़ा गुस्सा आया। तब उसने 'शूल, सींग, तुड्डुम आदि को बजाते शत्रुओं पर टूट पड़ो' आदेश दिया। उसके सारे सहचर तितर-बितर न होकर गदा, शूल, मुद्गर आदि आयुधों को धारण करके युद्ध के लिए तैयार हो गए। अपने सामने की तरफ से आनेवाले इन राक्षसों को देखकर चक्रराज के सैनिकों ने उन पर अपने आयुधों के साथ धावा बोल दिया। अतिघोर युद्ध किया। अनेक अक्षोहिणी किरात बलों का संहार किया। तब रक्त वहाँ पर नदियाँ बनकर बहने लगी। इसे देखकर वनकर्ता महोग्र हो गए। क्रोधी बनकर अपने सेनाधिपति ज्वालापात को देखकर उसने इस रूप में कहा।

''असमान शूर अक्षोहिणी वीरों को वैरी सेना ने मार दिया है। इसलिए आप करवाल, शूलादि साधनों के साथ उनका संहार करो।'' इस रूप में आदेश पाकर ज्वालापात नामक राक्षस अनेक आयुध धारण करके युष्ट्रली के द्वारा बनाये गए रथ पर आरूढ़ होकर चक्रराज पर टूट पड़ा। तब चक्रराज ने बडभामुख की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''हे शूरवर्य! तुम युद्ध करने जाकर किरात के राजा के दलपति को मार गिराओ। ये नीच जन हैं, हे पुण्यात्मा! ऐसी उपेक्षा न करके अतिशीघ्र ही इन पापात्माओं का संहार करो।'' चक्रराज के इस रूप में कहने पर सुन कर बडभामुख विपुल आयुध लेकर ज्वाला पात के रथ पर टूट पड़ा। उसके रथ को तोड़ डाला। उसका संहार कर दिया।

तब चक्रराज ने अपने चक्र को उठाकर गहनकर्ता नामक राक्षस पर प्रयोग किया। तब चक्र ने उसके सर को काट कर धरती पर मार

गिराया। इस प्रकार बडभानल समुद्र के जल को पीने की तरह उस वनकर्ता की सेना को चक्रराज ने शस्त्रास्त्र से नष्ट कर दिया। तब पृथ्वी निष्कंटक बनी। तब चक्रराज ने जंगल के उन वृक्षों को जो रास्ते के कंटक बने थे, कटवाकर सकल भक्त जनों को शेषाचल पर पहुँचने के मार्ग को प्रशस्त किया। साथ ही उस मार्ग में पुण्यात्माओं की नियुक्ति भी की। भक्त जनों की रक्षा करने के दायित्व को उन्हें सौंप दिया। राजा की नियुक्ति भी करके 'धर्मानुसार जन पर शासन करने' का आदेश दिया।

वायव्य और उत्तर दिशाएँ

फिर चक्रराज जयभेरी बजाकर चतुरंग बलों को इकट्ठा करके, उनके द्वारा स्तुति पाकर उत्साह के साथ वायव्य दिशा में रहनेवाले चोरों का निरोध करते हुए गाडांधकार फैलानेवाले कंटक राक्षस रहनेवाली उत्तर दिशा की ओर आगे बढ़ा। सहस्र करों के साथ, दीर्घ सहस्र करों के साथ दूसरे प्रचंड मार्तांड बनकर वेंकटाद्रि के उत्तर भाग में पहाड़ों के बीच में महोग्र होकर युद्ध के लिए तैयार होकर चक्रराज निकला। ऐसे चक्रराज को देखकर डर कर कुछ राक्षसों ने अपने प्रभु भेरुंड के पास पहुँच कर इस रूप में कहा। ''हे प्रचंड प्रताप! भेरुंड प्रभु स्वामी! अत्यंत अद्भुत ढंग से एक वीर चतुरंग बलों के साथ मिल कर आया है। कालाग्नि और रुद्र की तरह है। विकराल सहस्र हाथों के साथ है। रक्त वर्ण का वस्त्र पहना हुआ है। हार, किरीट, केयुर आदि भूषण धारण किया हुआ है। बड़े रथ पर आरूढ़ है। सूर्य की तरह प्रकाशवान है। उसे देखते ही डर लग रहा है।'' इस रूप में बताने पर भेरुंड राक्षसों के साथ वहाँ गया। वहाँ चक्रराज को देखकर महोग्र हो गया। उसने तब कहा। 'मैं ही यहाँ का राजा हूँ।' फिर अपने सहचर राक्षसों को देखते हुए कहा। ''हे

रक्षोवर! देखिए इस उत्पात को। मुझे हराने के लिए आए इसे मार कर रावण को भेंट के रूप में दूँगा। मेरे भेरुंड नाम को धरती पर सार्थक करूँगा।'' ऐसे डींग हांकते हुए अपने चतुरंग बलों को चक्रराज के चतुरंग बलों पर दावा बोलने का आदेश दिया। तब चक्रराज के चतुरंग बल घोर रणभेरी बजा कर अट्टहास करते हुए युद्ध करना शुरु किया। मारने आए भेरुंड बलों को विरोध करते बिना हड़बड़ाहट के अलग-अलग युद्ध करने लगा। करवाल, शूल, कुंत, मूसल, मुद्गर, खिंडिवाल, परशु, तोमर, पट्टिस, परिघाद्य आदि आयुध धारण करके एक दूसरे को काटते. बचाते, भागते, हूंकारते, डींग हांकते, मारते, गालियाँ देते, बडबोली करते, ओंट काटते, दांतें निपोरते, आंखों से परिहास करते, धिक्कार करते, कुचलते, खांसते, डराते धमकाते ऐसे अनेक प्रकार से दक्षिणोत्तर सागरों की तरह एक दूसरे पर टूट पड़े। तब दोनों तरफ के लोगों के शरीर, गले, जांघे, हाथ, पैर, कमर, नसें आदि के कट जाने से नीचे गिर कर लुढ़कनेवाले, प्राण छोड़नेवाले, रोनेवालों से युद्ध भूमि फूले हुए पलाश वृक्षों की तरह भयानक लग रही थी। घायल हुए लोगों के शरीर से रक्त नदियाँ बनकर बह रहा था। सैनिकों के शरीर के भागों के साथ युद्ध सामग्री के टूटने से वे दृश्य अत्यंत भयानक लग रहे थे। टूटी तलवारें, टूटे रथ, गिर पड़े घोड़े, हाथी, शूल, गदादि से रण क्षेत्र भर गया था। ये सारे रक्त की नदियों में बहते दिखाई पड़ रहे थे। तब वहाँ भूत प्रेत 'चक्रराज ने हमारे लिए समाराधन किया है। आइए' एक दूसरे को बुलाते गिर पड़े शवों को खाते. आंतडियों को निकाल कर निगलते, भूत प्रेत कटी हुई खोपड़ियों को अनेक बार रक्त में भिगो कर खा रहे थे। खा, पीकर पेट को सहलाते, डकारते और लुढ़कनेवाले भूत प्रेतों से रणक्षेत्र भीषण और भयंकर लग रहा था।

तब चक्रराज ने भेरुंड राक्षस को देखकर बहुत गुस्सा किया। तब भेरुंड ने महोग्र होकर हतशेष बलों के साथ चक्रराज पर आक्रमण किया। चक्रराज ने भी भौहें चढ़ाकर नेत्रों से विष्फुलिंग निकालते भेरुंड को देखकर हुँकार किया। उस हुँकार ध्वनि से धरणी कांपने लगी। तब मानो आकाश गिरा। दिशाएँ धंस गयीं। महान पहाड़ कांपने लगे। सूर्य-चंद्र अपनी गतियों से अलग हुए। दैत्यों के हृदय हिलने लगे। मानो ब्रह्मांड भांड टूट गया हो। तेज हवाएँ चलने लगीं। तब चक्रराज ने पावक नामक वीर का सृजन करके शत्रुओं पर छोड़ा। पावक ने शत्रु बल पर अतिशय रूप में आक्रमण करके सम्मोहन अस्त्र का प्रयोग किया। तब राक्षस अपने आपसे लड़ कर मर कर नीचे गिरे। चक्रराज ने इस दृश्य को देखकर दया करके 'यह अधर्म है। इसलिए तुम इस बाण को और आगे जाने न देकर उपसंहार कर लो।' कहा। तब पावक ने अपनी विद्या से उसे वापस लिया। पावक ने फिर दैत्यों पर क्रौंच बाण छोड़ा। तब उसने उनकी नाक-कान को काट लिया। इसे देखकर भेरुंड को बहुत रोष हुआ। तब उसने भीकर रूप में पावक पर आक्रमण किया। तब पावक ने उस पर मारुतास्त्र को छोड़ा। तीन योजन शरीरवाले भेरुंड को उस अस्त्र ने उठा कर वेंकट पहाड़ की तीन बार परिक्रमा करवाकर धरती पर गिरा दिया। सड़े हुए कुष्मांड की धरती पर गिरने की तरह राक्षस गिर गया। चक्र ने उसके सारे बलों को काट दिया। तब देवतागण ने चक्रराज पर फूलों की वर्षा की। देवतागण ने साक्षात उसे दर्शन देकर उनकी स्तुति करके इस रूप में कहा। ''हे चक्रराज! तुमने सारे दुष्टों का संहार करके साधु जनों की रक्षा करने के कारण पुरुषोत्तम स्वामी आपसे अत्यंत प्रसन्न हो गए। अब तुम शांत हो जाओ। हे महात्मा! आपकी प्रशंसा करना ब्रह्मादि को भी संभव नहीं है। आपने दुष्टों का संहार करके शिष्टों

की रक्षा की है। अब इस प्रयत्न को छोड़कर शांत होकर श्री वेंकटेश्वर स्वामी की सन्निधि में पहुँच जाओ।'' कहते देवतागण लौट गए। तब चक्रराज ने निज योग बल से युद्ध क्षेत्र में मरे अपने चतुरंग बलों को जीवित किया। इस रूप में उन पर संतोष के साथ करुणा-कटाक्ष किया। तब वे भी शांत होकर पूर्व की तरह चक्रराज की पूजा करने लगे। तब उत्तर भाग से श्री वेंकटाद्रि पर पहुँचने वाले भक्तों के लिए आवश्यक मार्ग को सुगम किया। साथ ही सज्ज्नों की नियुक्ति की। उनके संरक्षण के लिए राजा की नियुक्ति भी की। 'वेंकटाद्रि पर आनेवाले भक्त जनों का आदर करते रहिए।' ऐसा आदेश भी उसे दिया।

ईशान दिशा

तब ईशान दिग्भाग में छिपे चोरों का संहार भी किया। इस रूप में चक्रराज ने अष्टदिशाओं को राक्षसों से निष्कंटक बनाकर देश में शांति की स्थापना की। तदुपरांत चक्रराज ने अपने सकल बलों के साथ श्री वेंकटाद्रि पर आकर स्वस्वरूप धारण करके अंतिर्विमान में प्रवेश किया। फिर वह हरि के दक्षिण हस्त में विराजमान हो गया। इस रूप में देश सारे सुरक्षित होने से स्वामी के महोत्सव बिना किसी रुकावट के होते रहे। इस रूप में कहनेवाले सूत को देखकर तब शौनकादि मुनियों ने इस रूप में कहा।

श्रीनिवास स्वामी के लीला-विनोद

''श्रीनिवास स्वामी का चरित चित्र-विचित्र है। साथ ही कानों को अत्यंत आनंद देनेवाला रसायन समान है। इसलिए बहुत कुछ सुनने के बाद भी तृप्त नहीं हुए। श्री वेंकटेश्वर ने इस रूप में शेषाचल पर बस कर कौन से लीला-विनोद किए? किन-किन को क्या-क्या दिया? बताइए कि

कृत, त्रेता, द्वापर युगों में किस क्रम से लीला-विनोद किया? कलियुग में किस विधान में होगा? उस ईश्वर के द्वारा किए गए लीला-विनोद चरित कर्णपर्व के रूप में हमें बताइए। हे सूत! हे सत्पूत! धीसमेता!'' मोद से शौनकादि मुनियों ने वनज नेत्र के चरित को सुनने की इच्छा से प्रश्न करने पर विनीत सूत ने इस रूप में कहा। ''हे मुनीश्वरवर्य! सुनिए! श्रीवेंकटेश्वर के लीला-विनोदों को। परापर स्वरूपी पंकजाक्ष ने आदि अवतार लेकर राक्षसों का संहार करके सुरेंद्र आदि मुनियों के आश्चर्य से देखने पर धरणी पर भक्तों का उद्धार करने के लिए शेषाचल पर बस गए। धरती पर बसकर श्रीवेंकटेश्वर भक्तों की पूजा से परिपूर्ण हुए और अत्यंत प्रसिद्ध हुए। भक्तों के कारण शेषगिरीवास के रूप में सारे लोकों में प्रचलित हुए। सारे भक्तों की पूजा करने से उनकी मनौतियों का रमा समेत प्रीति से पूरा करनेवाले भगवान के रूप में विख्यात हुए।

वे वेंकटेश्वर कलियुग में घन मौन मुद्रा में अर्चा मूर्ति के रूप में बसे। वे अपने चतुर्भुजाओं से तथा कर्म नेत्रों के साथ दिखाई देते हैं। भक्तों से सीधे बात नहीं करते हैं। लेकिन स्वप्नों में आकर आवश्यक बातें करते हैं। सपना टूटते समय मायावी बनकर अदृश्य हो जाते हैं। सारे मनुष्यों के मन में अपने पर मोह को पैदा करते हैं। उनसे धन प्राप्त करने के लिए उन के मन में भय को पैदा करते हैं। उनके द्वारा धन वसूल करते हैं। बाद में उनका उद्धार करते हैं। मोक्ष की कामना करते हुए देहापेक्षा को मन से छोड़कर अत्यंत प्रीति से अपनी ही पूजा करनेवाले भक्त जनों को वे साक्षात दर्शन भी देते हैं।

वैकुंठ से आये विमान को एक बार उनको दिखाते हैं। फिर वे अदृश्य भी हो जाते हैं। आनंद निलय में विराजमान होकर अर्चा मूर्ति के

रूप में भक्तों को दिखाई देते हैं। वे सदा अंतर्विमान में ही रहते हैं। उस विमान को देवताओं को ही दिखाते हैं। मनुष्यों को नहीं दिखाते हैं। बड़ी इच्छा से मनुष्यों से बाह्य पूजा करवा लेते हैं, फिर गुप्त रूप में देवताओं से भी पूजा करवा लेते हैं। वे रमाविभु अपनी शरण में आनेवाले मनुष्यों की मनौतियों को पूरा करते अपनी महिमाओं को दिखाते हैं। अल्प दान को भी बड़ा चढ़ाकर देखते हैं। स्वल्प पूजा से भी संतुष्ट हो जाते हैं। भक्तों को पुण्य और मोक्ष आदि प्रदान करते हैं। उस वेंकटेश का महिमा-गायन करना भक्तों के लिए संभव नहीं है।

महिमावान वेंकटगिरि महिमा को जानकर उपासना करनेवाले पुण्यात्माओं को वे साक्षात्कार होते हैं। मनौती करने पर उन्हें बड़ी दया से वरदान देते हैं। अप्राकृत होते हुए भी प्राकृत रीति से देश के जनों के साथ घूम-घाम कर अपने पर मोह पैदा करके, प्रेम दिखाते उन्हें बुला बुलाकर 'मनौतियों और भेंटों के साथ अपने पहाड़ पर कब आयेंगे।' ऐसा उन्हें बताकर बड़ी धीरता से उनके साथ ही रहते उनको अपने पहाड़ पर बुला लेते हैं। तब वे भक्त वेंकटाद्रि पधार कर सकल महोत्सव करते हैं। फिर वेंकटेश्वर उन्हें वरदान और भाग्य प्रदान करते हैं। इस रूप में उनमें विश्वास पैदा करके बार-बार पहाड़ पर आने के लिए उन्हें प्रेरित करते हैं।

ऐसे महोत्सवों के समय सकल जन पहाड़ पर आकर पुष्करिणी के जल में स्नान करके, अद्भुत ढंग से श्री वेंकटेश्वर की अनेक फूलों के साथ उपासना करते हैं। उनके भक्त उन्हें बहु भक्ष्य, भोज्य, दोसा, लेह्य, जल आदि अर्पण करते हैं। उन्हें स्वामी प्रीति से ग्रहण करते हैं। किसी को भी दिखाई नहीं पड़ते हुए ये सारे कार्य स्वामी करते हैं।

महान माया विमान में स्वयं निज रूप में रहते, धरती पर सुवर्ण आनंदनिलय में घन शिला विग्रह अर्चा रूप में दिखाई देते हैं। वे स्वामी स्वल्प दान से ही संतुष्ट होकर भक्तों को आयुरारोग्य, भाग्यादि विविध वरदान प्रदान करते हैं। उनकी रक्षा भी करते हैं। अति नीच जाति के लोग क्यों न हो भक्ति से शरण में आकर पहाड़ के दर्शन करने मात्र से उन्हें क्षमा करके उनका उद्धार करते हैं। कर्माधिकार नहीं रखनेवाली स्त्रियों को, शूद्रों को भी वेंकटेश के चरणारविंद के दर्शन से विस्तार से सुस्थिर भक्ति पैदा होती है। इसलिए कलियुग में मूढ़ भक्तों का भी वेंकटेश्वर उद्धार करते रहते हैं।

धरती पर कलियुग में साधु, स्त्रियों, शूद्र जनों के मन में स्वामी वेंकटेश्वर स्वयं उपदेश देकर माधव के प्रति प्रीति जगाकर उनका उद्धार करते हैं। इसलिए कलियुग में किसी भी रूप में श्री वेंकटेश्वर के समीप धरती पर पैदा होने के लिए देवतागण भी तत्पर रहते हैं।

कृत, त्रेता, द्वापर युगों में अनेक हजार वर्ष तप करने पर भी श्रीहरि का प्रसन्न होना दुर्लभ था। वहीं कलियुग में कोई भी मुहूर्त काल में निश्चल भक्ति से श्री स्वामी का ध्यान करने मात्र से अत्यंत सुलभ ढंग से वे प्रसन्न होते हैं। इसलिए कलियुग ही उत्तम है समझकर द्वीपांतर में रहनेवाले, सकल देशवासी कलियुग में प्रकाशवान श्री वेंकटेश्वर पर अमित भक्ति रखते हैं। इससे अलग श्रीवेंकटेश्वर समान देव और कोई दूसरा नहीं है। यह भी सत्य है। कृतयुग आदि तीनों युगों में वेंकटाद्रि कनकमय के रूप में रही। किंतु कलियुग में वह शिलामय रूप में दिखाई देती है। उस गिरी पर बसे श्रीवेंकटेश्वर स्वामी के लीला-विनोद अनंत और अनेक हैं। इसलिए मैंने आपको अति संक्षेप में बताया। ऐसी वेंकटाद्रि पर रहकर आचार और समाश्रय के साथ रहनेवाले विष्णु भक्त

वैष्णवों को देखकर देवतागण भी आनंद का अनुभव करते हैं। अन्य धर्म के लोग भी श्री वेंकटेश्वर पर भक्ति रखते हैं। कलियुग में लोक जन अधिक धन कमाने की इच्छा से अनेक दुर्गुणों के आश्रय में जाते हैं। ऐसे लोग हरि पर एकाग्र चित्त होकर निश्चल भक्ति नहीं रख पाते हैं। अगर वे निश्चल भक्ति से स्वामी का ध्यान करते हैं तो बहुत आसानी से श्रीनिवास उनका उद्धार करते हैं। इसलिए सारे धर्मों में वैष्णव धर्म ही उत्तम है।'' इस रूप में कहनेवाले सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने कहा।

श्री वैष्णव धर्म

''वेंकटाद्रि पर बसे श्री वेंकटेश्वर अत्यंत प्रचलित हुए। धरती पर रहनेवाले जनों पर स्वामी ने कैसे बड़ी कृपा दिखाई है, ऐसे श्री वेंकटेश्वर की सत्कथा सुनकर हमारे तप धन्य हो गए। शुभ है! हे सूत आपने वैष्णव धर्म का नाम लिया। हे सूत! वैष्णव धर्म के बारे में और विपुलता से हमें बताइए।'' पूछने पर सूत ने सम्मति से मुनियों की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''धरती के सागर में डूब जाने पर वराह स्वामी ने अपने शुभ्र और नुखीले दांतों से उठाकर धरती को फिर से यथास्थान पर स्थापित किया। वे वराह स्वामी भूदेवी समेत शेषाद्रि पर बसे। यह देखकर धरती के जन अत्यंत आनंदित हुए।'' 'वराह रूप और निर्मल वैष्णव धर्म के बारे में बताने के लिए' भूमि के पूछने पर, भूदेवी की ओर देखकर बड़ी दया से श्रीहरि ने इस रूप में कहा। ''वैष्णव धर्म के बारे में विस्तार से बता नहीं सकता, संक्षेप में बताऊँगा। क्योंकि वैष्णवाचार धरती पर अति गोप्य हैं। विश्वास के साथ जो कोई सुनेगा निस्संदेह उनको परलोक गति प्राप्त होगी। वैष्णव धर्म में गुरु ही धर्म है। सद्गुरु ही परमगति है। गुरु को आत्मा के रूप में विश्वास करनेवालों को धरती पर करनेवाले सारे पाप

मिट जाते हैं। इसलिए गुरु की महिमा को जानकर भक्ति करनेवालों को वैष्णव कहा जाता है। यह सूत्र लोक प्रसिद्ध है।

कितने भी पाप क्यों न किया हो सद्गुरु के पास जाकर शरण मांगने पर सारे पाप मिट जाते हैं। गुरु के शिष्य बनने के बाद किसी भी प्रकार का पाप नहीं करना चाहिए। ऐसा क्यों है? क्योंकि गुरु के कटाक्ष के पहले अनजान में किए गए पापों से मुक्त होने का मार्ग गुरु बतायेगा। आचार्यानुग्रह प्राप्त होने पर पूर्व में जानबूझ कर किए गए पापों को गुरु दूर नहीं कर सकता है। इसलिए ऐसे पाप गुरु के द्वारा दूर नहीं होंगे यह जान कर वैष्णव लोग बुद्धिमान होते पापभीति से आचरण करना चाहिए। गुरु ही साक्षात विष्णु है, ऐसा शिष्य को विश्वास करना चाहिए। गुरु को मनुष्य मात्र के रूप में देखनेवाले को उत्तम गति प्राप्त नहीं होगी। संसार सागर में डूबते समय उत्तम शास्त्र धर्म रूपी हाथ बढ़ा कर गुरु ही वैष्णव को ऊपर उठायेगा। साथ ही मोक्ष मार्ग में आगे ले जायेगा। ऐसा उपकार करनेवाले गुरु के लिए अपने को पाप कर्मों से दूर रखना ही प्रत्युपकार माना जाता है। 'आचार्य कौन है? सुनो मैं बताऊँगा।' भूदेवी को देखकर वराह स्वामी ने कहा।

उत्तम आचार्य और सच्चिश्य के लक्षण

न्याय मार्ग से चलनेवाले, धर्म-अधर्म के बारे में अच्छी जानकारी रखनेवाले पुण्य, सत्कर्म तपोनिष्ठ वाले, अति शांत हृदय रखनेवाले, मन में अहंकार, ममकार, दंभ, दर्प आदि दुर्गुणों को कुचलनेवाले, प्रारब्ध, संचित घोर संसार दावानल से मुक्त रहनेवाले, अवनि में निंदा-स्तुति, मान-अपमान से सर नहीं झुकानेवाले, समस्त भूतों के प्रति दया रखनेवाले, सुहृद्भाव को रखनेवाले, परोपकार गुण रखनेवाले ही महान

गुरु हैं। ऐसे आचार्यों के अनुकूल शिष्य कौन हैं? प्रश्न करने पर तुम सुनो! विश्वास, भक्ति, विनय, शांत स्वभाव आदि कमनीय गुणवाले, सकल मंत्रांतर, साधनांतर में पराण्मुख रहनेवाले, सर्वभार आचार्य के चरणों पर रखकर निश्चल मन से रहनेवाले, सदा पापभीति रखनेवाले, गुरु को ही हरि समझनेवाले, माया को छोड़ कर शुश्रुषा करनेवाले शिष्य धरती पर अच्छे शिष्य माने जानेवाले हैं।

किसी भी मुमुक्षु को अज्ञान रहित सांसारिक बीज से मुक्त होना चाहिए। उसके नष्ट होने तक भी अहंकार, ममकार आदि भाव दूर नहीं होते हैं। उन्हें छोड़ देने पर भी देहाभिमान हटता नहीं है। उसके हट जाने पर भी स्वस्वरूप ज्ञान पैदा नहीं होता है। उसके पैदा होने पर भी ऐश्वर्य-भोगापेक्षा मिटती नहीं है। उसके मिट जाने पर भी अर्थ, कामादि राग-द्वेष हटते नहीं हैं। उनके हट जाने पर भी पारतंत्र्य प्रकाश प्राप्त नहीं होता है। उसकी प्राप्ति होने पर भी श्री वैष्णत्व उसे प्राप्त नहीं होता है। उसे प्राप्त करने पर ही सामित्वत्व को परिग्रहण कर पाता है। सात्विक परिग्रहण प्राप्त करने पर भी भागवत परिग्रहण नहीं कर पाता है। भागवत परिग्रहण को प्राप्त करने पर भी अनन्यर्ह प्रयोजक नहीं होता है। अनन्यर्ह प्रयोजक बनने पर भी अनन्यर्ह शेषभूत नहीं बनेगा। अनन्यर्ह शेषभूत बनने के बावजूद अनन्यर्ह शरण्य नहीं बनेगा। अनन्यहर्य शरण्य होने पर भी अधिकार पुरुष नहीं बनेगा। अधिकारी पुरुष बनने के बाद ही अष्टाक्षरी का अधिकारी बनेगा।

ऐसे सच्चिश्यों को आचार्यगण उपदेश देकर रक्षा करते हैं। यह रीति ऐसी है कि श्रीवैष्णवाचार चिह्नानुसरण के बारे में उपदेश देकर, उसमें करुणा गुण को बढ़ाकर 'अष्टाक्षरी मंत्र से बढ़कर और कोई दूसरा मंत्र नहीं है' बताकर नारायण ही सबसे महोन्नत हैं, उनसे बढ़कर कोई और

देव नहीं है।' ऐसा बताकर निष्ठा के साथ द्वय, चरम, प्रपत्ति, भक्ति निष्ठाओं के बारे में बताकर, हरि का ध्यान करने की रीति के बारे में बताकर, उस पर विश्वास करने के लिए भरन्यास सुख उसे प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था आचार्यगण करते हैं।

ऐसे श्रेष्ठ आचार्य के आश्रय में कामादि भावों को त्याग करके, मन से अहंकार, ममतादि को निकाल कर, विजन स्थलों में विमल गुणों के साथ, मित भोजन करते, मित निद्रा करते, मित संभाषण करते, आचार्य के प्रति भक्ति, यति-शांत गुण रखते, अपरिग्रहण करके, नारायण मूर्ति पर सदा ध्यान रखने के विवेक गुण का अभ्यास करने से मन सदा हरि पर ही केंद्रित रहेगा। ऐसे वैष्णव को ही विष्णु साइज्य प्राप्त होगा। वे ही धरती पर श्रेष्ठ वैष्णव कहलाते हैं।

वेंकटेश्वर नामक मुझे अत्यंत उत्साह से विविध सेवा-परिचर्या करते हुए, मुझ पर विश्वास करना, फिर आचार्य की सेवा करना निर्मल, श्रद्धावान धर्म ही वैष्णव धर्म है। हे भूदेवी! इससे अलग वर गुरुओं से अधिक वस्त्र, भूषण अत्यधिक प्रीति से समर्पित करनेवाले, आसक्ति से मेरी आराधना बड़े पैमाने पर करनेवाले, देशिक, श्री पाद तीर्थ, प्रसाद उन्नत है, समझ कर ग्रहण करनेवाले, दृढ संकल्प से शेषत्व और पारतंत्र्य को जीवात्मा के धर्म के रूप में माननेवाले, राजस, तामस द्वयों को कुचलकर रखनेवाले, सदा सात्विक निष्ठ होकर रहनेवाले, शांत, भूत दया रखनेवाले, सत्य-वाक्य बोलनेवाले ही सच्चे रूप में वैष्णव जन हैं।'' वराह स्वामी के इस रूप में बताने पर सुनकर भूदेवी ने अत्यंत प्रसन्न होकर 'ज्ञान, भक्ति, वैराग्य रखनेवालों को किस प्रकार के कर्म करना चाहिए, बताने के लिए कहा।' तब वराह स्वामी ने कहा।

निष्काम कर्माचरण-ब्रह्म सायिज्य

भासुर ज्ञान, भक्ति, वैराग्य को रखनेवाले लोगों को भी कर्मों को छोड़े बिना कर्म करते रहना चाहिए। वही वेदोक्त मार्ग है। वे कर्म कौन हैं, तो सुनो। स्नान-संध्यादि सवन आदि निज शक्ति के अनुसार करते, सारी इच्छाओं को त्याग करके सब कुछ हरि को समर्पित करते हुए आचरण करने से हरि संतुष्ट होंगे। वही सत्फल है। इसलिए विप्र वेदमार्ग के अनुसार यज्ञ करते रहने से हरि संतुष्ट होकर उन्हें वांछित फल प्रदान करेंगे। इसलिए सारे आर्य यज्ञ करते हैं। इस प्रकार मेरी आज्ञा को धारण करके निष्काम कर्मो का आचरण करना चाहिए। ऐसे आचारण न करके मेरी आज्ञा का उल्लंघन करनेवाले दोषयुक्त होंगे। इसलिए सद्ब्राह्मण यज्ञादि षठकर्मों का आचरण करते, ईश्वर ध्यान में निष्ठावान होकर, भूले बिना नारायण मंत्र का स्मरण करते हुए, सन्यास विधि से कर्म आचारण करके, संपूर्ण ज्ञानोदय प्राप्त करने के बाद विधिवत दंड-कमंडल को छोड़कर अवदूत आश्रम को स्वीकार करके, शीतोष्ण सुख-दुखादि द्वन्द्वातीत बन कर सच्चिदानंद से नित्य परिपूर्ण ब्रह्मानंद का अनुसंधान करते रहना चाहिए। ऐसा करनेवालों को ब्रह्म सायिज्य प्राप्त होगा'' कहते वराह स्वामी ने आगे इस रूप में कहा।

ब्रह्म के द्वैत रूप (ब्रह्म और जीव)

''हे भूदेवी! ब्रह्म दो प्रकार के होते हैं। वे हैं परा और अपरा। उन में 'पर' अक्षर और 'अपर' अक्षर रूप होते हैं। 'पर' अक्षर परम ब्रह्म स्वरूपा है। 'अपर' अक्षर जीवात्म स्वरूपा है। 'पर' रूप ही विमल रूपी परमात्मा है। गुरु, पुरुषोत्तम, सर्वपूर्ण भी वे ही हैं। उस ब्रह्म का अंश ही जीव है। अविद्या से वह ब्रह्म से अलग होता है। वह अपरिमित रूप से शरीरों को प्राप्त करके बहु जन्म लेता है। बहु, मोह, शोक आदि में डूबते,

तैरते, अहं को पालकर बड़े-बड़े कर्म करते जन्म लेता और मरता रहता है। ऐसे जीव अविद्या से दुखी होकर अनेक जन्म लेता रहता है। ऐसे कुछ जन्मों में अनेक पापकर्म करके फिर बार-बार जन्म लेता रहता है। कुछ जन्मों में निष्काम पुण्य कर्म करके ऊर्ध्व गतियों को प्राप्त करता है। साथ ही पुण्य-पाप मिश्रित कर्म करके सुख-दुःखों का अनुभव करते हुए धरती पर जन्म लेता, मरता रहता है। उनमें कुछ काम और भोगासक्त होते हैं। और कामवासना से यज्ञ आदि प्रमुख कर्मों से विरत होकर आचरण करके स्वर्ग लोकादि को प्राप्त न करके धरती पर सुख भोग को प्राप्त करके, उन्हीं में लीन रहकर पुण्यों को सदा नाश करते हुए बार-बार धरती पर पैदा होकर बार-बार आते-जाते जन्म-मृत्यु रूपी उसी चक्र में पड़ा रहता है।

उनमें कुछ योगाभ्यास निष्ठ होकर सत्पदों को प्राप्त करते हैं।'' इन बातों को सुनकर भूदेवी ने कहा। ''अत्यंत प्रमुख योग प्रकारों के बारे में हे देव! सत्कृपा से मुझे बताइए'' भूदेवी की इस प्रार्थना पर संतुष्ट होकर वराह स्वामी ने इस रूप में कहा।

योग मार्ग का क्रम (अष्टांग योग)

योगमार्ग के क्रम के बारे में बताना है तो ऐसा है कि गुरूपदेश क्रम से यम, निय, मानस, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारण, समाधि नामक अष्टांग योग का अभ्यास करना चाहिए। उनमें 'यम' ऐसा है।

1. यम (दस प्रकार)

जगत में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, बार्जवम, क्षमा, अतिदया, धृति, मिताहार, शौच यम इस रूप में दस प्रकार हैं। उनका विवरण इस प्रकार है। सकल जीवों को किसी भी प्रकार का क्लेश न हो, ऐसा

व्यवहार करना ही अहिंसा है। अवनि में सभी को इष्ट रूप से झूठ न बोलना ही सत्य है, अन्यों के धन में माया करके धोखा देकर प्राप्त न करना ही अस्तेय है। दूसरों की सतियों को मातृ भाव से देखने का धर्म ही ब्रह्मचर्य है। हे सरसिजाक्षी! भूत मैत्री और कुटिलता को छोड़ना ही वार्जवम है। सहन ही क्षमा है। धैर्य ही धृति है। मित रूप से आहार ग्रहण करना ही मितभोजन है। शौच का मतलब शुद्धि है। 'यम' के ये दस ही प्रकार हैं।'' फिर 'नियम' कितने प्रकार हैं? पूछने पर।

2. नियम (दस प्रकार)

''नियम के दस प्रकार हैं। योग शास्त्र के प्रति रति, सत्पात्र दान, संतोष, लज्ञा, व्रत, बुद्धि, आस्तिक्य, ईश्वरार्चन नियम के ये दस प्रकार हैं। उदर पोषणार्थ किए जानेवाले वादास्पद शास्त्र को छोड़कर मोक्ष प्रदान करनेवाले शास्त्र का अभ्यास करना योगशास्त्र के प्रति रति है। अपने को प्राप्त धन को गुरु और द्विजों के लिए उपयोग करना सत्पात्र दान है। लाभ-नष्ट, शुभ-अशुभ, संयोग-वियोग, मान-अपमान, स्तुति-निंदा, मोद-खेद भावों से परे रहना ही संतोष है। सुजन के सांगत्य से अपने दुर्गुणों से मुक्त न होने पर अपनी निंदा करके, दुर्गुणों को छोड़कर सद्गुणों का अभ्यास करना लज्ञा है। अपने संकल्प से की जानेवाली मोक्ष-साधना को बिना छोड़े करना व्रत है। अपने योग-कर्म में रोग, दारिद्र्य, संशय, शास्त्रवाद, रसवाद, दुर्जन सहवास आदि विघ्न होने पर भी विचलित न होना ही बुद्धि है। मतभेद से दूर, पुराण-इतिहास आदि सद्ग्रंथों को श्रद्धा से पढ़कर सार ग्रहण करना ही आस्तिक्य है। अति तेजोमय ईश्वर स्वरूप को गुरु मुख से सुनकर हृदय में और मन से ध्यान करते हुए पूजा करना ही ईश्वरार्चन है। गुरु वाक्यों को सत्य वाक् के रूप में विश्वास करते हुए नियमों को तोड़े बिना कष्टों को झेलते हुए करना

ही तप है। गुरु के द्वारा बताये मंत्र को निश्चल मन से बिना छोड़े जप करना ही जप है। ये दस ही नियम हैं। ऐसे यम, नियम दोनों अंतःशुद्धिप्रद हैं। इसलिए इनका अभ्यास करके अंतःशुध्दि को प्राप्त करके कीटादि जंतुओं से मुक्त विजन स्थल में अपने लिए अनुकूल सुखासन का निर्माण करके उस पर आसनों का अभ्यास करना चाहिए। आसन करने का विधान इस प्रकार है।

3. आसन (अठारह प्रकार)

''हे पद्माक्षी! सुनो! चौरासी लाख आसनों में अतिमुख्य आसन सिर्फ चौरासी हैं। उनमें भी अठारह अतिमुख्य हैं। उन अठारह अतिमुख्य आसनों में मुख्य आसन सिद्धासन, भद्रासन, पद्मासन, सिंहासन हैं। फिर इन चार आसनों में सिर्फ सिद्धासन ही सर्वाधिक प्रमुख है। हे पोलति! अष्टादश आसनों के बारे में अलग-अलग से बताऊँगा। सुनो! स्वस्तिकासन, गोमखासन, वीरासन, कुक्कुटासन, उत्तान कूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येंद्रासन, पश्चिमोत्तानासन, मयूरासन, सिद्धासन, मतांतर सिद्धासन, भद्रासन, पद्मासन, मतांतर पद्मासन, बद्ध पद्मासन, सिंहासन, शवासन ये अठारह मुख्य आसन हैं।

1. स्वस्तिकासन

''हे तरुणि! सुनो! जानु और जांघ के अंतर में शरीर को एक ओर झुकाकर सुरक्षित करके बैठना ही स्वस्तिकासन है। हे पद्माक्षी! गोमुख आसन के बारे में सुनो!

2. गोमुख आसन

दाएँ पैर की एडी को बाएँ पीठ के बगल में, बाएँ पैर की एडी को दाएँ पीठ के बगल में घुटनों पर घुटने डाल कर बैठना ही गोमुखासन है।

3. वीरासन

एक पाद जांघ के नीचे, एक पाद जांघ पर रखकर बैठने से वह वीरासन है।

4. कूर्मासन

आधार में दोनों पार्शों में दोनों पैरों की एडियों को स्पर्श करते अच्छी तरह बैठना कूर्मासन है।

5. कुक्कुटासन

पद्मासन में बैठ कर घुटनों एवं जांघों के बीच में हाथों को घुसाकर दोनों हाथों को धरती पर लगाकर पद्मासन को ऊपर उठाने की तरह बैठना कुक्कुटासन है।

6. उत्तान कूर्मासन

कुक्कुटासन पर बैठ कर दोनों हाथों से गले को पकड़ कर कूर्म की तरह पीठ के बल से पड़े रहने को उत्तान कूर्मासन कहा जाता है।

7. धनुरासन

पैर को दोनों अंगुष्टों को दोनों हाथों से धनुराकृति में पीठ के पीछे कानों के साथ पकड़ना धनुरासन है।

8. मत्सेंद्रासन

बाएँ जांघ पर पहले दाएँ पैर को मोड़कर, घुटनों के बाहर बाएँ हाथ को फिरोकर दाएँ पैर को पकड़ कर बैठने से वह मत्सेंद्रासन है। इससे जठराग्नि प्रकाशवान होकर, कुक्षीरोग दूर हो जाते हैं। इसके अभ्यास से कुंडली जागृत होती है। पुरुष को दंडस्थिरत्व भी प्राप्त होता है।

9. पश्चिमोत्तासन (पश्चिम स्थाण्वासन)

धरती को छूते हुए दोनों पैर अच्छी तरह लंबा करके, कमर को मोड़ कर घुटनों पर ललाट रखकर, दोनों हाथ दोनों पैरों के अंगुष्टों को दोनों हाथों से पकड़ने पर वह पश्चिमोत्तासन है। इससे वायु पश्चिम मार्ग से चलेगी। जठराग्नि पैदा होकर, पेट साफ होकर रोग सब दूर हो जाते हैं। इसका दूसरा नाम पश्चिम स्थाण्वासन है।

10. मयूरासन

दोनों हाथों को धरती पर रखकर, दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों ओर रखकर, मुख ऊपर उठाकर, दोनों पैरों को लंबा करके मोर की पूंछ की तरह ऊपर उठाकर रखना ही मयूरासन है। इससे उदर गुल्मादि रोग नष्ट होकर, जठराग्नि प्रकाशवान बनकर विष को भी पचने की ताकत आयेगी।

11. सिद्धासन

बाएँ पैर की एडी मूलाधार के पास, दाएँ पैर की एडी को लिंग स्थान के पास रखकर, एकाग्र चित्त से शिरोग्रीव भुजाओं को ठीक से रखकर, कमर को ऊपर की तरह रखकर भ्रूम मध्यालोकन करते रहने से वह सिद्धासन है। इससे मोक्ष द्वार का कवाट खुलेगा।

12. मतांतर सिद्धासन

लिंग स्थान के ऊपर बाएँ एडी को रखकर, उसके ऊपर दाएँ एडी को रखने से वह मतांतर सिद्धासन है। यही वज्रासन है। यही मुक्तासन है। यही गुप्तासन भी है।

13. भद्रासन

दोनों एडियों को संधान प्रदेश में लिंग के पार्श्व भाग में रखकर दोनों पैरों के पार्श्व भागों को दोनों हाथों से पकड़ कर बिना हिले बैठने से वह भद्रासन है। इससे विष और समस्त रोग दूर हो जाएँगे। यही गोरक्षासन भी है।

14. पद्मासन

बाएँ जांघ पर दाएँ पाद, दाएँ जांघ पर बाएँ पाद रखकर रीढ़ के साथ दाएँ हाथ से बाएँ जांघ पर रहनेवाले दाएँ पाद के अंगूठे को पकड़ कर, उसी प्रकार रीढ़ के साथ बाएँ हाथ से दाएँ जांघ पर रहनेवाले बाएँ पाद के अंगूठे को पकड़ कर चुबुक और नासिकाग्र को देखने की मुद्रा में बैठना पद्मासन है। इससे सारे रोगों का निवारण होता है।

15. मतांतर पद्मासन

बाएँ जांघ पर दाएँ पाद उलटा रखकर दाएँ जांघ के बीच में बाएँ पाद उल्टा रखकर दोनो हाथ दोनों जांघों पर उलटे रखकर, नासाग्र पर लक्ष्य केंद्रित करके दांतों के मूल में जीभ से स्पर्श करके, वक्ष पर चुबुक को रखकर, धीरे-धीरे वायु को बंद करना ही मतांतर पद्मासन है। इससे सर्वरोगों का निवारण होता है। यही मुक्त पद्मासन भी है।

16. बद्ध पद्मासन

दोनों हाथों को स्पर्श करके पद्मासन में बैठकर, चुबुक को वक्ष पर स्पर्श करके, चित्त में ध्यान करते हुए अपान वायु को ऊर्ध्व मुखी चालन करने से, कुंडलिनी शक्तियुक्त होने पर प्राण वायु को छोड़ना बद्ध पद्मासन है। इससे अतिशय ज्ञानबोध होता है। इससे नाडी द्वार के द्वारा वायु रुकेगी। इस प्रकार के आसन से मृत्यु बच सकते हैं।

17. सिंहासन

लिंग के दोनों पार्श्वों में बाएँ पैर की एडी को दक्षिण पार्श्व में दाएँ एडी को, बाएँ पार्श्व में रखकर, हाथों को दोनों घुटनों के ऊपर से लंबा करके, विकसित अंगूठों को (मुँह खोले बिना नासिकाग्र पर लक्ष्य लगा कर) रखना सिंहासन है। इसके द्वारा मूलोड्यान जलंधर बंधत्रयानुसंधान प्राप्त होगा। यही अत्यंत श्रेष्ठ सिंहासन है।

18. शवासन

धरती पर पीठ के बल पर सोकर, दोनों पैर दोनों अंगूठों को एक साथ रखकर लंबा करके, दोनों हाथ वक्ष के दोनों तरफ रखकर सोना ही शवासन है। इससे समस्त शरीर के सारे अंग थकान से मुक्त होते हैं। यह चित्त विश्रांत करने का आसन भी है।

इस प्रकार विविध आसनों को करने से नाड़ियाँ वश में आकर देह को जवत्व और लघुत्व प्राप्त होकर सर्व रोगों से शरीर मुक्त हो जाता है। इस पर विजय प्राप्त करने के बाद प्राणायाम करना चाहिए।

4. प्राणायाम

प्राण वायु को रेचन करके, चंद्रादि नाडी से पूरा करके यथाशक्ति रोककर वापस सूर्य नाडी के द्वारा धीरे-धीरे छोड़ते, फिर प्राण वायु को सूर्य नाडी के द्वारा उदर भाग को पूरा करके, शास्त्र प्रकार से कुंभक करके, वापस चंद्र नाडी के द्वारा छोड़ना चाहिए। जिस मार्ग से वायु को छोड़ते हैं उसी मार्ग से वायु को भरना चाहिए। पहले मार्ग से दूसरे मार्ग को करते समय शीघ्र न करके धीरे-धीरे ही वायु को छोड़ना चाहिए। इस क्रम से सूर्य चंद्र नाडियों से वायु को यथा शक्ति छोड़कर, यथाशक्ति भर

कर, यथाशक्ति रोकना चाहिए। इस क्रम से करनेवाले रेचक, पूरक और कुंभक त्रय को करना ही प्राणायाम है।

प्रातःकाल, दोपहर, सायंकाल और रात को एक-एक बार बीस कुंभक को धीरे-धीरे अस्सी बार प्रति दिन करना चाहिए। तब प्राण निरोध करने पर पसीना होने से कनिष्ठ, कंपन पैदा होगा तो मध्यम, बार-बार पद्मासन के हिलने से उत्तम प्राणायाम माना जाता है। अभ्यास के समय निकलनेवाले पसीने का मर्धन करने से शरीर दृढ़ बनेगा। इस प्राणायाम से तीन महीनों के बाद नाडी शुद्धि होती है। आगे प्रत्याहार क्या है? बताऊँगा।

5. प्रत्याहार

श्री गुरुबोध विशेषता रखनेवाली बुद्धि के सहारे मन को सुस्थिर करके, मन में इंद्रियों को व्याप्त न होने देते, मन को निश्चल रखकर, बुरे विचारों को खेती के अन्न को पेट में छिपाये रखने की तरह सारे विषय वासनाओं को पकड़कर रोकना प्रत्याहार है। दान करनेवाली देह ही सुस्थिर होगी। ऐसी देह में ही दीपित होकर एकाग्र दृष्टि स्थिर होगी। इसलिए पहले इसमें सफल होने के बाद ही ध्यान योग की साधना करनी चाहिए। वह कैसा है? सुनो।

6. ध्यान योग

रोष, दुर्भाव, वैकल्य दोष, कपट, धोखा-दड़ी छोड़कर, गर्व को कुचलकर, सद्गुरु की सूक्तियों को सुनते हुए, शांत होते, सदा झूठ बोलना छोड़कर, सर्वेंद्रीय को निग्रह करके, गुरु के द्वारा आज्ञा किए गए लक्ष्यों को भूले बिना मन में रखते हुए, दूसरों की चिंता न करके, चित्त को चपलता के शिकार न होने देकर, अरिषडवर्ग को त्याग करके, अंदर

कभी भी विचलित न होने वाली बुद्धि प्रदान करना ही ध्यान योग का लक्ष्य है। इसमें सफल होना ही ध्यान योग है। आगे धारणा योग क्या है? तो सुनो।

7. धारणायोग

चरणों से लेकर घुटनों तक पृथ्वी तत्व ही है। उसके देव ब्रह्म को आकारयुक्त वायुधारण के अभ्यास के द्वारा ध्यान करने से पृथ्वी पर जय प्राप्त होगी। घुटनों से लेकर नाभी तक जलतत्व है। उसके देव विष्णु को आकार युक्त वायु धारण के अभ्यास के द्वारा ध्यान करने से जल पर विजय प्राप्त होगी। नाभी से हृदय तक अग्नि तत्व है। उसके देव रुद्र को अव्यक्त वर्ण आकार युक्त वायु धारण के अभ्यास के द्वारा ध्यान करने से अग्नि पर विजय प्राप्त होगी। हृदय से कंठ तक वायु तत्व है। उसके देव महेश्वर का आकार युक्त वायु धारण करके अभ्यास के द्वारा ध्यान करने से वायु पर विजय प्राप्त होगी। कंठ से लेकर ब्रह्मरंध्र तक आकाश तत्व है। उसके देव बिंदुमय गगन शरीरवाले सदाशिव का आकार युक्त वायु धारण करके अभ्यास के द्वारा ध्यान करने से आकाश पर जय प्राप्त होगी। इस प्रकार से धरणी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि पंच धारणा के अभ्यास से पंचभूतों पर विजय प्राप्त होगी।

ध्यान का अभ्यास करने से मन वश में होगा। चित्त भी एकाग्र होगा। बुद्धि के स्थिर होने से आनंद की पूर्ति होगी। अवनि में योग गुरु इसीको धारणा योग कहते हैं। समाधि योग कौन-सा है? तो सुनो।

8. समाधि योग

आसन की सफलता से, कुंभक सिद्धि के द्वारा निर्मल बने ज्ञान प्रकाश से मायांधकार को कुचल कर मानस-आत्मा के आकाश में

तन्मयत्व और शांति को प्राप्त करके, संयोग-वियोग, सुख-दुखों को भुलाने से ब्रह्म-पद प्राप्त करने का भाव पैदा होगा। तब निश्चल आनंद के स्वानुभव का बोध ही समाधि स्थिति है। इस अष्टांग योग अभ्यास करनेवालों को यह समाधि ही फलप्रद है। ऐसे लोग ब्रह्म पद को प्राप्त करेंगे। यही स्थूल रूप से अष्टांग योग है। इनसे अलग मंत्र, लय, हठ, राजयोग भी हैं।'' कहनेवाले वराह स्वामी को नमस्कार करके भूदेवी ने इस रूप में कहा। ''हे देव! अष्टांगयोग के बारे में नहीं जानती थी। अब आपसे उनके बारे में सुन लिया। अब मुझ पर दया करते हुए सुंदर मंत्र, लय, हठ और राजयोग के बारे में वताइए।'' तब श्वेत वराह स्वामी ने भूदेवी की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''मंत्रयोग के बारे में बताऊँगा। सुनो!

मंत्रयोग विधान-सप्त कमल

मंत्रयोग का संकल्प करके विसर्जन अंग के समीप रहनेवाले आधार कमल में व श ष स दलों पर दीपित होते गणेश वहाँ प्रकाशित होते रहते हैं। उसके दो अंगुल ऊपर उत्पत्ति के रूप में स्वादिष्ठान में ब भ म य र ल आकार में सोलह दलों पर कुंडलिनी उत्पत्ति का आद्य बनती है। उसके ऊपर आठ अंगुल के ऊपर आदि वर्णावली के साथ मिलकर दस दलों पर मणिपूरक नाड़ी रहती है। वहाँ विष्णु स्थिति कर्ता बनकर रहते हैं। फिर दस अंगुल के ऊपर हृदय के समीप अनाहत पद्म रहता है। वह ठांत वर्ण में बारह दलों पर अधिनायक लयकार रुद्र रहते हैं। उसके बाद बारह अंगुलों के ऊपर विशुद्ध रूप में माने जाने वाले कंठ के पास, अ आ सोलह दलों में दीपित होनेवाले सदाशिव वहाँ रहते हैं। उसके ऊपर नाज्ञाभिधान चक्र में ह आकार रहता है। वहाँ अतिकोमल परमात्मा रहता है।

उसके ऊपर सहस्रार कमल शीर्ष के पास दीपित रहता है। यह अमृत स्थान है। देह वृक्ष के लिए वह मूल है। वहाँ पर गुरु निवास रहता है। यहाँ पिंगल, एक विंशति सहस्रार और षट शत स्वास प्राणापान कलित होकर हंस के रूप में जजमान रहता है। ऐसी स्वास गणपति छः सौ, जलज-संभव, विष्णु और रुद्र के लिए छः सौ, सदाशिव, परमात्मा और गुरु को एक-एक लिए एक हजार स्वास होती हैं। इस प्रकार सप्त कमलों पर बैठनेवाले हंसों का काल क्रम इस प्रकार है।

हंसों का काल प्रमाण

आधार के पास छः हंसों के अर्पित होते समय एक-एक घड़ी, दस विनाडियों के स्वाधिष्टान के पास छः हजार हंसों का अर्पित होते समय सोलह घड़ी, एक अर्ध घड़ी, दस विघड़ी, क्रम से मणिपूरक हजार हंसों के अर्पित होते समय सोलह अर्ध घड़ी, दस विघड़ी, अनाहत में छः हजार हंसों का अर्पित होते समय सोलह घड़ी, दस विघड़ी, प्रकट विशुद्ध में हजार हंसों का अर्पित होते समय दो घड़ी, एक अर्ध घड़ी, सोलह विघड़ी वहाँ तक हंस चार हो जाते, आज्ञा चक्र के पास सहस्र हंसों का समर्पित होते समय ढाई घड़ी, सोलह विघड़ी वहाँ तक हंस चार हो जाते, सहस्रार के पास सहस्र हंसों को समर्पित होते समय ढाई घड़ी, सोलह विघड़ी वहाँ तक हंस चार हो जाते। इस रूप में हर दिन सारे जनों को साठ घड़ी होते हैं।

अजपा गायत्री

इस प्रकार प्रातःकाल से लेकर फिर प्रातःकाल होने तक इक्कीस हजार छः सौ हंस अजपा में होते हैं। ऐसी अजपा गायत्री महामंत्र को गुरु मुख से जानकर, अरुणोदय के समय शुचि के साथ, पद्मासन पर बैठ कर, नासाग्र पर लक्ष्य करके, सप्त कमलादि देवता को न्यास, ध्यानपूर्वक

अजपा गायत्री महामंत्र को समर्पित करते रहना ही मंत्रयोग है। अब लय योग कौन-सा है? सुनो।

लय योग विधान

विजन स्थल में पद्मासन पर बैठकर नीचे नासिकाग्र को देखते ऊपर की साधना करते, फिर नासिकाग्र को देखते नीचे की साधना करते हुए दोनों तर्जनियों से दोनों कर्ण द्वारों को, दोनों नासिकाओं से दोनों नासिका द्वारों को बांध कर, सिर को झुकाकर एकाग्र मन से बुद्धि से ऊर्ध्व की ओर देखना राधायंत्र मुद्रा है। इस मुद्रा का अभ्यास करने से ब्रह्म रंध्र से प्रणव नाद दशविध ध्वनियों के रूप में सनाई पड़ता है। वह ऐसा है कि पहले शिंजिनी गति, दूसरा तरंग घोष, तीसरा घंटारव, चौथा वेणु नाद, पाँचवा वीणा नाद, छठा भेरी ध्वनि, सातवाँ ताल ध्वनि, आठवाँ शंखारव, नौवाँ मृदंग नाद, दसवाँ मेघनाद कानों में सुनाई पड़ता है। इस प्रकार क्रम-क्रम से नादानुसंधान करने से उसमें ये नवनाद लय हो जाते हैं। दसवाँ मेधनाद के समय श्रवण सहित मन से निर्व्यापार के रूप में रोककर, बाह्य जगत को भूल जाने से वह मानस पवन में लीन हो जाता है। यह नाद लीलानंद का अनुभव ही लययोग है। अब हठयोग कैसा है? सुनो।

हठयोग विधान

राजा के पालन में सुभिक्ष राज्य में हठयोग मंटप का निर्माण करके उसमें रहते हठयोग का अभ्यास करना चाहिए। वह ऐसा है कि सुगंध से भरे फल-पुष्प वन में हवा के न घुसनेवाले सूक्ष्म द्वार मंटप का निर्माण करके प्रतिदिन गोमय से शुद्धि करके उसमें रहते हुए, अधिक मात्रा में नमक, इमली, तीखा, कडुवा, कौसलापन वस्तुओं को त्याग करके, तिल के तेल, मांस, मद्य, मीन पदार्थों को छोड़कर, बेर के फल, अधिक पत्तों

की सब्जी को, दही, टमाटर, हींग, लहसून आदि तामस पदार्थों को त्याग करके, यव, गेहूँ, शाल्यन्न, मुद्गसूप, गो घी, चिचिंडा, पोन्नगंटि, चक्रवर्ति आदि पत्तों की सब्जियों, शर्कर, खंड शर्कर आदि सात्विक आहार का ग्रहण करना चाहिए। भोजन करनेवाले अन्न को चार भागों में बांटकर एक भाग को छोड़कर, तीन भागों को ईश्वर प्रीति के रूप में खाकर, त्रिफलों को औषधियों के रूप में ग्रहण करते हुए, व्रात स्नान, उपवास व्रत, स्त्री सांगत्य आदि देह केप्रयासों का त्याग करके इह लोक के सुखों में न गिरकर, शीत-वातों से दूर रहकर योग के षट्कर्मों का आचरण करना चाहिए। वे कौन-से हैं? सुनो।

योग के षटकर्म

धोति कर्म, वस्ति कर्म, नेति कर्म, त्राटक कर्म, नौलि कर्म, कपाल भाति छः षट्कर्म हैं। उनमें धौति कर्म कैसा है? सुनो।

1. धौति कर्म

चौड़ाई में चार हस्त मृदु वस्त्र, लंबाई में पंद्रह हाथ वस्त्र को स्वच्छ जल में भिगोकर धीरे-धीरे अंदर निगलना चाहिए। ऐसा निगल कर फिर बाद में अतिवेग से बाहर निकाल कर बाद में विंशति हस्त वस्त्र को धीरे-धीरे निगलते हुए फिर बाहर निकालते रहने से दीपन होता है। अपान और पित्त कंठनाल से बाहर निकल जाता है। इसका अभ्यास करने से नेत्र से संबंधित, स्वास से संबंधित, मुख से संबंधित रोग दूर हो जाते हैं।

गुरु के मुख से इस रहस्य को जानकर धौति गजकर्ण नाम से पुकारनेवाले इस कर्म का अभ्यास करना चाहिए। हे हरिजाक्षी! ऐसा करने से वायु सब अपने वश में रहती हैं।

2. वस्ति कर्म

वस्ति कर्म ऐसा है कि नाभि तक पानी में रहते हुए अधो द्वार में नाली को रखकर कुक्कुटासन पर बैठकर अपान वायु के द्वारा जल को ऊपर की तरफ खींचना, फिर उसी मार्ग से जल को बाहर निकालना वस्ती कर्म है। इसके अभ्यास से मूल शूल, फोड़े, जलोदर, वात-पित्त दोष, नेत्र संबंधी समस्त रोग दूर हो जाते हैं। सप्त धातु, चछुंद्रीय, अंतःकरण शुद्धि, प्रसन्नता, बल आदि इससे प्राप्त होकर सर्व दोष दूर हो जाते हैं।

3. नेति कर्म

नेति कर्म ऐसा है कि बित्त भर लंबे नाडे को लेकर अमलिन घी में भिगोकर नासिका रंध्र से अंदर खींच कर मुँह से बाहर निकालना नेति कर्म है। इससे कफ साफ होकर दिव्य दृष्टि प्राप्त होगी।

4. त्राटक कर्म

त्राटक कर्म ऐसा है कि नेत्रों को एकाग्र करके सूक्ष्म रूप को देखते नेत्रों में पानी आने तक रहने से त्राटक कर्म है। इससे नेत्र रोग दूर हो जाते हैं। यह सोने की पेटी की तरह गुप्त रखने की विद्या है।

5. नौली कर्म

नौली कर्म ऐसा है कि तीव्र वेग से पेट को दाएँ बाएँ फिरोने से अग्नि मांद्य से मुक्त हो जाते हैं। शरीर दीपित होकर पाचन आदि ठीक से हो जाते हैं। जिससे आनंद प्राप्त होता है। यह शरीर के सर्व दोषों को दूर करता है। यह कर्म हठयोग सर्वश्रेष्ठ कर्म है।

6. कपाल भाति कर्म

कपाल भाति कर्म ऐसा है कि जिस प्रकार लुहार की भट्टी की धौंकनी की तरह हवा भरने के रेचक, पूरक करना कपाल भाति कर्म है। इससे सारे कफ दोष दूर हो जाते हैं।

इस प्रकार क्रम से धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपाल भाति नामक ये छः कर्म क्रम से अभ्यास करके, रोगों से मुक्त रहने से नाड़ियाँ वश में रहती हैं। तब सिद्धासन पर बैठकर रेचक, पूरक, कुंभक के युक्त प्राणायाम पूर्वक षण्मुखीमुद्रा का अभ्यास करते रहना चाहिए। तदुपरांत।

निश्चलानंद सिद्धि

मुषुम्ना नाडि के लिए जिम्मेदार मूलाधार ब्रह्मरंध्र में एक रंध्र रहता है। उस रंध्र को ही भूतत्व कहा जाता है। इडा, पिंगला नाडियाँ भी मुख्य हैं। इनके कारण ही अमृत का स्रवन होता है। इस अमृत के स्रवन के न होने से ही मनुष्य के शरीर को मृत्यु प्राप्त होती है। उस अमृत को रोकने के लिए बाएँ हाथ की योनि स्थान को अच्छी तरह दबा रखकर, गुद को ऊपर की तरह दबाकर अपान वायु को ऊपर की तरह खींचकर, बलत्कार से ऊर्ध्व की तरफ खींचने से वह मूल बंध होता है। इससे प्राण वायु और नाद बिंदु मिलकर योग सिद्धि प्राप्त होती है। अपान वायु ऊपर की तरफ उठकर अग्नि के साथ मिल जाती है। तब उनकी वृद्धि होती है। तब अग्नि पुरुषापान वायु प्राण वायु को प्राप्त करती है। इस प्रकार देह में पैदा होनेवाली अग्नि अत्यधिक प्रज्वलित होने से उसमें सोयी हुई कुंडलिनी शक्ति तप कर जाग जाती है। लाठी से मारे सांप-स्त्री की तरह निश्वास छोड़ते हुए अच्छी तरह षुषुम्ना द्वार में प्रवेश करता है। फिर शांत होकर ब्रह्म नाड़ी के बीच में रह जाता है। इस प्रकार के अभ्यास से मूल शक्ति व्याप्त होती है। मध्य शक्ति जाग जाती है। ऊर्ध्व शक्ति का हनन

नहीं होता है। वायु मध्य मार्ग से जाती है। इससे अलग मूल भाग व्याकोच होकर नाभि को दबाने से वह कमरबंध हो जाता है। कंठ संकुचित होकर, चुबुक को छाती से दबाने पर वह जलांधर बंध होता है। मूल का व्याकोच होने पर अपान वायु तेजी से उठती है, तब हृदय के अंदर रहनेवाले प्राण उतरकर नाभि के अंदर कुंडलिनी से मिलते हैं। तब संकुचित नाभि को दबाने से प्राणापान से मिलकर साथ-साथ चलकर कंठ के पास रोकने से कुंडलिनी ऊर्ध्व की तरफ रेंगती है। वह मध्य बिल में घुसकर चिन्मयत्व को प्राप्त करता है। तब अंतराकाश निश्शब्द बन जाता है। कंठ में प्राणवायु फैलकर सर्व परिपूर्ण भावना प्राप्त होती है। इस प्रकार नाकुंचित कंठ निरोध होने पर अमृत अग्नि में न गिरकर स्वानुभूति बन कर प्राणी को निश्चलानंद प्रदान करता है। इससे अलग।

अष्ट विध कुंभक

1. सूर्यभेदन कुंभक

वर योगी वज्रासन पर बैठकर वाम नाडि से अंदर कुंभक करने की तरह वायु को धीरे-धीरे छोड़कर, बाद में फिर दक्षिण नाडि से बाहर की वायु को धीरे-धीरे अंदर की तरफ खींचते, तब केश से लेकर नख तक रोककर कुंभक करना चाहिए। वाम नाडि के द्वारा कपाल शोधन करना चाहिए। इससे क्रिमी, वात बाधाएँ दूर होती हैं। हे देवी! यह सूर्य भेदन कुंभक है। फिर उंझाइ कुंभक के बारे सुनो।

2. उंझाइ कुंभक

अपने मुँह को बांधकर अपनी नासिका रंध्रों से वायु को खींचकर, कंठ में घोष करते हुए अंदर हृदय को स्पर्श करते हुए अंदर ही प्राण को रोककर फिर अंदर से वायु को छोड़ना उंझाइ कुंभक है। इससे श्लेष्म का

हरन होता है। जठराग्नि की वृद्धि होती है। धातुगत दोष धीरे-धीरे ठीक हो जाते हैं। चलते और बैठते इस उझाइ कुंभक को दिन में गुप्त रूप में क्रम से किया जाता है। हे देवी! अब मैं सीत्कार कुंभक के बारे में बताऊँगा।

3. सीत्कार कुंभक

हे देवी! नासिका रंध्रों से करनेवाले सीत्कार कुंभक मुँह से करने से नींद, भूख आदि का पता नहीं चलता है। मनुष्य स्वच्छंद शरीरवाला बनेगा। वह ऐसा है कि जीभ से, गालों से वायु को सदा खींचते रहने से, छः महीनों में सकल रोगों से मुक्त होकर, योगिनी चक्र समान शक्तिमान बनता है। दूसरा वासुदेव बनता है। यह सीत्कार कुंभक है। और सीतली नामक कुंभक के बारे में बताऊँगा। सुनो।

4. सीतली कुंभक

योगी नासिका से धीरे-धीरे वायु को खींचकर, पूर्व प्रकार से कुंभक करके नासिका रंध्रों से वायु को निकालना सीतली कुंभक है। इससे बहुरोग बाधाएँ दूर होती हैं।

5. भस्त्रिका कुंभक

अब भस्त्रिका कुंभक के बारे में बताऊँगा। सुनो। पद्मासन पर बैठ कर उदर और ग्रीव को सीधा करके मुँह अच्छी तरह बंद करके प्राण वायु को नाक से खींचकर, तीव्र गति से छोड़कर ब्रह्म रंध्र तक व्याप्त करके, मेघ ध्वनि के साथ हृदय तक वायु को फैलाकर फिर उसे छोड़ कर, फिर वायु को खींचकर और छोड़कर, तीसरी बार भी ऐसा ही करके रेचन करते हुए भट्टी की धौंकनी की तरह अंदर लेकर और बाहर छोड़कर वायु को बुद्धि के मार्ग से चलन करते रहना, कभी थकावट महसूस होती है तो सूर्यनाडी द्वारा वायु को छोड़ने से थकावट दूर होती

है। पेट शांत होता है। उंगलियों से नाक को बंद करके वायु का कुंभक करके छोड़ने से वात, पित्त, श्लेष्म दोष दूर हो जाते हैं। जठराग्नि की वृद्धि होती है। मल विमोचन भी होता है। ब्रह्म, विष्णु, रुद्र ग्रंथियों का भेदन भी होता है। यह अत्यंत सुखप्रद भस्त्रिका कुंभक है। अब भ्रमरिका कुंभक के बारे में बताऊँगा। सुनो।

6. भ्रमरिका कुंभक

पुरुष मिलिंद ध्वनि की तरह सांस खींचकर भ्रमर के आनंद से की गयी ध्वनि के रूप में नाक से क्रम से रेचन करना चाहिए। इसे क्रम से अभ्यास करना चाहिए। इस अभ्यास से चित्त में आनंद होता है। यही भ्रमरिका कुभक है।

7. मूर्छा कुंभक

अब मूर्छा कुंभक के बारे में बताऊँगा। सुनो। सांस को खींचकर जलांधर को पकड़े रहने से मन में सद्बोध पैदा होकर, अंदर पैठकर जीव से मन को भरते जाना ही मूर्छा कुंभक है।

8. केवल कुंभक

अब केवल कुंभक के बारे में बताऊँगा। सुनो। रेचक, पूरक, कुंभक करते हुए स्वभाव से वायु धारण करके, निजबोधानंद में मग्न होकर रहने से वह केवल कुंभक होता है। ऐसे कुंभक का अभ्यास करके सिद्ध बननेवाले को तीनों लोकों में कोई दुर्लभ कार्य नहीं होता है। वह सर्व स्वतंत्र भी होता है।

ऐसे हठ योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, अष्टांग योग, त्रिबंधाष्टक कुंभक, मुद्रा आदि साधनों से द्वादशाब्धों तक अभ्यास करने

से सिद्धि प्राप्त होती है। वह ऐसा है कि प्रथमाब्ध में मनुष्य रोगरहित होता है। द्वितीयाब्द में कवित्व करने लगता है तृतीयाब्ध में विष को जीतता है, चतुर्थाब्ध में भूख, तृष्णा, निद्रा, थकावट को जीतता है, पंचमाब्ध में वाक्शुद्धि को प्राप्त करता है। षष्टाब्ध में खड्गभेद्य बनता है, सप्ताब्ध में भूमि से ऊपर उठता है, अष्टमाब्ध में ऐश्वर्य संपन्न होता है, नवमाब्ध में भोगवान बनता है, दशमाब्ध में मनोवेगवान बनता है, एकादशाब्ध में विश्वशत्वं बनता है। द्वादशाब्ध में साक्षादिशत्व बनता है। यह हठ योग का क्रम है।

और मैं राजयोग के बारे में बताऊँगा। सुनो। उसे सूक्ष्माष्टांगपूर्वक अभ्यास करना चाहिए।

राज योग (सूक्ष्म अष्टांगयोग पूर्वक)

आहार निद्रादि दशेंद्रियों को दबाकर शांति को प्राप्त करना यम है। निश्चल गुरुभक्ति, निस्संशय, योगासक्ति, तृप्ति, एकांत वास की इच्छा, वैराग्य भाव को ग्रहण करना नियम है। सहज सुख देनेवाले आसन में रहना, निस्पृहत्व को प्राप्त करना, आत्मा को दबाकर ठीक करके खड़े होना आसन है। प्रकट रेचक, पूरक और कुंभक समेत श्वासों को अप्रयत्न रूप से जमाना अनिरुद्ध कुंभक है। प्राण को स्थिर रूप में रोककर जगत को सत्य और नित्य मानना प्राणायाम है। अंतर्मुखी होकर निर्मल मन से मन में उत्पन्न होनेवाले मनोविकारों से अलग रहना, ऐसे विकारों को त्याग करके निर्व्यापार रहना ही प्रत्याहार है। स्वस्वरूपानुसंधान भाव से द्वितीय रहित आत्मानुभव में सर्वजगत को आत्म के रूप में मानना, सकल भूत दया के साथ समरसता से नित्य तृप्त होना ध्यान है। अंतर बाह्य प्रकाश को एक सूत्र में, स्वतेजोमय रूप में परमात्मा को लेकर दृढ़ संकल्प करके, मन को शांत रखना ही धारण है। उस धारण के अभ्यास

में चित्त को एकाग्रता से रखने पर, जीवात्मा और परमात्मा में जल शर्कर न्याय से मिलाकर रखना, ऐसा अनुभव करना ही समाधि है। ऐसे सूक्ष्माष्टांग से प्रकाशित होनेवाले राजयोग के लक्षणों को संक्षेप में बताऊँगा। वे ऐसे हैं कि हंसाक्षर, सिद्धासन, केवल कुंभक, नाद इन चारों से राज योग प्राप्त होता है। उसमें 1. सांख्य 2. तारक 3. अनुनस्क त्रिविध हैं। इनमें सांख्य योग ऐसा है।

1. सांख्य योग

पंचतन्मात्राएँ, पंचभूत, पंचीकृत प्रबल होकर उत्पन्न होनेवाले ससलेंद्रीय, सर्वविषयजाल, गुणत्रय, काम विकारादि, देह अशाश्वत, ऐसा सोचकर जाननेवाली जानकार मैं हूँ ऐसा निश्चय करके, विक्षेपादि आवरणों को दबाकर, अपने आप में अपने को ढूँढ़-ढूँढ़ कर पहचान कर अचल वृत्ति से रहना सांख्य योग है। गुरु मुख से इसे अभ्यास करना चाहिए। इस प्रकार सांख्य योग के बारे में जानकर तारक का अभ्यास करना चाहिए।

2. तारक योग-लक्ष्यत्रय

अर्धनिमिलित नेत्रों से या दोनों नेत्रों को बंद करके, परमात्मा को गुरु की कृपा से अंदर ही दर्शन कर सकते हैं। चंद्र और सूर्य के रहते, सहज ही चमकनेवाले ताराओं में विमल बिंदु के रहने से वह तारक योग से प्रकाशवान लक्ष्य त्रय बनता है। वह तारक योग बाह्य, मध्य, अंतर्लक्ष्य के रूप में रहता है। उनमें बाह्य लक्ष्य कैसा है? सुनो।

1. बाह्य लक्ष्य

बहिर्नासिकाग्र का अवलोकन करते मनो मारुतों से मिलकर स्थिर रखकर, उसमें चतुरवर्ण प्रमाण से नैल्यम को, षटवर्ण प्रमाण से धूम्र को,

अष्टांगल प्रमाण से रक्त को, दशांगुल प्रमाण से तरंग प्रभा को, द्वादशांगुल प्रमाण में भीत को प्राप्त होता है। ये पांचों पंचभूत के वर्ण बनकर सामने आने पर अपांग द्रष्टा बनकर, उन्हें शीर्ष के ऊपर रखकर निश्चल चित्त बनाकर देखने पर चंद्र प्रभा दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त कान, नासापुट, नेत्र मार्ग से उंगलियों में रहने से निष्ठा के साथ चित्त को वहाँ पर स्थिर करने से प्रणव नाद को सुन सकते हैं। प्रकट दीप कलाएँ, नवरत्न कांति भी दिखाई पड़ती है।

यह आत्म प्रत्यय प्रकाशित बहिर्लक्ष्य है। अब मध्य लक्ष्य विधान कैसा है? सुनो।

2. मध्य लक्ष्य

आंखों की दोनों पुतलियों को स्थिर करके मन से भ्रूयुग मध्य में घुसा कर उसके मध्य में रहनेवाले सूक्ष्म बिल में प्रवेश करके देखने पर उसमें बिजलियाँ, नक्षत्र, शशि प्रभाएँ, भूतति वर्ण आदि मिले चमकने का भाव पैदा होता है। इसके अतिरिक्त सतत शून्य आकाश, निपट अंधकार से भरे महाकाश, कालाग्नि से भरे पराकाश, अधिक प्रकाशवान तत्वाकाश, कोटि भानु तेज सूर्याकाश नामक ये पाँच आकाशों को देखनेवाला तन्मय होकर निरावकाश के समान बनता है। यह मध्य लक्ष्य है। अब अंतर्लक्ष्य इस प्रकार है।

3. अंतर्लक्ष्य

अपावक, चंद्रार्कव्याप्त, पंचभूतवर्ण कलित अपज्योति बिल रूपाश्रय के रूप में प्रज्ञानवान को दिखाई देता है। वह नेत्रों के मध्य में परमाक्षर हिरण्य सच्चिदामृतांकुर गवाह होने से बाह्यांतर में देखते हुए नित्य सुख को प्राप्त करता है। वह अमृतांकुर युगल नायक बनकर स्पटिक रुचियों के

साथ जीव को प्राप्त होता है। इस रहस्य को सद्गुरु के उपदेश क्रम में जान कर बाह्यांभंतर के बीच में श्रृंगाटक के पास ओंकार से दीपित नीवार शुंकाणु के रूप में रहनेवाले सगुण पंचक को देखना तारकांतर्लक्ष्य होता है। इससे बढ़कर सरस्वती नाडी चंद्रप्रभावित होकर मूलकंद के पास रहते दीर्घास्ति मध्य में तंतु के रूप में विद्युतकोटी के रूप में प्रकाशित होता है। वह ब्रह्मरंध्र तक व्याप्त होकर, ऊर्ध्वगामिनी होकर सर्वसिद्धिप्रद बनता है। उस स्वरूप को आत्मा के अंदर अनुभव करते हुए फालोर्थ मंडल में स्वरूप के अंदर लक्ष्य को रखकर देखना ही परमांतर्लक्ष्य है। सदा भवतारक्य अभ्यास करने से मन में मारुत अंतरंग में निर्मग्नत्व को प्राप्त करता है। उसके अनुकूल अंतरात्मा परमात्मा के आनंद को प्राप्त करती है। अब अनुनस्क योग के बारे में बताऊँगा। सुनो।

3. अनुनस्क योग (शांभवी मुद्रा)

आत्माश्रय को हंस मार्ग के दाएँ और बाएँ ललित नील कांति से उदक ज्योति में भास्वर दर्पण छाया के होने से वह दीपित होकर उसके मध्य में सूक्ष्माति सूक्ष्म सुषिर को मन में लाने से अंतर्लक्ष्य बाह्य दृष्टि के रूप में अवगत होता है। वही घन शांभवी मुद्रा है। दो यामों तक बैठकर इसका अभ्यास करने से मन में अनिल गति प्राप्त होती है। एकाग्र भाव भी पैदा होता है।

राज योगी का अपूर्व अनुभव

सुनने को, बोलने को विविध विचित्र विचारों को अपने आपमें ही रोककर, परमात्मा के अंदर की अंतरात्मा के बारे में विचार करते हुए उसी में लीन होने से महादीप के रूप में ज्ञान प्राप्त होता है। उससे अंदर ही एक रूप, एक नाद सुनायी देना ही खेचरी मुद्रा है। तब अचलित

आनंद के अनुभव करते हुए वर मनोन्मनी, तन्मय अवस्था को प्राप्त करके चलनरहित मन को प्राप्त करता है। वह राजयोगी तब अजाड्य निद्रा और योग निद्रा दोनों को प्राप्त करता है।

ऐसे राजयोगी को जागृत, स्वप्नन, सुषुप्ति, तुर्य, तुर्यातीत नामक पाँचों अवस्थाएँ होती हैं। वे कौन-सी हैं? जतुर्विंशति, तत्वात्मक देह, अपने द्वारा नहीं देखे गए पंचविंशक देह को जानकर सावधान होता है। मन को इंद्रीय बृंद के साथ आत्मा को खड़ा करके ध्यान करने से, उस के मन में सर्वविषय वासनाएँ दूर होकर बहिर्मुख में सपने की तरह उसे अपने आप में ढूँढ़ता रहता है। इसे अभ्यास करनेवाला मन मायाजाल में न पड़कर, यह मायाजाल अनित्य मानते सत्य वस्तु को प्राप्त करता है। उसका मन बहिर्ज्ञप्ति के द्वारा इसे बोध कराना ही सुषुप्ति है।

जीवेश्वर भाव को प्राप्त करनेवाली आत्मा में स्थिर मन बाह्यभाव रहित बनकर पर को प्राप्त करता है। इस प्रकार पुरुष और पुरुषोत्तम उभय भावों की चेतना को प्राप्त करता है। मन में विषय-वासना विमुख होकर सर्वेंद्रीय व्याप्त से देहाभिमान को छोड़ देता है। विरक्ति भाव में सांसारिक बंधनों से मुक्त होकर आत्मानुभव से अमृत को प्राप्त करता है। तब वह तन्मयत्व और स्वतंत्र को खोकर आत्मा परतंत्र बनती है। तब जीव स्वतंत्र होकर ईश्वर के अधीन होते समय उसमें ईश्वर का भाव सत्य हो जाता है। तब सर्वव्याप्त सर्वेश्वर पर मन केंद्रित होता है। तब मन जहाँ तक आत्म दृश्य को देखता है वहाँ तक वह मनोन्मनी होता है। जब द्रष्टा, दृक और दृश्य तीन अलग-अलग न होकर एक हो जाते हैं, तब ध्यान युक्त आत्मा मन में परमात्मा का अनुभव करती है। तब मन के होते हुए भी परमात्मा अलग अनुभव होता है। यह तन्मयावस्था ही तुरीय अवस्था

है। वह स्वानुभाव से परमपद बनता है। तब सहज ही मन सकलेंद्रीय के साथ लीन हो जाता है। यह अमनस्क तुरीय अवस्था है।

होने को नहीं है कहना, घटकाश को महाकाश में देखना, देश, काल, कार्य, कतृ, कारण, गुरुत्व, लघुत्वादवस्था के रूप में न लगने से वह सहज मनस्क अवस्था है। आदान-प्रदान रहित, अकथित, सहज भाव के रूप में होना अजाड्य निद्रा है।

अंतहीन सागर की तरह, आद्यांत रहित आकाश की तरह ईश्वर अदृश्य शक्ति से सब जगह रहता है। हवा में, गंध में, वृक्ष में, अनल में, अग्नि में, माधुर्य में, क्षीर में, घी में, तेल में सब रूप में चराचर सृष्टि में परमात्मा के परिपूर्ण रूप का अनुभव करना ही योगनिद्रा है। यह अल्प साधकों को अनुभव में नहीं होता है। इसे जो योगी अनुभव करता है, वह अनुभव गूँगे के गुड की तरह है। कुछ बोला नहीं जा सकता है। वह ऐसा है कि ब्रह्म अद्वैत वस्तु के रूप में शास्त्र बनता है। 'ब्रह्म' कहने मात्र से ब्रह्म नहीं होता है? ब्रह्म रूपी गुरु स्वरूप को मन में रखकर अपने आप ब्रह्म समझने के काल में ही ब्रह्म का बोध होता है। इस प्रकार मानस में गोचर होनेवाला ब्रह्म ही राजयोग है। राज योग में बताये गए मंत्र, लयादि योग अनुभव में होता है। उसका क्रम ऐसा है।

मंत्र, लयादि योगों का अनुभव क्रम

मंत्र के योग से मारुत संचार देह का रहस्य मालूम होता है। लय के द्वारा अपने अंदर के ललित प्रणवनाद सूत्र को मन में जप कर सकते हैं। हठ से, जरा से, रोगों से, मृत्यु से क्रीड़ा करके उन्हें जीत सकते हैं। दारक से अपने आप में दीपित होनेवाले को पहचान सकते हैं। उचित राज योग से परब्रह्म को प्राप्त करके पूर्णत्व को प्राप्त कर सकते हैं।

सुनो! मंत्र योगी से लय योगी महान है। लय योगी से अधिक उल्लसित हठयोगी महान है। हठ योगी से अधिक सरस मनवाला सांख्य योगी महान है। उससे भी दारक योगी महान है। उससे भी सांख्य, तारक को संग्रहीत करनेवाले, वैराग्य भाव से रहनेवाले राजयोगी उत्तमोत्तम हैं। अवनि में राजयोगी से बढ़कर कोई नहीं है। वह अगर परिवार में है, जंगल में है तो भी सकल निर्लेप भाव से शांत भी होता है। इसलिए ऐसे राजयोगी के लक्षणों के बारे में सुनो!

राज योगी के लक्षण

देह कांति, मृदुत्व, वाक् माधुर्य, मितभाषण, भूत दया, विवेक, शांत चित्त, मिताहार, मनोस्तैर्य, मैत्री गुण रखनेवाला ही राज योगी है। वह आडंबर, मध्यस्थ, कलुषों से मुक्त रहकर दीपित होता है। अँबुधि मध्य कलश की रीति में सारे दुर्गुणों से अलग रहता है। अलग रहते हुए भी परिपूर्ण होते दीपित होता है। वह एक बार संसारी के रूप में नाटक करता है। एक बार विरागी के रूप में नाटक करता है। हे धरणी! उस के अनुभवों को कोई जान नहीं सकता है।

धर्माधर्म का ज्ञान रखते हुए, कर्मासक्त होकर, सदा निर्मल भाव से मर्मज्ञता के साथ वह व्यवहार करता है। प्रज्ञावान होकर सज्ञनों के देह में रहता है। उस राजयोगी के मन के बारे में नहीं जानते हुए अज्ञानी उसकी निंदा करते हैं। दूषण करनेवालों के लिए वह शून्य है। दूषण करनेवाले ही पापी बनते हैं। भूषण करनेवालों के लिए वह पुण्य-फल है। ऐसा निर्लेप भाव वह रखता है।

अपने को महान समझकर गर्व नहीं करता है। छोटा समझकर आत्मन्यूनता का शिकार नहीं होता है। अधिक भाग्य होने से फूलता नहीं

है। कभी दारिद्र्य से व्याकुल भी नहीं होता है। प्रारब्ध को भोगे बिना कोई रास्ता नहीं समझकर एकरस से सुख-दुखों को भोगता है। जलज पत्र पर जल की तरह सभी सांसारिक गुणों से अलग रहता है। जगत में कंदमूलों के कटने से जैसे वे कुछ दिन ताजा रहते हैं, देह मूल से होनेवाले कारण विद्यादि के दूर होने से भी राज योगी जीवित रहता है। कारण मालूम होने पर भी कार्यजाल से मुक्त नहीं होता है। परिपूर्ण चिदात्मा को प्राप्त करके विकारी हुए बिना प्राप्त देह के आश्रय में रहकर, गुण कर्मों में कभी किसी के साथ न रहकर सुख स्वरूप में सदा सबका साक्षी बनता है।

राज योगी-आत्म यज्ञ

बुद्धि से, चित्त में अहंकार रहित, मानस में ऋत्विकगण, प्रवण वर्ण को उपस्थंभ के रूप में, प्राण दर्शेंद्रियों की पंक्ति समूह के रूप में रहने से, भासुर अनहत नाद विहित मंत्र बनने से, मनोविकारों को बोधाग्नि में जलाकर ज्ञानामृत को सोम पान के रूप में राज योग प्राप्त करता है। उस सोम पान को पीकर मोक्ष कांता समेत होकर वेदांत सूत्र कहे जाने वाले कर्ण कुंडलों के दीपित होते त्रिकुट मार्ग से शांति को प्रमुख मित्र के रूप में राजयोगी उपासना करता है। प्रकटित आचारों की गाडी की सलाखे बनने से, जप-तप सुचक्र बनने से, प्राण पंचक गाड़ी बन जाने से उसकी देह निर्मित होती है। कर्ण और नेत्र वाहन बनने से विवेक सारथी बनने से निस्फुहत्व ही त्याग ध्वज बनने से बने रथ पर राजयोगी चढ़कर यात्रा करके सर्वस्व को प्राप्त करके, गंगा, यमुना के रुकनेवाले चारों मार्गों के बीच में अवभृथ स्नान करके, इस अवनि में आत्म सोमयाजी के रूप में प्रशंसित होता है।

इतना महान योग पुरुष उच्च या नीच नहीं होता है। संतोष के साथ किसी भी कांता के साथ रहता है। अपने में परमात्मा को देखता रहता है। विभ्रांतियाँ होने पर, निंदा होने पर सिर्फ हँसता ही है, यह शांत राजयोगी बदले में निंदा नहीं करता है। घन सद्गुरु के रूप में दूसरों से प्रशंसित होता है।

तामस शिष्य का स्वभाव

ऐसे महान गुरु अपने को प्राप्त योग की शिक्षा सभी शिष्यों को नहीं देना चाहिए। शिष्य की परीक्षा करके शिक्षा देने योग्य पाने पर ही उसे शिक्षित करना चाहिए। शिक्षा को पाने में असमर्थ तामसी शिष्य को शिक्षित नहीं करना चाहिए। ऐसे शिष्य को शिक्षा देने पर भी उसे वह पसंद नहीं करेगा। क्योंकि ऐसा शिष्य वेश, भाषा पर गर्व ही करेगा। शिक्षा के मूल तत्व को पकड़ नहीं पायेगा। आरंभ में ही शिष्य के दुर्गुणों का पता लगाकर डांटते, पीटते उसे सुगुणों को सिखाना चाहिए। ऐसा करने के लिए शिष्य के तैयार नहीं होने पर भी गुरु को शांत रहना चाहिए। ऐसा न करने से शिष्य के दुर्गुणों की परीक्षा लेकर उसे सजा दिलाने के क्रम में उसके दुर्गुण गुरु के मानस में रहकर गुरु को गुस्सा करने के लिए विवश करेगा। गुस्सा किसी को भी ताप के उत्पन्न होने का कारण बनता है। इसलिए तामसी शिष्यों को स्वीकार नहीं करना चाहिए। स्वीकार करने से आतुरता बढ़ेगी। शांति भंग हो जायेगी। दुर्गुणों को त्याग नहीं करनेवाला, अरिषड्वर्ग को संग्रहित करनेवाला बड़ा दुष्ट होगा। गुरु के उपदेश से उसमें वैराग्य की भावना क्या उत्पन्न हो सकती है?

सच्छिश्य का स्वभाव

और सच्छिश्य कौन है? प्रश्न करने पर साधन चतुष्ट्य संपन्न, कपटरहित, जार, चोर, क्रूर गुणों को त्याग करके, परम शांति चाहनेवाला

सच्चिश्य है। ऐसा ही शिष्य मोक्ष पर आसक्त होकर, गुरु की सेवा करते हुए उसके अनुग्रह का पात्र होता है। ऐसा सच्चिश्य देहाभिमान को छोड़कर प्रणवपूर्वक वेंकटेश्वर का नाम स्मरण करता है। फिर अपने निज बल से षुषुम्ना द्वार को तोड़कर योग मार्ग से परमपद को प्राप्त करता है। ऐसे योगाभ्यास करने में असमर्थ होने पर भी अत्यंत गुरुभक्ति रखते हुए, इससे गुरु की कृपा से भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का अभ्यास करते उपशांति को प्राप्त करके, ज्ञानी होने का गर्व न करके विनयशील होना चाहिए। क्योंकि ज्ञानाहंकार ही मनुष्य को दुष्ट बनाता है। इसलिए बुद्धिवान ज्ञानाहंकार को त्याग करके उपशांति को पाना अच्छा है। उपशांतिहीन मनुष्य के जप-तप, योग-विधियाँ पृथ्वी पर कपट बनकर बुरी मानी जाती हैं। इसलिए हे कमलाक्षी! उपशांति ही परम धर्म है।

ऐसे ज्ञान, भक्ति, वैराग्य योगों के लिए सदा अनेक विघ्न पैदा होते रहते हैं। ऐसे विघ्नों से मुक्त होने का एक उपाय है। वह ऐसा है कि वेंकटाद्रि पर सनकसनंदन तीर्थ अति गोप्य रूप में स्थित है। इसके बारे में नरों को मालूम नहीं है। उसके समीप पाप विनाशन तीर्थ सिद्ध स्थल के रूप में स्थित है। मार्ग शीर्ष शुद्ध द्वादशी दिन को अरुणोदय के समय स्वामी पुष्करिणी में स्नान करना चाहिए। तदुपरांत त्रयोदशी के दिन से सनक सनंदन तीर्थ में डुबकी लगाते पुनः वेंकटेश्वर स्वामी के दर्शन करना चाहिए। दर्शन के साथ-साथ श्रीमदष्टाक्षरी मंत्र का जप करना चाहिए। साथ ही योगाभ्यास करनेवालों को सारे विघ्न नष्ट हो जाते हैं। योग सिद्धियाँ भी प्राप्त होंगी। पापनाशन तीर्थ के समीप ही अतिगुप्त कायरसायन नामक पुण्य तीर्थ है। उस तीर्थ के जल को पीने से देह दिव्य देह बनती है। परीक्षा करने के लिए एक पीले पत्ते को उसमें डालने से वह श्यामल वर्ण में बदल जायेगा। इसलिए उस तीर्थ के पान से देह

सिद्धि प्राप्त होती है। उस रूप में स्वस्थ्य और बलवान को श्री वेंकटेश्वर की सेवा करने का पुरुषार्थ प्राप्त होता है। ऐसी सेवा न करने से वह स्वामी द्रोही बन जाता है। इसलिए सदा श्री वेंकटेश्वर स्वामी की सेवा करते रहना उचित है। ऐसा वराह स्वामी ने भूदेवी से कहा और व्यास मुनि ने इस क्रम को मुझे बताकर तदुपदेश क्रम की आज्ञा दी है। ''उस वृत्तांत को मैंने आपको सुनाया।'' सूत ने शौनकादि मुनियों से कहा। तब शौनकादि मुनियों ने सूत को देखकर इस रूप में कहा।

''हे सूत महानुभाव! परम शुद्ध योग के मर्म को सुंदर रूप में भूदेवी को श्वेत वराह स्वामी ने बताया। महा प्रीति से बादरायण उसे ग्रहण करके आपको बताने पर, उसे आप हमें अच्छी तरह सुनाया। महानंद हुआ!''

श्री वेंकटेश्वर अष्टोत्तर शत स्तोत्र प्रभाव

''हे महानुभाव! बहुत संतोष हुआ। वेदांत वेद्य श्री वेंकटेश्वर के अर्चना-वैभव को हमें अब बताइए।'' शौनकादि मुनियों की इन बातों को सुनकर संतोष का अनुभव करते हुए सूत ने इस रूप में कहा। ''हे घनात्मा! आपके पूछने के अनुसार महान शेष से कपिल मुनि मोद से पूछने पर, संतोष के साथ शेष ने इस रूप में कहा। ' हे मुनिगण! मुख्य रूप से इसे सुनिए। गरुतर, हरि प्रीतिकर, परम गोपनीय, परिताप हरन करनेवाला, रम्य अष्टोत्तर शतक काम्य फलों को प्रदान करनेवाला है। वह ऐसा है सुनिए!' स्वर्ण नदि में पैदा होनेवाले स्वर्ण कमलों को लाकर ब्रह्म ने वेंकटेश्वर के अष्टोत्तर शतक के रूप में दीपित नामावली के साथ पूजा करके आनंद प्राप्त किया। तद्वारा स्वामी से सर्वलोक पितामह ब्रह्म सकल काम्यार्थों को प्राप्त करके संतुष्ट हुए। ऐसे अष्टोत्तर शतक नामों का पठन करने के पहले प्रणव पूर्वक श्री वेंकटेश्वर के अष्टाक्षरी महामंत्र

का न्यासयुक्त जप करना चाहिए। उसे हरि को समर्पित करके तदुपरांत ध्यान, वाहनार्घ्य, पाद्यचमन, स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत, गंधाक्षतों को समर्पित करके वेंकटेश अष्टाक्षरी का जप करके, 'श्रीवेंकटेशाय नमः' कहते अष्टोत्तर शत नामों का उच्चारण करते हुए पाद से शीर्ष तक सर्वांग समर्पण करना चाहिए। फिर धूप, दीप, नैवेद्य, तांबूल, सुवर्ण पुष्प, कपूर नीराजन, मंत्र पुष्प, परिक्रमा, नमस्कार समर्पित करते हुए एकाग्र ध्याननिष्ठ भक्त पर श्री वेंकटेश्वर प्रसन्न हो जाते हैं। इहलोक और परलोक के फल प्रदान करते हैं। यह अष्टोत्तर शत नामावली अत्यंत गोपनीय है। श्रद्धा-भक्ति के साथ गुरु पर विश्वास रखते हुए उस गुरु मुख से जानकर पठन करने पर इससे अत्यंत सफलता प्राप्त होती है।' 'शेष के द्वारा प्राप्त इसे आपको बताया।' ऐसा सूत ने शौनकादि मुनियों से कहा और आगे इस रूप में कहा। कपिल मुनि के पूछने पर स्वीकार करके शेष ने निष्कपट होकर उस क्रम को कर्दम पुत्र को बताया। मुझे उस कपिल मुनि ने संक्षेप में बताया। जो कुछ मैं जानता हूँ। उसे मैंने अब आप लोगों को बताया। हे मुनीश्वर! इस अष्टोत्तर शतक का सद्भक्ति से पारायण करनेवाले सात्विकों को ये शेषगिराधीश! अनन्य पद प्रदान करते हैं।

नैमिशारण्य मुनियों का वेंकटाद्रि पधारना

इसे सुनकर शौनकादि मुनियों ने इसे अत्यद्भुत कहा। वेंकटेश्वर के दर्शन के निर्णय करके अखंड भक्ति से कुछ कह पाने की स्थिति में उन को देखकर सूत ने इस रूप में कहा। ''हे मुनिवर! आपको बहुत संदर ढंग से अब मैं क्या बता सकता हूँ।'' इस रूप में कहने पर सूत को देखकर उन दिव्य मुनियों ने इस रूप में कहा। ''वेंकटाद्रि पहाड़ को देखने की अटल इच्छा मन में हो रही है। श्री वेंकटाद्रि महिमा को सुनकर हम

तृप्त हो गए हैं। हमारे श्रवण अंग इससे धन्य हो गए। नेत्रों में प्रेम बढ़कर दर्शन करने की इच्छा पैदा हो गयी है। वेंकटगिरी के दर्शन करके आयेंगे। हे सूत! करुणोपेत!'' ऐसा मुनियों के कहने से सूत ने मुनियों के उत्साह को देखकर इस रूप में कहा। ''हे तापसी! अब आप यहाँ विलंब नहीं करते हुए वेंकटाद्रि के लिए निकल जाइए। उस वेंकटगिरि शैल को आश्चर्य से देखकर महोत्साह से वहाँ के श्री वेंकटेश्वर के दर्शन कीजिए।'' ऐसा कहते सूत ने वेंकटाद्रि का वैभव, श्रीनिवास की महानता, स्वामित्व को प्रदान करनेवाले तीर्थों की महिमा के बारे में बताया। इसके अतिरिक्त भूवराह स्वामी को प्राप्त नारायण चिह्न और उनके अद्वितीय प्रभाव के बारे में बताने पर अपने सारे संशयों को निवृत्त करके संतोष के साथ शौनकादि मुनिगण वेंकटगिरि यात्रा के लिए निकल पड़े।

गौतम, जाबाली, कश्यप, अंगीरस, श्रीवत्स, कौत्स, मैत्रेय, पुलह, कण्व, गार्गेय, मृकंदु, भरद्वाज, कौशिक, देवल, क्रतु, पुलस्त्य आदि सारे प्रमुख मुनिगण नैमिशारण्य को छोड़कर तब गंगा के तट पर पहँच कर स्नान करके, वहाँ से गोदावरी, कृष्णा नदियों में स्नान करके, मार्गमध्य में स्थित पुण्य तीर्थों में डुबकी लगाते, सद्भक्ति से श्री वेंकटेश्वर के दर्शन की अभिलाषा से सारे मुनिगण चले आये।

श्री वेंकटगिरी के दक्षिण में स्थित कपिल तीर्थ पहुँचकर, ब्रह्म तत्व के प्रभाव से प्रकाशित पुण्य तीर्थों में स्नान करके, वेकंटाचल पर्वत पर चढ़ना उन्होंने शुरु किया। मार्ग में मेरु गिरी समान सुवर्ण प्रभाओं के समानवाले श्रृंग समूहों के दर्शन किए। नवरत्न कांति से सुशोभित पर्वत सानु देशों को, फल पुष्पों से भरे पुण्य वृक्ष समूहों को, गंगा समान अनेक पुण्य तीर्थों को, शुक, पिक, कलकंठ, मराल, मयूर आदि प्रमुख विहंगों

के समूहों को, सिंह, व्याघ्र, वराह आदि प्रमुख वन्य मृगों को, गरुड, गंधर्व, यक्ष, किन्नेर जाति के समूहों को देखते, बीच-बीच में दिखाई पड़नेवाले पुण्य तीर्थों में स्नान करते हुए, साम गान करते चल रहे थे। जल से भरे, कनक, कमल, कल्हार से परिवेष्टित स्वामी की पुष्करिणी का उन्होंने दर्शन किया। पुष्करिणी में स्नान करके वराह स्वामी के दर्शन किए। भक्ति पूर्वक उनकी पूजा की। तदुपरांत श्रीनिवास की सन्निधि में गए। वहाँ दिव्य विमान की परिक्रमा की। सभा मंटप में खड़े होकर श्री वेंकटेश्वर के दर्शन किए। स्वामी को अंजली समर्पित करते पुलकित हुए। नेत्रों से आनंद भाष्पों के निकलने से गद्गद कंठों से वेद-वेदांत शास्त्र प्रकारों से स्वामी की विनति की। तदुपरांत श्रीनिवास के दर्शन करके आनंदपरवश हुए। जटा-जुटाएँ हिलाते आनंदपरवश में नाचते गाते असीम आनंद को प्राप्त किया। इंदिरेश्वर के पास वे उड़ते उछलते गए। भगवदावेश में लीन होकर आनंदात्मा बनकर अच्छी तरह नाचते गाते सकल वेदों को उच्च्य स्वर में उन्होंने पठन किया।

वेदों का पठन करते-करते निष्ठागरिष्ठ वे सारे मुनिगण खड़े होकर अनुपम सौंदर्य वाले श्री वेंकटेश्वर के नेत्रपर्व रूप में दर्शन करके मन को उस स्वामी पर केंद्रित करके भक्ति में डूब कर तन्मय हो उठे। उन्होंने अष्टोत्तर शत नामों का अत्यंत इच्छा के साथ पठन करते सुवर्ण पुष्पों से सृष्टि, स्थिति, लयकार श्री वेंकटेश्वर की पूजा अपने मन भरने तक की है।

तब कोटि प्रकाशवान, आजानुबाहू, अच्युत, परिपूर्ण चंद्र बिंब समान चेहरे वाले, मंदस्मित मुद्रा के माघव, सललित मकर कुंडल कर्णों से शोभित, मणि किरीट मस्तकवाले, श्रीवत्सलांचन दिव्य वक्षवाले,

पीतांबर धारी, शंख, चक्र, कमललोचन, परमात्मा, लोक कर्ता नारायण ने अत्यंत दया के साथ मुनियों की तरफ देखकर संतोष के साथ कहा।

मुनियों से स्वामी का संवाद करना

''हे मुनिगण! मेरे दर्शन करने के लिए आनंद के साथ आपके यहाँ आना मुझे लग रहा है कि मेरे प्रति आप अत्यंत भक्ति परिपूर्ण हैं। मैं आपके लिए उचित कौन से वरदान दे सकता हूँ? आप इतने दूर से आये हैं।'' श्री वेंकटेश्वर की बातों को सुनकर मुनिवरों को अत्यंत हर्ष हुआ। भक्ति से वेंकटनाथ को बार-बार नमन करते हुए उन्होंने इस रूप में विनति की।

''हे परब्रह्म स्वरूपा! सारे विकारों से परे आप वैकुंठ से पधार कर यहाँ वेंकटगिरि पर बसे आपको मनुष्य आत्मा में आपके दर्शन कर रहे हैं, आपके दिव्य मंगल विग्रह को अब हमने श्री वेंकटाद्रि पर अपने चर्म-चक्षुओं से दर्शन किए। हमारे लिए यही बहुत कुछ है और वरदानों की आवश्यकता किसलिए है? अब करुणा से हमें मोक्ष मार्ग दिखाना ही चाहिए और वरदानों की आवश्यकता नहीं है।'' कहने पर नारायण ने मंदस्मित वदन से मुनियों से इस रूप में कहा। ''हे मुनिगण! परिपूर्ण कामी महामुख्य जगत में पावन लोग हैं। इसलिए आप वरदान नहीं मांगते हुए अपने निष्काम को प्रकट कर रहे हैं। इसी निष्काम भाव के कारण ही आपको अमित संतोष प्राप्त हुआ है। परम शांति को प्राप्त करनेवाले आपको काम्यार्थों से कोई काम नहीं है। आत्मानुभव ही आपकी संपदा है। आपके मन को जानने के लिए ही मैंने अच्छे वरदानों के बारे में पूछा है। आपमें निष्काम तत्व को मैंने देखा है। आपको प्रीति से मैं आगे उत्तम पद प्रदान करूँगा। बड़े-बड़े वरदान मैं मनुष्यों को देते हुए धरती पर विपुल अनुपम ढंग से ब्रह्मोत्सव करने से यहीं रहते हुए मैं उन्हें स्वीकार

करूँगा। पहले कन्या मास में ब्रह्म ने महोत्सव किया है इसलिए उनके संकल्प के अनुसार ही उन्हें और वृद्धि करने के उद्देश्य से धरती पर के जनों को पहाड़ बुला लाकर उनकी मनौतियों की पूर्ति करते, अखिल भोग मैं यहाँ प्राप्त करूँगा। ऐसी मेरी लीलाओं को सदा स्मरण करते हुए भक्त जन भजन करते रहते हैं। दूर रहनेवालों को तथा समीप रहनेवालों को उनके अभिष्टार्थ को देकर मैं उनकी रक्षा करता रहूँगा। हे पुण्यजन! मैं उनको देहांत के बाद पुण्यगतियाँ भी प्रदान करूँगा।'' हरि की इन बातों को सुनकर अत्यंत आनंदित होकर शेषाद्रि पर रहते मुनिगण ने हरि की विनति की है।

तदुपरांत मुनियों को वेंकटगिरी नायक ने देखकर करूणा से 'आपको यहाँ पर क्यों रहना है? हे मुनीश्वर! अब आप अपने आश्रम पर चलिए।' श्री वेंकटेश्वर की इस आज्ञा को पाकर मुनिगण ने श्री वेंकटेश्वर, श्रीदेवी, भूदेवी और नीलादेवी को नमस्कार करते हुए वहाँ से निकल जाने की अनिच्छा से फिर नेत्र पर्व के रूप में हरि की ओर देखकर नेत्रों से आनंद भाष्पों के निकलते निगमांत सूक्तियों से हरि की स्तुति करते करते तृप्त न होकर बार-बार स्वामी के सुंदर रूप को चित्त में स्थिर करके, तन्मयत्व को प्राप्त करके, सारे मुनिगण उस अनंत और विश्वमोहन को छोड़कर जाने में असमर्थ हुए। उनकी इस दशा को देखकर पद्मोदर ने इस रूप में कहा।

''हे परम मुनिगण! निर्गुण ब्रह्म कहलानेवाले मैं सगुण विलासों को मनुष्यों को दिखाकर रक्षा करने के उद्देश्य से ही इस स्थल पर विराजमान हूँ। वैसे मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ। इसलिए पूर्ण विवेकवान को कभी मुझे छोड़कर रहने का वियोग नहीं होता है। अपने विमल स्वरूप को सदा उनको दिखाते रहूँगा। इसलिए सद्भावना से वह मुझे पकड़े बिना सर्वत्र

देखता रहेगा। आप भी उस विधान को ग्रहण करके अपने स्थलों पर चलिए। मैं यहीं पर रहूँगा।'' इस रूप में मुनियों को पुण्यात्म स्वरूपवाले नैमिशारण्य भूमि में लौट जाने का उपदेश देकर श्रीनिवास ने मौन मुद्रा धारण की। फिर अद्भुत ढंग से अर्चा मूर्ति के रूप में विराजित हुए।

तब शिला विग्रह के रूप में अर्चामूर्ति बने श्री वेंकटेश्वर को देखकर आश्चर्यचकित होकर पूर्ण भाव से मुनियों ने इस रूप में प्रशंसा की है।

मुनीश्वरों के द्वारा वेंकटेश्वर की स्तुति करना

पंच चामर श्लोक

सरोज पत्र लोचन, सुसाधु खेद मोचन, चरचरात्मक प्रपंच साक्षीभूत अव्यय, मुरारी, पद्मजामरेंद्र, पुजितांघ्रि, पंकज, सागरात्मेश्वर, हे वेंकटेश्वर! आपका सदा स्मरण करते रहेंगे। हे पुराण पुरुष! समस्त पुण्य कर्मों की रक्षा करनेवाला! मुरासुर आदि दानवों का संहार करनेवाला! धरती का उद्धारक! प्रशांत तापसात्मा! सागरात्मेश्वर! हे वेंकटेश्वर! आपका सदा स्मरण करते रहेंगे। शरासन आदि शस्त्रबृंद साधन, शुभाकर, खराख्य राक्षसेंद्र के गर्व को चकनाचूर करनेवाले हे पावक! हे नराधिनाथ! आपकी वंदना करते हैं! नगात्मजात्मा! सागरात्मेश्वर! हे वेंकटेश्वर! आपका सदा स्मरण करते रहेंगे। मुरारी शौर्य विग्रह! सुपर्वराट का परिग्रहण करनेवाले! परात्पर! मुनींद्र चंद्र! भावगम्य विग्रह! धरामराघ शोषण करनेवाले! सुधा तरंग भूषण! नगात्मजात्मा! सागरात्मेश्वर! हे वेंकटेश्वर! आपका सदा स्मरण करते रहेंगे।

इस प्रकार मुनिगण श्रीवेंकटेश्वर की स्तुति करके बार-बार प्रणाम करते हुए, वेंकटाद्रि से उतरकर कपिल तीर्थ मार्ग से गिरि की परिक्रमा करके नैमिशारण्य पहुँच गए। वहाँ सूत को देखकर मुनियों ने कहा।

मुनियों का नैमिशारण्य लौटकर सूत की स्तुति करना

''हे सूत! आपकी कृपा से प्रसिद्ध वेंकटाद्रि जा सके। वहाँ प्रीति से आपके बताने के अनुसार उस गिरी को पाया। अहो! आपके द्वारा प्राप्त ज्ञान से हमारा उत्साह बढ़ा है। आपका माहात्म्य अत्यधिक है। आप सामान्य नहीं हैं! हे सूत! हमसे आपने जो कुछ उस हिरण्य गिरीश के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर चित्र-विचित्र ढंग से बताया। आपको ये सब कैसे मालूम है! सचमुच यह गिरी अद्भुत है। धर्माद्रि के रूप में यह गिरी प्रसिद्ध है। चैत्र रथ के रूप में वह दिखाई पड़ रही है। खग, मृग आदि अपने जाति-भेद को भूलकर उस वन में जी रहे हैं। स्वामी पुष्करिणी संपूर्ण है। उसके पश्चिम भाग में भू वराह स्वामी दीपित बसे हैं। उसके दक्षिण भाग में सुवर्ण से तप्त कुंभ के रूप में गोपुर हैं। मणियों से शोभित प्राकार मंटप हैं। उन सबके बीच में दिव्य कांति वाले विमान को देखा है। हे सूत! हमने उस दिव्य विमान के मध्य में लक्ष्मी नाथ के दर्शन किए। उसके समीप खड़े होकर प्रणाम करते समय आश्चर्य से पुलकित होकर सुध-बुध को खोकर लज्जा किए बिना स्वामी को देखते हुए अति उत्साह से हे सूत! नाच गान किया। नाच-गान करके अपने को हरि को समर्पित किया। बदले में निष्कपट से हमसे श्री वेंकटाचलपति ने बात की। उनकी मधुरोक्तियाँ सुनकर हमें बहुत आनंद हुआ। फिर मित्रतावश हमें नैमिशारण्य लौटने के लिए माधव ने आज्ञा दी। बाद में वे अर्चाकृति में बदल गए। उनके मौन मुद्रा धारण करने के बाद उनके माहात्म्य को वहाँ देखकर उस पर्वत से उतरकर हम यहाँ पर चले आये। हे सद्गुण व्राता! हे सूत! आपने जिस रूप में बताया था उस रूप में उस पर्वत पर हमने चिह्नों को देखा है। आपने जिस भाव में बताया वे उसी भाव में है। हमें आश्चर्य है उन्हें

देखकर ही आपने बताया। या आपके भाव के अनुसार वे बदले हैं?'' इस रूप में तापसोत्तमों ने अति प्रीति से पूछने पर सूत ने इस रूप में कहा।

''हे मुनिगण! हमारे व्यास मुनि की कृपा से मेरे मन में सारे भाव और दृश्य दिखाई देते हैं। इसमें मेरा कोई बडप्पन नहीं है। बादरायण के प्रभाव से ही यह सब कुछ संभव हो पाया। इसलिए मुझे महान मत बनाइए। आप धन्यात्मा हैं। करुणा से मुझसे पूछने पर मैंने अपने चित्त के अनुसार ही आप को बताया है। यह नहीं है कि मैंने वेंकटाद्रि में देखकर ही आप को बताया है। ऐसा मन में मत सोचिए। तार, शीकर, सैकत, वितानों के बारे में हिसाब करके बता सकते हैं। किंतु वेंकटगिरींद्र नायक की लीलाओं को निश्चित रूप से गिनना शेष को भी संभव नहीं है। श्रीकर वेंकटनाथ के प्रकटित कुछ चरितों को जैसे मुझे मालूम हैं, उसी रीति में आप को बताया। हे संयमी प्रभु!''

सूत के द्वारा किया गया मंगलशासन

''इस कथा को लिखनेवाले, पढ़नेवाले, विश्वास रखते हुए सुननेवाले आयुरारोग्यों को प्राप्त करते हैं। भूतल में वे पुण्यात्मा बनते हैं। कमलाप्त, चंद्र, नक्षत्र जब तक होंगे तब तक यह कृति शुभकर होगी। तरिगोंड-हरि नरसिंह पति की कृपा से भूलोक में यह कृति सदा वृद्धि करती रहेगी। हे मुनिगण! भू वराह प्रभु को, सत्पुण्य निधि को, लक्ष्मी को और भू - नील देवी को, हरि को, शेषगिरी को, तरिगोंड श्रीनृहरि को मंगल हो।'' कहते मोद से सूत ने सद्भक्ति के साथ वेंकटाद्रि माहात्म्य को मन भरने तक सुनने की इच्छा रखनेवाले शौनकादि मुनिगण को बताया।

आश्वासांत

श्री विभ्राजिता चरित! महा विभवोन्नता! जगत्रया प्रख्याता! श्री वेंकटगिरी नायक! पावन तरिगोंड नृहरि! पाप विदारी! सरसिदल नेत्रा! सन्मुनि स्तोत्रा पात्रा! सुरवरवन चैत्रा! शोकवल्ली लवित्रा! सुरुचिर घन गात्रा! सूरि चित्ताब्ज मित्रा! दरहसित सुवक्रा! धारुणी कलत्रा!

यह श्री तरिगोंड लक्ष्मी नृसिंह करुणा कटाक्ष कलित काव्य विचित्र वशिष्ट गोत्र पवित्र कृष्णयामात्य की पुत्री वेंगमांबा प्रणीत श्री वेंकटाचल माहात्म्य नामक वराह पुराण में प्रस्तावित श्री चक्रराज की दिग्विजय यात्रा, श्री वैष्णव धर्म की प्रशंसा, विहित सत्कर्म प्रकार से यम, नियमादि योगाभ्यास क्रम, श्री वेंकटश्वर अष्टोत्तर शतनामों का प्रभाव, नैमिशारण्यवासी महामुनियों का वेंकटाद्रि पधारना, श्री वेंकटेश्वर उन मुनियों को दर्शन देकर उनसे बात करना, वे मुनि श्रीवेंकटेश्वर के दर्शन करके, उनकी आज्ञा के अनुसार फिर वापस नैमिशारण्य पहुँचना, वहाँ सूत को देखकर विनति करना, मुनियों के साथ मिलकर सूत के द्वारा श्री वेंकटेश्वर स्वामी का मंगल शासन करना आदि कथांशों का यह तृतीय आश्वास है।

* * *

चतुर्थ आश्वास

इष्ट देवता स्तुति

तरिगोंड शेषकुधराध्यक्ष

श्री नारायण के आत्म मूल श्रीवत्स का वक्षस्थल नाना स्थावर जंगमात्मक जगन्नाथ का प्रधानाश्रय है। ध्यानाध्येय अचिंत्य आपके द्वय पद धर्म स्वरूप हैं। हे सानंद हरि! तरिगोंड शेषकुधराध्यक्ष का मैं सदा भजन करती हूँ।

तरिगोंड नृसिंह

श्री रमणी मनोहर का, शेषशयन का, सर्व शत्रु संहारी वीर का, नख शिख हत राक्षस संहारी का, सहस्त्रार सरोज हंस का, हिरण्य कश्यप दैत्य कुमार पालक, दयालु तरिगोंड नृसिंह का बड़ी इच्छा से मैं भजन करती हूँ।

आदि लक्ष्मी

कलश पयोनिधि, धरती पर की फसलों का मूलाधार, जलरुहनाभ वक्ष पर विलास से विराजमान, उज्ञवल शुभ्र जल में वास करनेवाली, विद्युत लता समान हे सिरि! सदा मेरे मन में बसो। हे सिरि! मोक्ष पद पर विराजित आपका स्मरण सदा मैं मन से करती हूँ।

विलसित मौक्तिक प्रभाओं में कांतिमय, सितोत्पल मालिका समुज्वल शोभित, कनक-विद्युत कांति से चमकनेवाले शरीर से विभूषित, सललित वृत्त में विकच चंपक मालिकाओं से शोभित आदि लक्ष्मी को मोक्ष सिद्धि के लिए मैं बार-बार उपासना करती हूँ।

गुरु, विनायक, वाणी, कवींद्रादि

नित्य भास्वद्भक्ति से सर्वज्ञ सद्गुरु की, निर्वाण प्रद विनायक स्वामी की, वाणी की मैं पूजा करती हूँ। गीर्वाणांध्र कवियों का स्मरण करके, वाक्शुद्धि के लिए विद्वत पूर्वाचार्यों के पाद पंकजों की भी मैं पूजा करती हूँ।

तरिगोंड नृहरि : (संबोधन)

हे पंकज हित! शशि नेत्रा! कलंकरहिता! मोक्षदक्ष! लक्ष्मी रमणा! शंकर विधि सन्नुत पद पंकज! तरिगोंड नृहरि! पापविदारी!

कवयित्री की विनति

इस रूप में इष्टदेवताओं का स्मरण कवयित्री ने मन में ही करके उनकी सेवा की। श्री वेंकटाद्रि माहात्म्य को वराह पुराण से ग्रहण करके तीस अध्यायों को पहले के तीन आश्वासों में रचकर मैंने उस वराह स्वामी को ही समर्पित किया। तदुपरांत भविष्योत्तर पुराण से श्रीनिवास की लीलाओं को संग्रह करके धरती पर जनों को बताने तरिगोंड नृसिंह की कृपा से पद्यों के रूप में रचा है। उसका कथा-क्रम कैसा है? हे विद्वज्ज्ञन! मुझ पर दया करके उसके बारे में सुनिए।

कथाक्रम

शौनकादि के प्रश्न

श्रीकर नैमिशारण्य के शिष्ट और सद्भक्त मुनियों ने सूत से अनन्य भक्ति से परमाद्भुत वराह पुराण को सुनने के बाद सूत की ओर फिर देखते हुए पूछा - ''हे सूत! अत्यद्भुत वेंकटशैल किस युग से अत्यंत प्रशंसित रहा है, उसके बारे में बताइए।'' तब सूत ने ''जैसे आपने मुझसे

पूछा जनक के शतानंद से पूछने पर शतानंद के द्वारा जनक को बताये वेंकटशैल के पूर्वेतिहास को मैं आपको बताऊँगा। ''आगे सूत ने बताया। ''हे सुनिए मुनिवर्य! विश्वास के साथ मैं बता सकता हूँ कि महान त्रेतायुग में निर्मल शांत स्वरूप जनक मिथिला राज्य पर अत्यंत सुपालन कर रहे थे। वे अपने भाई कुश ध्वज की पुत्रियों को तथा अपनी पुत्रियों के लिए यथायोग्य वरों की खोज कर रहे थे। उन्हें चिंता थी कि इनके योग्य वर धरती पर कहाँ मिलेंगे। चारों पुत्रियों को चार नरनाथ सुत एक ही परिवार में अगर प्राप्त होंगे तो बहुत आनंद का विषय होगा। ऐसे सुतों को अपनी कन्याओं को देना आनंद का विषय है। अंदर ही अंदर इस रूप में जनक सोच रहे थे।

शतानंद मुनि का पधारना

जनक के इस रूप में सोचते समय अचानक वहाँ शतानंद महा मुनि का आगमन हुआ। वे सदा संयमी और सानंद रहनेवाले हैं। शतानंद के आगमन को देखकर जनक ने विनय के साथ अपने सिंहासन से उठकर प्रणाम करके उन्हें अर्घ्य आदि से उनकी पूजा की। जनक की पूजा से शतानंद प्रसन्न होकर उन्हें बैठने की आज्ञा दी। तब उन्होंने जनक की चिंता को भांप कर जनक से इस रूप में कहा। ''हे मानवधीश! आप सीता, मांडविकी, ऊर्मिला और श्रुत कीर्ति के विवाह के प्रयत्न कीजिए। उनके लिए योग्य पतियों को ढूँढ़िए!''

जनक और शतकानंद का संभाषण

मुनि के इस रूप में कहने से मिथिलेश जनक ने इस रूप में कहा। ''हे संयमीश्वर! मैं सवन करने के लिए धरती को जोतते समय तब अत्यद्भुत से पृथ्वी से यह सीता पैदा हुई है। वह अयोनिजा और लोक

माता है। ऐसा मुझे लगा। ऐसी पृथ्वी तनूजा का विवाह किसी मानव से करना क्या उचित है? सीता के चिह्नों को देखने से लगता है कि वह श्री रमादेवी का अंश है। ऐसी सति को हरि अंश रखनेवाले ही उचित वर हैं। हरि समान पति ही सीता के लिए चाहिए। ऐसा पति इस धरती में कहाँ है? अगर हरि के पूर्णांश से इस धरती पर कोई पैदा हुआ है तो तीनों लोकों में प्रचलित, मेरे मंदिर में रखे हुए शिव धनुष को तोड़ना चाहिए। तब उसे मैं हरि मानूँगा। ऐसी परीक्षा लेने के बाद ही मैं सीता का विवाह करना चाहूँगा। शंकर की चाप को अद्भुत ढंग से तोड़नेवाले को ही मैं सीता के साथ विवाह कराऊँगा। हे महानुभाव! ऐसा कोई इस धरती पर पैदा हुआ है क्या?'' जनक की इन बातों को सुनकर शतानंद ने इस रूप में कहा। ''हे महिपाल! सुनो! भूमिजा के लिए योग्य पुरुष श्रेष्ठ पैदा हुआ है। आप चिंता मत कीजिए। आपकी चार पुत्रियों के लिए अनुकूल और योग्य चार पुत्र इस धरती पर एक राजा को हैं। वे निश्चित रूप से आपकी कन्याओं से मोद से विवाह करने के लिए वेंकटाचल की महिमाओं का श्रवण कीजिए। उस कथा के श्रवण से आपकी सारी इच्छाओं की पूर्ति हो जायेगी। हे भूप! ब्रह्मादि सारे दिक्पाल सभी वेंकटाद्रि की महिमा को सुनकर अपने कार्यों में सफल हुए हैं। इसलिए अचंचल दीक्षा से भक्तिपूर्वक वेंकटाद्रि प्रभाव-कथा को सुननेवालों को पाप, रोग, दारिद्र्यादि दुःखों का नष्ट होकर सकल शुभ प्राप्त होंगे। वह पर्वत कृत युग में वृषभाद्रि के रूप में, त्रेतायुग में अंजनाचल के रूप में प्रसिद्ध हुआ है। द्वापर युग में शेषशैल के रूप में प्रचलित होगा। कलियुग में वेंकटगिरी के रूप में प्रसिद्ध होगा।'' मुनि की इन बातों को सुनकर जनक ने पूछा। ''उस शैल को ये सारे नाम कैसे बने हैं?'' इस रूप में नृपाल के पूछने पर शतानंद ने इस रूप में जवाब दिया।

वृषभाद्रि (कृत युग)

कृत युग में वृषभासुर नामक एक दैत्य उस पहाड़ पर बस कर वहाँ रहनेवाले मुनियों को हिंसा पहुँचा रहा था। उनकी बाधाओं के बारे में वराह स्वामी को बताने के लिए सबने उनके पास जाकर नमस्कार करके इस रूप में कहा। 'हे परमात्मा! इस शैल पर वृषभासुर नामक एक राक्षस पापात्मा बनकर हमें सता रहा है। आप शीघ्र ही उसका संहार कीजिए।' कहते हुए उनकी शरण में गए। वराह स्वामी उन्हें शरण देकर उन तापसियों का आदर करके 'हे आर्य! आप निर्भय रहिए। उस राक्षस को पकड़कर मैं उसका संहार करूँगा।' ऐसा कहते श्वेत वराह स्वामी ने उनको विदा किया। तब सारे मुनिगण भय को छोड़कर उस पहाड़ पर तप करने लगे थे।

वृषभासुर का कठोर तप

वृषभासुर ने उस पहाड़ पर स्थित तुंबुर तीर्थ में तीनों कालों में स्नान करके एकाग्र चित्त से कराल नृसिंह मंत्र का जप करते हुए नृहरि की पूजा की। तदुपरांत अपने सिर को खड्ग से काटकर हरि को समर्पित किया। स्वामी की करुणा से फिर खंडित सिर दानव के सिर पर चिपक गया। इस प्रकार उसने उसे पंच सहस्र बार किये। सिर बार-बार चिपकता गया। ऐसी पूजा से प्रसन्न होकर वराह स्वामी कराल नृसिंह के रूप में उसे प्रत्यक्ष हुए। उस स्वामी को देखकर वृषभासुर ने उन्हें नमस्कार किया। केशव, अनंत, गोविंद, श्रीनिवास आदि नामों से उनका जप किया। अनेक प्रकार की विनतियाँ भी की। तब उसे देखकर नृसिंह ने इस रूप में कहा। 'सुनो दानव! तुम्हारे तप से मैं प्रसन्न हुआ। क्या वरदान चाहिए मांग लो?! कहने से उस मानव-मृगेश्वर को देखकर वृषभासुर ने मोद से कहा। ''हे परमात्मा! मुझे ब्रह्मलोक, मोक्षादि नहीं चाहिए। एक घोर भिक्षा

मैं मांगता हूँ। आपके दशावतारों के बल के साथ आप एक ही अवतार धारण करके मेरे साथ युद्ध कीजिए, हे स्वामी!'' इस विचित्र वरदान को सुनकर, उसके अविवेक के लिए हँसते हुए विष्णु ने इस रूप में कहा। ''युद्ध करने की भिक्षा तुमने मांगी है। मैं दे दूँगा। आओ'' कहने से दानव अट्टहास करते हुए अहंकार से युद्ध के लिए ललकारने वाले राक्षस पर तैयार होकर गर्जन करते हुए हरि पर टूट पड़े।

वृषभासुर से वराह देव (नृसिंह) का युद्ध

इस प्रकार विष्णु देव और वृषभासुर दोनों आकाश में उड़कर, फिर धरती पर उतरकर सिंहों के रूप में युद्ध करने लगे। अत्यंत रोष और क्रोध के साथ एक-दूसरे से युद्ध करने लगे। गदा, कुंत, मुसल, मुद्गर, शूल, खिंडी आदि विविध आयुधों को एक दूसरे पर फेंकते दोनों ने घमासान युद्ध किया। उनके इस भीकर युद्ध से धरती कांपने लगी। दौड़ते, गिरते-उठते, थकते, बिजलियाँ गिराते, अट्टहास करते, हाहाकार करते, एक-दूसरे को ढकेलते, एक-दूसरे का परिहास करते, नखों से एक -दूसरे को घायल करते, चीखते-चिल्लाते लोक भीकर रूप में युद्ध करते रहे। अनेक गंड शूलों को एक दूसरे पर फेंका। गंड शूलों से धरती भर गयी। गंड शूलों के गिरने से बड़े-बड़े पत्थर भी टूट कर नष्ट हो गए। पहाड़ों पर दोनों उत्साह से उड़ते, लांघते युद्ध करने लगे। इस रूप में काफी समय तक उन दोनों ने युद्ध किया। अवसान के समय जैसे दीप अधिक प्रज्वलित होता है उसी रूप में वृषभासुर अति बल से प्रचंड होकर नृसिंह को अतिशय ढंग से निगलने के लिए तैयार हो गया। आकाश में देवतागण नरहरि की विजय की कामना कर रहे थे। तब वे महापुरुष उत्साह के साथ अपने शरीर को बढ़ा कर हांफते तुरंत गरुड वाहन पर चढ़कर अपने सहस्र करों में सहस्र आयुध धारण करके राक्षस

पर गिरकर उसे पकड़ने की कोशिश की। तब राक्षस ने उनकी पकड़ में न आकर यहाँ-वहाँ भागते, अखंडादि, निर्जर, भ्रांतिमान अपने मायाजाल से खग वाहन पर बैठ कर, सहस्र भुज और सहस्र आयुध धारण करके, कृत्रिम विष्णु बनाकर उसे नारसिंह पर छोड़ा। तब माया विष्णु और नरसिंह के बीच में युद्ध हुआ। तुरंत नारसिंह ने कृत्रिम विष्णु रूप को पहचान लिया। उसे राक्षस माया समझ कर अपनी माया शक्ति को बढ़ाया। राक्षस निर्मित माया विष्णु को चक्री ने अदृश्य कर दिया। फिर हँसते हुए इस रूप में कहा। ''हे चपल राक्षस! तुझे स्वयं सृजन करके युद्ध करने की जरूरत से तुझ से युद्ध किया। मुझसे युद्ध करने में तुम्हारा बल ही क्या है? मुझे लेकर जप करने के कारण तुझ पर दया करके अब तक नहीं मारा। अब मैं सहन नहीं कर सकता। क्योंकि तुमने माया विष्णु को सृजन करके मुझ पर छोड़ा। उसके बारे में मुझे पता चल गया। तुम अब कहाँ छिपोगे? देखो! मेरे साहस को देखो। सकल शत्रु भीकर मेरे चक्र की अग्नि में तुम्हारा शीर्ष कटकर जल जायेगा। ऐसा नहीं करूँगा तो मैं धरती पर नारसिंह नहीं कहलाऊँगा।''

वृषभासुर द्वारा स्वामी की स्तुति करना

कहते प्रतिज्ञा करके चक्र को धारण करनेवाले नारसिंह को देखकर वृषभासुर ने परिशुद्ध होकर भक्ति से नारसिंह के पाद युगल पर गिर कर शरणागति ली। आगे इस रूप में कहा। ''हे देव! आपके चक्र के प्रभाव के बारे में बताना ब्रह्मादि देवताओं के लिए भी संभव नहीं है। कीर्तिमान अंबरीषादि प्रमुखों को इसी चक्र ने विजय प्रदान की। उससे अलग माना जाता है कि आपके चक्र से मरने से पुनर्जन्म नहीं होता है। इसलिए ऐसे शक्तिवान चक्र से कट कर मुक्ति को प्राप्त करूँगा। कृपया इस पर्वत को मेरा नाम रख दीजिए।'' यह सुनकर स्वामी प्रसन्न होकर उसकी प्रशंसा

करते हुए उसे आलिंगन बद्ध किया। उसे मोक्ष भी प्रदान किया। यह वर भी दिया कि कृत युग में यह पर्वत वृषाभाद्रि के रूप में प्रचलित होगा। तब उस स्वामी के सिर पर देवताओं ने आकाश से फूलों की वर्षा की। देवतागण उन्हें नमन करके अपने निजी स्थल लौट गए। तदुपरांत राक्षस के भय से गुफा में रहनेवाले मुनिगण बाहर आकर श्रीहरि की स्तुति करने पर ''आप अब निर्भय होकर यहाँ पर रह सकते हैं।'' ऐसी आज्ञा देकर वराह स्वामी अदृश्य हो गए। वे भूदेवी समेत इच्छा विहार करने लगे। ऐसा बतानेवाले शतानंद को देखकर जनक ने इस रूप में कहा।

अंजनाचल (त्रेता युग)

''हे मुनिनाथ! वृषभाद्रि पर्वत को अंजनाद्रि नाम कैसे पड़ा?'' कहने पर शतानंद ने इस रूप में कहा। ''केसरी नामक एक वानर की पत्नी को संतान नहीं थी। उसने मतंग ऋषि के पास जाकर नमस्कार करके कहा। 'हे मुनिवर्य! पुत्रहीन को पुण्यगति प्राप्त नहीं होती है, ऐसा वेद पुरुषों ने कहा है। इसलिए मुझे पुत्र संतान चाहिए। उसके लिए मैं तप करना चाहती हूँ। आप आज्ञा दीजिए।' ऐसी प्रार्थना करने पर अंजना देवी से उस मुनि ने इस रूप में कहा। 'हे देवी! यहाँ से पंपा नदी के पूरब में जाने से पचास योजनाओं की दूरी पर नृसिंह आश्रम नाम से एक स्थल है। उसके पश्चिम भाग में प्रकाशवान नारायणाद्रि प्रदेश में परम पवित्र स्वामी की पुष्करिणी के उत्तर में एक क्रोस दूरी पर आकाश गंगा नामक एक प्रवाह है। तुम वहाँ जाकर त्रिकालों में स्नान करते हुए द्वादशाब्धों तक तप करो। तब तुम्हें पुत्र संतान होगी।' उसे 'महाप्रसाद' कहते अंजना देवी मुनि को नमस्कार करके उनकी आज्ञा लेकर नारायणाद्रि पहुँच गयी। वहाँ स्वामी पुष्करिणी में स्नान करके उसके तट पर रहनेवाले वृक्षों की परिक्रमा करके, वराह स्वामी के दर्शन करके उनकी पूजा करके वहाँ से

आकाश गंगा पहुँच गयी। वहाँ रहनेवाले मुनियों को नमस्कार करके उनसे अनुमति प्राप्त करके आकाश गंगा में त्रिकालों में स्नान करते हुए निराहारी होकर अंजना देवी ने एक वर्ष तप किया। तब वायु देव प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष हुए। प्रत्येक दिन वे एक फल अंजना देवी को देते रहे। उन फलों को खाते अंजनादेवी ने द्वादश वर्षो तक तप किया। तब एक दिन पवन देव ने सद्वीर्य एक मधुर फल अंजना देवी को दिया। अंजना देवी ने उस फल को खाकर गर्भ धारण किया। एक दिन संयमींद्र मुनि को स्वप्न में दिखाई दिया कि पवन देव ने अंजनी देवी के गर्भ में प्रवेश किया है। तब उनका संशय दूर हो गया।

हनुमान का जन्म

दस महीने बीत गए। तब धरती पर अंजनादेवी के गर्भ से एक महान पुत्र का जन्म हुआ। यह देखकर देवतागण ने संतोष के साथ फूलों की वर्षा की। घन वज्रांग, दीर्घ वाल, लसत्कांति, बल-स्थैर्य के साथ बालक को देखकर मुनियों ने 'धरती पर यह आंजनेय महा मुख्य होंगे।' ऐसा आशीर्वाद दिया। साथ ही मारुतात्मा पर आसक्त होते सब मिलकर अत्यंत उत्साह और आह्लाद से उन्हें हनुमान नामकरण किया।

त्रेता युग में अंजना देवी ने इस रूप में तप करके पुत्रवती होने के निमित्त इस पर्वत का नाम अंजनाद्रि के रूप में प्रसिद्ध हुआ।

शेषशैल (द्वापर युग)

उरगपति शेष और वायु देव के बीच की होड़ में शेष हार गया। उस शेष ने कनकगिरि पुत्र वेंकटेश के साथ द्वापर युग में धरती पर शैल के रूप को प्राप्त किया। इसलिए इसका नाम शेषाद्रि पड़ गया। यह सुन कर जनक ने इस रूप में कहा। 'शेष क्यों पवन के साथ लड़े? मेरी जानकारी

के लिए बताइए।' कहने पर शतानंद ने इस रूप में कहा। हरि को देखने एक दिन वायु देव वैकुंठ गए।

शेष मारुत संवाद

हरिवास मंदिर के द्वार पर रखवाली करनेवाले शेष ने पवन को देखकर इस रूप में कहा। 'हे वातुल! तुम अंदर मत जाओ। यहीं पर रुक जाओ।' ऐसा निष्ठुर रूप से कहने पर पवन ने इस रूप में कहा। 'मैं कमलाक्ष को देखने जा रहा हूँ। ऐसे मुझे रोक रहे हो। तुम कैसे मुझसे बड़े हो। मैं तुमसे किसमें छोटा हूँ। रमापति को मुझे इसी समय देखना है। मेरे रास्ते में मत आओ।' कहते अंदर घुस जाने की कोशिश की। ऐसे पवन को देखकर शेष फुफकारते हुए उठकर आंखें लाल करके शेष ने उसे गला पकड़कर बाहर ढकेल दिया। अपने को गला पकड़ कर बाहर निकालने से पवन को बहुत रोष हुआ। पवन ने तब अपनी शक्ति को बढ़ाते अट्टाहास करते हुए शेष को देखकर इस रूप में कहा। 'मुझे गला पकड़कर निकाल दिया तुमने हे नाग कुलाधम! अगर मैं ढकेल दूँगा तो तुम को ठिकाना नहीं होगा। छी! यहाँ से चले जाओ!' तब शेष ने इस रूप में कहा। 'हे पवन! सुनो। अंतःपुर के लिए तुम नये हो। मैं पहले जाकर चक्री से तुम्हारे आगमन के बारे में बताऊँगा। अगर दया से विष्णु तुमको अंदर बुलायेंगे तो तुम्हें अंदर ले जाऊँगा।। इससे पहले तुम्हें आगे जाने नहीं दूँगा।' यह सुनकर पवन ने कहा। 'अंतःपुर में हमेशा मार्जाल रहता है। हाथी हमेशा बाहर ही रहता है। इसलिए क्या हाथी तुच्छ है? दूध पीनेवाली बिल्ली मंदिर में ही रहती है। इतने मात्र से बिल्ली क्या हाथी से बड़ी हो जाएगी? अब तुमने मुझे अंदर जाने नहीं दिया। मैं वहाँ अब नहीं आऊँगा। तुम वहाँ रहो। मैं यहाँ रहूँगा। कोई झगड़ा नहीं है। जाओ! हे भुजंगाधम! तुम मत फूलो।! कहते इस रूप में शेष का अपमान

करनेवाले पवन को देखकर शेष ने इस रूप में कहा। 'हे मारुत! सदा मेरे आहार बननेवाले तुम गर्व करते रहते हो। मेरे सामने तुम्हारा उत्कर्ष नहीं चलेगा।' सुनकर पवन ने गुस्सा करते हुए इस रूप में कहा।' हे शेष! गर्व से दुर्भाष्य कर रहे हो। अनावश्यक रूप से मुझे गुस्सैल कर रहे हो। तुम्हारा किस विषय में विशेष महत्व है? फिर भी सुनो। मेरे बल के सामने तुम्हारा बल हाथी-चींटी के समान है। वह ऐसा है कि मैं सर्व जीवांतर्यामी के रूप में रहता हूँ। मैं जगत का आधार बनकर रहता हूँ। इसलिए मैं तुमसे बड़ा हूँ।' यह सुनकर शेष ने कहा। 'हे प्रभंजन! सुनो। मैं सारे प्राणियों के होनेवाले विपुल धरती को अपने सिर पर ढोता हूँ। बहुविध ब्रह्मांड भांडोदर विष्णु को मैं अपने पर रखता हूँ। इसलिए मैं ही तुमसे बड़ा हूँ। मुझे तुच्छ के रूप में मत देखो। यहाँ से चले जाओ।' सुनकर क्रोधित पवन ने इस रूप में कहा। 'हे पन्नगेंद्र! मैं तुम्हारे अंदर हूँ। इसलिए तुम शक्तिमान बने हो। अगर मैं अंदर नहीं रहता हूँ तो तुम्हारे बल का क्या होगा? मैं ही मूल तत्व हूँ। तुम मुझसे तुच्छ हो।' इस रूप में पवन का कहना सुनकर पन्नगेंद्र ने इस रूप में कहा। 'हे वातुल! सुनो। व्यर्थ ही क्यों बातों से लड़ेंगे। इससे अच्छा है कि हम दोनों एक दूसरे के सामने खड़े होकर एक दूसरे से कुश्ती करेंगे। तब सबको मालूम हो जाएगा कि कौन बलवान है। आओ।' इस रूप में खगेंद्र को ललकारने लगा। तब इस कोलाहल को सुनकर विष्णु बाहर चले आये। तब शेष और पवन दोनों ने चक्री को देखकर श्रद्धा से नमस्कार किया। दोनों ने अपने झगड़े के बारे में हरि को बताया। 'हे देव! हम दोनों एक दूसरे से लड़ना चाहते हैं। आप आशीर्वाद देकर आज्ञा दीजिए।' पवन और शेष की इन बातों को सुनकर विनोद करने के लिए विष्णु उनको शांत किए बिना उन दोनों के इस रूप में व्यवहार करने के मूल कारण को जानकर, इससे जगत को होनेवाले हित के बारे में जान कर उनके रोषावेश को और बढ़ाया।

श्री हरि के द्वारा निर्धारित बल की परीक्षा

रमेश ने तब कार्यार्थी बनकर हंसते हुए पवन और शेष को देखकर इस रूप में कहा। 'सुनो। तुम दोनों बड़े वीर हो। इसलिए एक दूसरे पर विजय प्राप्त नहीं कर सकते। इसलिए अगर तुम दोनों बिना किसी बाजी के लड़ने से वह लोक हित में नहीं होगा। इसलिए मैं आपको एक उपाय बताता हूँ। वह ऐसा है कि हे शेष! कनक पहाड़ के रूप में स्थित वर वेंकटाद्रि को चारों ओर से तुम लपेट लो। उसे दबाकर अपने कब्जे में रखो। तब हे पवन! तुम अपनी शक्ति से उसे उड़ा देने की कोशिश करो। अगर पवन उसे उड़ा देगा तो पवन शेष से बलवान समझा जाएगा। पवन से यह भी कहा-हे पवन! तुम वर वेंकटाद्रि गिरी को पकड़कर ऊपर उठाकर उड़ा दोगे तो तुम बलवान समझे जाओगे। तब तुम ही बड़े साबित हो जाओगे।' विष्णु की इस आज्ञा को शेष और पवन दोनों ने सुना। उसे 'महाप्रसाद' समझकर दोनों चक्री को नमस्कार करके वेंकटाद्रि पर पहुँच गए। तब पन्नगेंद्र ने वेंकटाद्रि को चारों तरफ से घेर कर अपने सहस्र फणों से उसे दबाकर रखा। तब पवन अपनी निज शक्ति को बढ़ाकर उस गिरी पर तीव्र गति से बहने लगा। इस रूप में दोनों अपनी-अपनी शक्ति के बल पर कभी छोड़ते, कभी पकड़ते, गिरि को यथास्थान पर रखने की कोशिश करते रहे। दोनों के इस संघर्ष से धरती समेत पूरा ब्रह्मांड कांपने लगा। ब्रह्मादि भयकंपित हो गए। तब ब्रह्मादि सबने मिलकर पवन के पास आकर बहुत चिंता करते हुए प्रार्थना की कि अपने प्रभंजन को रोको।

ब्रह्मादि की विनति

''हे वायु देव! आप उत्पात पहुँचाने के रूप में बहने का यह सही समय नहीं है। कल्पांतर समय में ही ऐसा करना चाहिए। अब ऐसा नहीं

करना चाहिए। तुम रुको।'' इस रूप में प्रार्थना करने पर पवन अपने रोष को छोड़ने के बिना फिर बार-बार प्रभंजन के रूप में बहने लगा। तब पवन के रोष भाव को समझकर ब्रह्म इंद्रादि शीघ्र ही शेष के पास पहुँच गए। शेष से उन्होंने विनति की। ''हे भासुरात्मा! तुम्हारा बल बहुत बड़ा है। तुम्हारे बल के बारे में नीरजाक्ष और गौरी मनोहर को अच्छी तरह मालूम है। हम भी जानते हैं। तुम्हारे प्रभाव के बारे में बताना किसी को संभव है?'' कहते बहुविध उन्होंने प्रार्थना की। किंतु शेष ने भी जिद नहीं छोड़ी। शेष के स्वभाव को देखकर ब्रह्म इंद्रादि ने इस रूप में कहा।

'हे भुजगाधिपा! हमारी बातों को सुनो। बड़े रोष से तुम हेमगिरि पुत्र को बल के साथ दबाकर रखने से पवन तुमको हिला नहीं सकता है। हे महात्मा! पवन तुमसे बड़ा नहीं है। वैसे ही तुम भी पवन से बड़े नहीं हो। तुम दोनों के कारण जगत नष्ट हो रहा है। इसलिए तुम अपने रोष को दबाकर जनों की रक्षा करो। हे शेष! अनुज को मूर्ख समझ कर उन्हें छोड़ते हुए सात्विक मूर्ति बनकर तुम विष्णु पद के आश्रय में जाकर परिशुद्ध बन गए हो। अब तुमको क्रोध क्यों है? अपने निज शुद्ध बल से तुम इस पर्वत को अपने फण फैलाकर हमारे लिए पवन को जीतने देना अच्छा है।' कहते अनेक प्रकार से ब्रह्म इंद्रादि की प्रार्थना करने पर शेष करुणार्थ चित्त बनकर लोक रक्षणार्थ अपना एक फण ऊपर उठाया। तब उत्साह से पवन ने फूल कर शीघ्र उस फण में प्रवेश करके अपने निज बल से बहना शुरु कर दिया। अपने एक अंगुष्ट से उस पर्वत में घुसाकर ऊपर उठाकर उड़ा दिया। तब वेंकटाद्रि पतंग की तरह उड़कर गंगा नदी के दक्षिण में द्विशत योजन दूरी पर, पूरब में सागर से पाँच योजन की दूरी पर सुवर्णमुखी नदी के उत्तर तट से अर्ध क्रोश दूरी पर पुण्य वन प्रदेश में अपने से लिपटे शेष समेत जा गिरा। इस प्रकार

शेष को हरा दिया समझकर संतोष के साथ पवन ने अपने बल को वापस लिया। जग सारे मुक्त हो गए। तब अपनी हार से चिंता करनेवाले शेष के पास ब्रह्म, इंद्रादि ने पहुँच कर उनका आदर किया। तब ब्रह्म ने इस रूप में कहा।

ब्रह्म के द्वारा शेष को अभय प्रदान करना

''हे शेष! सुनो। पवन से हार गया, ऐसा सोचकर चिंता मत करो। वेंकटगिरि को अपना बनाकर तुम धरती पर रहो। चक्रपाणी तुम पर वास करके पालन करेगा।'' यह सुनकर शेष ने बहुत विनय के साथ इस रूप में कहा। ''मैं पवन से झगड़ा करके हार जाना मेरी गलती है। मेरा गर्व चकना चूर हो गया। मेरे कर्म के अनुसार ही यह हुआ है। अब किस रूप में श्रीधर मुझ पर वास करेंगे?' 'कहते शेष की आंखों में आँसू आ गए। उसकी स्थिति को देखते हुए दया से ब्रह्म ने कहा। ''हे फणीश्वर! सनो। तुझ पर वनजाक्ष आकर बसने के कारण और अवसर की खोज मैं करूँगा। तुम अपने मन से चिंता को निकाल दो। हरि तुम पर अब नहीं बसेंगे, ऐसा विचार तुम्हारे मन में क्यों आया? आगे चक्रधर यहाँ पर आने के प्रयत्न मैं करूँगा। तुम यहाँ पर गिरि के रूप में रहो। हार जाने की चिंता को छोड़ दो। पंकजाक्ष को मन में स्मरण करते हुए हे नागाधिपा! सुखी रहो। हरि को यहाँ पर लाने को मैं वचनबद्ध हो गया हूँ।'' कहते ब्रह्म ने शेष के सिर पर सहलाते हुए करुणा से शांत करने का प्रयास किया।

शेषाद्रि का परिमाण और प्रभाव

शेष को इस रूप में अभय देकर उसे विदा करके इंद्रादि देवतागण अपने-अपने स्थलों पर लौट गए। ब्रह्म अपने सत्य लोक पहुँच गए। तब

शेष ने वैकुंठपति को साष्टांग दंड प्रणाम करके पर्वताकार को प्राप्त किया। उस पर्वत के परिमाण के बारे में बताना है तो दस योजन विस्तीर्ण में वह पर्वत फैला हुआ है। तीस योजनाओं की लंबाई है। शेष के आकार में रहनेवाले इस वृहद पर्वत को सिरोभाग वेंकटाद्रि, मध्य प्रदेश अहोबिल, पूँछ भाग श्रीशैल है। ऐसे पर्वत पर सर्व क्षेत्र, सर्व तीर्थ, सकल फल-पुष्पों के पौधे और लताओं से शोभित है। उस पर नाना धातुओं के होने से विचित्र रूप से वह प्रकाशवान है। उस पर्वत पर देवताओं के बृंद वृक्षों के बृंद के रूप में, ऋषि समूह मृग समूह के रूप में, पितृ गण खग समूहों के रूप में, यक्ष-किन्नेरादि पाषाण समूह के रूप में उस पुण्य पर्वत पर आश्रित थे। शेष को वरदान देकर लौटे ब्रह्म ने वराह स्वामी से 'शेषाद्रि पर बसे रहिए।' प्रार्थना करने पर, उस देव ने गरुड़ के द्वारा वैकुंठ में रहनेवाले क्रीड़ाचल को शेषाद्रि पर स्थापित करवाया। स्वयं स्वामी शेषाद्रि पर रहने लगे। इस स्वामी के पूर्व भाग में पवित्र पुष्करिणी गंगादि पुण्य तीर्थों का जन्म स्थान बन गया। वहाँ पर मकर, मत्स्य, कच्चप आदि जलचरों का वास बन कर, कमल, कुमुद आदि पुष्पों से सुशोभित सरस्वती सरोवर के रूप में प्रचलित हो गया। उस पुष्करिणी में स्नान करनेवाले जन पापरहित होंगे। इससे बढ़कर धनुर्मास में शुद्ध द्वादशी के दिन अरुणोदय से लेकर छः घड़ियों तक गंगा आदि पुण्य नदी इस पुष्करिणी में मौजूद रहती है। ऐसे पुण्य काल में उस तीर्थ में श्रद्धापूर्वक स्नान करनेवाले मोक्ष पाने के योग्य बनते हैं। इससे अलग उस तीर्थ के तट पर श्राद्ध करनेवाले लोगों के पितृ देवतागण अमृत पान करने की तृप्ति प्राप्त करते हैं। वे स्वर्ग में नाचते रहते हैं। इससे अलग नारायण नामक एक ब्राह्मण ने इस पुष्करिणी में स्नान करके हरि के दिव्य धाम को प्राप्त किया था। यह शेषाद्रि का प्रभाव है। अब वेंकटाद्रि के प्रभाव के बारे में इस रूप में बता सकते हैं।

वेंकटाचल (कलियुग)

1. माधव का वृत्तांत

''सुनो! श्री कालहस्ति में पुरंदर सोमयाजी का पुत्र माधव नामक एक युवक रहा करता था। अपने कर्म के अनुसार एक दिन अपनी पत्नी चंद्र रेखा को दिन में रति करने के लिए बुलाने से वह भयभीत होकर 'बड़े लोग घर में रहते दिन में यह किस रीति में होगा।' कहते बहु विध बताकर उसके वश में नहीं आयी। माधव इस को सहन नहीं करके पुनः प्रार्थना करने पर पति की आज्ञा से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, जानते हुए भी पति की ओर दया से देखकर चंद्ररेखा ने इस रूप में कहा। ''देवतार्चन अग्निहोत्रादि, सत्क्रियाओं का आचरण करने के समय में रति क्रीड़ा करना उचित नहीं है।'' कहते अनेक प्रकार से कहने पर भी, अनसुना करके पति उस पर अत्याचार करने के लिए तैयार हो गया। तब सति ने पति से ''आप तुलसी-पुष्पादि संग्रहण हेतु नदी के तट पर वन में रहो, मैं वहाँ जल लेने के बहाने कलश लेकर आऊँगी। वहाँ पर आपके संकल्प की पूर्ति होगी।'' कहते अपनी सम्मति दी। तब पति माधव सुवर्णमुखी नदी के तट पर रहनेवाले वन पहुँच गया। उसके पहले ही वहाँ पर पहुँच कर स्वर्ण भूषण श्वेतांबर अलंकृत होकर, एक पैर मोड़ कर, पैर के अंगूठे को जमीन पर गाढ़ कर, फिर उठाते, घुटनों पर चुबुक को रखकर, दीर्घ नील कुंतल के चमकते, वहाँ बैठी पद्मिनी जाति की चंडाल स्त्री को देखकर उस पर वह विप्र मोहित हो गया। उस समय अपनी पत्नी के वहाँ पर आने से 'तुम्हारे गुण की परीक्षा के लिए ही दिन में रति क्रीड़ा करने तुझे यहाँ बुलाया है। दिवाक्रीड़ा मुझे भी पसंद नहीं है', कहते पत्नी को वापस भेज दिया। पत्नी के जाने के बाद वह अपने पास आते देखकर चंडाल स्त्री उसे नमस्कार करते उससे दूर-दूर जाती रही। किंतु विप्र उसका पीछा करता रहा। आखिर विप्र को देखकर भय से उस स्त्री ने कहा। ''हे धरणी सुरेंद्र! मेरे पास इस रूप में आना नीतियुक्त नहीं है। कौन समझकर मेरे पास आ रहे हो? मैं चंडालिन हूँ।'' कहने पर दया से उस विप्र ने इस रूप में कहा। ''तुम्हारा नाम क्या है? बताओ री।'' सुनकर उस स्त्री ने उसे देखकर ''मुझे कुंतल नाम से पुकारते हैं। इस रूप में पूछते मेरे पास पहुँचना ठीक नहीं है। दूर चले जाओ। तुम मेरे पास मत आओ। मैं नीच जाति की हूँ।'' कहते जानेवाली उसे छोड़कर जाने में असमर्थ माधव बार-बार उसका पीछा करता रहा। फिर भ्रांति में उस विप्र ने इस रूप में कहा। ''हे भामा! तुझ जैसी कन्या को ब्रह्म देव ने नीच जाति में पैदा करके जंगल में खिली चांदनी की तरह गलत किया है। री मैं ब्रह्म की क्या निंदा करुँ। सागर में उपलब्ध रत्नों को सिर पर पहननेवाले राजाओं की तरह तुझे मैं वरण करूँगा।' कहते भय छोड़कर विप्र ने विवरण दिया।

2. कुंतला का माधव से वाद करना

विप्र की बातें सुनकर कुंतला ने भीति से, विवेक से विप्र की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''जार कांता से और महाविष सर्प से कोई बचा है क्या? तुम पर विश्वास करनेवाली पत्नी को छोड़कर मुझे पाने से तुम्हारे इह और पर लोक बिगड़ जायेंगे। हे ब्राह्मणोत्तम! धीरज से काम लो। हे महात्मा! स्त्री पुरुष जाति द्वय को पैदा करके, उनकी चार जातियों का निश्चय करके, पुरुष अपनी जाति की स्त्री से पाणीग्रहण करके, अपनी पत्नी से संतान को प्राप्त करके, परस्त्री के साथ संबंध की अपेक्षा नहीं करते हुए आचरण करना चाहिए, ऐसा धर्म शास्त्र कह रहा है। तुम ऐसे धर्म के बारे में जानते हुए भी चंडाल स्त्री के संभोग को चाहना क्या ठीक है? ब्राह्मण होते जन्म से गर्भदान तक के सोलह कर्मों का आचरण करने

की योग्यता रखते हुए, मुझ जैसे चंडाल का स्पर्श करना उचित नहीं है। क्योंकि तुम्हारा देह वेदात्मक है। तुम्हारे श्रोत्रा, नेत्र, नासपुट, जिह्वा, पाणी, पाद पुण्य कथा श्रवण, भगवद्दर्शन, हरिपादर्पित तुलसी पुष्प घ्राण, वेदाध्ययन, दान, तीर्थ यात्रादि सत्क्रियाओं से पवित्र बने हैं। आपके श्रोत्र प्रमुखेंद्रीय दुष्कथा श्रवणादि दुष्क्रियाओं से अपवित्र हो जायेंगे। इसलिए तुम मेरे देह के साथ समागम को मत चाहो।'' कहते कोयल की बोली में कुंतला ने धर्म-शास्त्र-विवेक प्रकार से उसे समझाया। ऐसी कुंतला को देखते हुए विह्वल होकर विप्र उसे पकड़ने की कोशिश करने पर वह भीति से रोने लगी। तब उसने दिग्देवताओं की ओर देखकर 'यह ब्राह्मण पाप जाति वाली मुझे पाकर कुलहीन होकर नरक में जाने के लिए उद्युक्त हो रहा है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। आप सब ही इसके साक्षी हैं।' कहते दूर जानेवाली उसके पास जाकर विप्र ने इस रूप में कहा।

''हे भामा! बिना डर के सुनो। मेरा तप आज सफल हो गया। इसलिए तुमको मैं देख सका। इसलिए मुझे क्षमा करके मुझे काम-सुख दो।'' कहने से भीति से उसने कहा। ''अकट! हे ब्राह्मणोत्तम! काम सुख की चाहत से अनावश्यक तुम क्यों संकट में पड़ते हो? अपने गृह शीघ्र जाकर स्वकीय पत्नी से काम सुख को प्राप्त करो। मुझे पकड़ने से दोष होगा। क्यों मुझे चाहने लगे हो? तुमको अपभ्रम हो गया है। चंडाल स्त्री के साथ संभोग हे पंडित! तुम्हारे लिए कैसे उचित है? ब्राह्मण कुल को क्यों कलंकित कर रहे हो? दूर ही रहो। अहो विप्र! मुझे पकड़ने की कोशिश मत करो।'' कहते वह पीछे जाने लगी। यह देखकर विप्र अपने कुल को भूलकर कामांध के बढ़ने से उस के समीप जाने लगा।

तब उस कुंतला ने उसे देखकर 'तुम्हारे जननी-जनक गुरु-देव समान हूँ। मेरे पास मत आओ।' कहने से भी उसने उसे अनसुना करके उसे पकड़ कर पा लिया। तब कुंतला ने उसे देखकर ''हे विप्र! तुम अब कुल भ्रष्ट हो गये हो। अब तुम यज्ञोपरीत का परित्याग करो। चंडाल बनकर मेरे साथ रहो।'' कहने पर वह इसके लिए राजी होकर उसने कृष्णा नदी के तट पर रहते हुए द्वादशाब्धों तक कुंतला के साथ काम भोग प्राप्त किया। बाद में कुंतला का देहांत हो गया। तब माधव दुःखी होकर अकेला घूमता रहा। उसने मन में इस रूप में सोचा।

3. माधव का पश्चाताप

'गुरुतर ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर काम वासना से चंडालिन के साथ रहकर मैंने घोर पाप किया। अब पतित पावन श्रीहरि ही मेरी रक्षा कर सकते हैं।' इस रूप में पश्चाताप करते समय, कुछ भक्त राजागण वेंकटाद्रि की यात्रा पर जा रहे थे। उनके साथ वह भी गया। उनके भोजन करने के बाद बचा-कुचा जूठन को खाकर देहाभिमान और दंभ को छोड़कर कपिल तीर्थ पहुँच गया। शेषाचल से गिरनेवाले झरने को देखकर उसे नमस्कार किया। वहाँ जब राजाओं के द्वारा केश खंडन करते समय स्वयं भी केश खंडन करवा लिया। उनके द्वारा पिंड प्रदान करते समय उसने भी मिट्टी से पिंड प्रदान किया। उसके इस पिंड दान से उसके पितृ देवतागण तृप्त हुए। इसे सुनकर जनक ने शतानंद से इस रूप में कहा। ''चंडाल कन्या से रहकर कुलहीन बनकर चुप रहने की जगह इस रूप में उसके पिंड दान करने से उसके पितृ देवतागण ने कैसे पिंड दान स्वीकार किया?'' जवाब में शतानंद ने इस रूप में कहा। ''हे जनक! कपिल तीर्थ में पहले स्नान करने के पुण्य से उन्होंने पिंड दान को स्वीकार किया है।''

4. वेंकटाचल की महामहिमा

उसका पुण्य ऐसा रहा। इससे अलग एक और महिमा के बारे में बताऊँगा। वह अगले दिन वेंकटगिरि पर्वत पर चढ़ गया। उस पर्वत के स्पर्श मात्र से उस ब्राह्मण के सारे पाप शिथिल होकर कांपते हुए उसके अंदर न रह पाकर उलटी हो गए। तब उस घोर अरण्य में वेंकटाद्रि के प्रभाग से अग्नि बनकर जलते समय गगन दिग्भागों में लपटें और धुआँ छा गया। तब ब्रह्म, वामदेवादि ने स्वर्ग से पधार कर आश्चर्य से इसे देखा।

5. ब्रह्म के द्वारा माधव को वरदान प्रदान करना

तब वेंकटाचल की महामहिमा से दावाग्नि पैदा होकर उसने विप्र के पापों को जला डाला। इसे माधव की महिमा समझकर उसके शीर्ष पर फूलों की वर्षा करवायी। ब्रह्म ने धरती पर उतर कर हंसते हुए माधव को देखकर उसे आशीर्वाद दिया। तब माधव ने अपने को कृतार्थ समझकर ब्रह्म की स्तुति की। भय से मुक्त होकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। माधव ने देवताओं से इस रूप में कहा। 'हे देव! विवेक को छोड़कर उस समय मैंने पाप किए। अति नीच बना। अब मेरी गति कैसे होगी। कृपया बताइए।' आर्ति बनकर उसके इस रूप में पूछने पर ब्रह्म ने कहा। 'हे विप्र! अब तुम्हारे सारे पाप भस्म हो गए। अब संशय मत करो। वेंकटाद्रि पर अति शीघ्र जाओ। वहाँ स्वामी की पुष्करिणी में स्नान करके भूवराह स्वामी की पूजा करो। उन्हें नमस्कार करो। तब तुम इस शरीर को त्याग करो। तदुपरांत धरती पर धन्य पांडव दौहित्रवंशज सुवीर के पुत्र के रूप में पैदा हो जाओगे। तब उस सुधर्म के आत्म बंधु बनकर धरती पर नारायणपुर में रहते हुए हरि भक्ति से निर्मल चित्त से अच्छे कार्य करते रहो। तोंड मंडल देश का धर्म मार्ग से पालन करो। तब रमेश श्रीवेंकटेश्वर तुम्हारी पुत्रिका से प्रेम से विवाह करेंगे। धरती पर लक्ष्मी के अंश से एक

सुंदर पुत्री तुमको होगी। प्रीति से उस पुत्रिका का विवाह श्रीहरि के साथ करो। तदुपरांत मोद से वैकुंठपुरि पहुँच जाओ।' ब्रह्म ने माधव से इस रूप में कहा।

6. वेंकट नाम की परिभाषा और पुण्य फल

माधव को ब्रह्म देव ने इस रूप में वरदान देकर उसे विदा किया। संतोष के साथ उस पर्वत को वेंकटाचल सार्थक नाम दिया। तदुपरांत ब्रह्म, रुद्रादि देवतागण अपने निजी स्थानों पर लौट गए।' कहते सुनकर जनक ने 'वेंकटाक्षरत्रय का अर्थ बताइए' शतानंद से पूछा। तब शतानंद ने इस रूप में कहा। 'सुनो। 'वे' नामक पाप के ईंधन को 'कट' युगलक्षराग्नि ने मुख्य रूप से भस्म किया। इसलिए हे अवनी नाथ! वेंकटगिरि नाम इस गिरि के लिए सार्थक हो गया। इसलिए प्रातःकाल ही उठकर वेंकटाद्रि का स्मरण करने वाले धीर को अवनि में क्रम से सौ गंगा स्नान, हजार सेतु यात्रा करने का पुण्य फल प्राप्त होगा। अवनि में उन्हें सुख-संतोष प्राप्त होंगे। इस कथा को मेरे गुरु गौतम महर्षि ने मुझे जिस रीति से बताया उसी रीति में मैंने आपको बताया। इसे सुननेवालों को शुभ प्राप्त होंगे।'

जनक के द्वारा वेंकटाद्रि के दर्शन करना

'धरती पर इह और पर सुखों को चाहनेवाले अवश्य ही इस कथा को सुनना चाहिए।' शतानंद मुनि के इस रूप में कहने से जनक उस वेंकटाद्रि की यात्रा करने का निर्णय करके अपने हित मंत्रीगण और शतानंद को साथ लेकर वेंकटाद्रि पर आये। स्वामी पुष्करिणी में स्नान करके भू वराह स्वामी के दर्शन किए। बाद में श्रीनिवास के दर्शन किए। वहीं पर दोनों देवों की सन्निधि में कुछ दिन रहे। बाद में मिथिलापुर पहुँच गए। इस प्रकार वेंकटाद्रि के दर्शन करने के पुण्य फल से बाद में श्री

रामचंद्र ने शिव धनुर्भंग किया। सीता के साथ विवाह किया। साथ सौमित्री ने ऊर्मिला के साथ, भरत ने मांडवी के साथ, शत्रुघ्न ने श्रुतकीर्ति के साथ विवाह किया। तब वेंकटाद्रि की महिमा के बारे में सुनने से ही अपनी इच्छा की पूर्ति हुई है, ऐसा जनक ने संतोष प्रकट किया। तदुपरांत शतानंद अपने तपोवन लौट गए। इस रूप में कहनेवाले सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने कहा।

''कमलासन ब्रह्म ने वेंकटाद्रि पर श्रीहरि के लिए रथोत्सव किया। ऐसा आपने बताया। तब कमलाक्ष वेंकटाद्रि पर कितने समय के लिए रहे।'' मुनियों की बातें सुनकर सूत ने इस रूप में कहा। ''श्री वेंकटाद्रि पर आद्य देव वराह स्वामी के साथ श्रीहरि नेत्र पर्व से विपुल शेषगिरि पर कलियुगांत तक रहे।

श्री वेंकटेश्वर का फिर से वैकुंठ पहुँचना

प्राकृत जनों के मन में वास करते हुए धरती पर रहनेवाले श्री वेंकटाद्रि विभ और परग अप्राकृत प्रभाओं से दीपित होकर मिहिराब्ज कांतियों से वराह स्वामी चमकते रहे। बहुरत्न गोपुर और प्राकार, चमकनेवाले चार द्वारों के साथ, महनीय मरकत मणि तोरणों से शोभित वैकुंठपुर का स्मरण करके वहाँ के नित्य, मुक्तियों को देखने की इच्छा से वेंकटाद्रि विभ 'शेषाद्रि को शुभ्रघोणी के रूप में पालन करो।' बताकर, उन्हें उसे सौंपकर स्वयं मायानिगूढ विमान पर बैठकर श्रीदेवी, भूदेवी और नीला देवी समेत श्री वेंकटेश्वर वैकुंठपुर चले गए। वहाँ नित्य शूरों को देखकर, उनका आदर करके अप्राकृत मणिमय अंतःपुर में शेषशय्या पर बसे। तब शेषाद्रि पर रहनेवाले वराह स्वामी विश्वकर्म के द्वारा निर्मित नगर को अंतर्धान करके स्वेच्छा से वन विहार करते रहे। बाद में

वृषभासुर से युद्ध करने निकले। इस प्रकार कुछ वर्ष बीत गए। फिर एक दिन नारद वेंकटाद्रि पर आकर श्रीनिवास के वैकुंठ लौट जाने का वृत्तांत सुनकर सत्य लोक जाकर ब्रह्म को नमस्कार करके इस रूप में कहा।

नारद के द्वारा ब्रह्म से बात करना

''हे जनक! सुनिए। चक्री शेषाचल में वराह स्वामी को मनाकर शेषाचल को उन्हें सौंप कर स्वयं वैकुंठ लौट गए हैं।'' कहने पर ब्रह्म की समझ में कुछ नहीं आया। वे सोच में पड़ गए। फिर नारद से इस रूप में कहा। ''सुनो हे नारद! भूलोक में शेषाचल में पुरुषोत्तम के रहते समय जन अत्यंत सात्विक अतिपुण्यात्मक बने हैं। बाद में स्वामी के वैकुंठ से आने से श्री वेंकटाद्रि पर मैं संकल्प करके बड़े उत्साह से बड़े पैमाने पर रथोत्सव कराया। वराह स्वामी अकेले ने उसका समर्थन नहीं किया। श्रीनिवास को वहाँ रहना है। इसलिए वासुदेव फिर से दशरथ के पुत्र के रूप में धरती पर पैदा होंगे। जिस रूप में वसुदेव और देवकी के गर्भ में चक्री पैदा हुए थे, उसी रूप में कौसल्या के गर्भ से चक्री पैदा होंगे। हे मौनी! उसी रूप में आगे श्रीनिवास बांबी में शीघ्र ही पहुँचने के मार्ग के बारे में सोचिए। श्रीनिवास के फिर से गिरि पर पहुँचने के बाद पहले की रीति में रथोत्सव को जनहित में शाश्वत रूप में मैं कराता रहूँगा।

धरती पर श्रीनिवास के न होने से मनुष्य दुष्ट बनते हुए कलि की माया से सत्कर्म श्रद्धा से नहीं करते हैं। इसलिए श्रीहरि फिर से शेषगिरि पर लौटकर मनुष्यों की रक्षा करने के उपाय के बारे में नहीं सोचेंगे तो जन के पाप बढ़कर नरक में जाएंगे। इसलिए तुम दया को मन में रखते हुए माधव को फिर से इस पर्वत पर पहुँचाने के उपाय के बारे में सोचो।'' ब्रह्म की इन बातों को सुनकर मुनिश्रेष्ठ नारद ने आदरता के साथ ब्रह्म के चरणों को प्रणाम किया।

नारद के द्वारा यज्ञ करनेवाले मुनियों से प्रश्न करना

शरदभ्र शुभ्र लस्कांति से निज देह के चमकने पर, अरुण वर्णकलित जटाजूटों से शोभित, कलंकहीन पूर्णचंद्र के रूप में, बिजली के तार के समान भुजा पर यज्ञोपवीत के चमकते श्री हरि की अनुमति लेकर तब नारद जाह्नवी नदी के तट पर पहुँच गए। वहाँ कश्यपादि मुनियों के द्वारा किए जानेवाले यज्ञ को सादर देखा। वीणा को बजाते हरि गान करते आनेवाले नारद के यज्ञवाटिका में आने को मुनियों ने देखा। कश्पादि मुनियों ने उचित ढंग से नारद की पूजा करके विनति की। 'हे देव मुनि! आपके यहाँ पर आने से हमें बहुत संतोष हुआ है।' यह सुनकर मोद से नारद ने कहा।'' हे मुनिवर्य! आप यज्ञ करके यज्ञ फल को किन्हें अर्पित करेंगे? उस रीति के बारे में मुझे बताइए।'' तब मुनिवर्य संशय में पड़ गए।

तब वे अपने भृगु मुनींद्र से अपने आप वितर्क करते, यज्ञफल को स्वीकार करनेवाले देव को निर्धारित करके बताने में असमर्थ होकर कुछ बोले बिना चुप रहे। तब उन मुनियों को देखकर महिमान्वित अष्टाक्षरी मंत्रार्थ को वीणा के द्वारा सुनाकर नारद ने सानंद इस रूप में कहा। ''हे प्रजापति! आपने सत्क्रतु करके जगत के जनों को हित पहुँचाया है। ऐसे यज्ञों से लोक हित होगा। बहुत अच्छा कार्य है। किंतु यज्ञ के फल को मोक्षप्रद देव को समर्पित करना चाहिए। मोक्षप्रद देव त्रिमूर्तियों में ब्रह्म, विष्णु और महेश्वरों में कौन है? इसका पता लगाकर उन्हें यज्ञ फल को समर्पित करना चाहिए। बाकी देवतागण मोक्ष-प्रद नहीं हैं। इसलिए उनके बारे में सोचने की आवश्यकता नहीं है। इसलिए त्रिमूर्तियों में मोक्षप्रद देव को चयन करके यज्ञफल को समर्पित करके संतोष कीजिए।'' इस रूप में नारद हितोक्तियाँ मुनियों को बताकर अपनी वीणा को बजाते,

परमतत्व का स्मरण करते त्रिलोक विचरण के लिए निकल पड़े। तब ब्रह्म ने धरती पर शेषाचल में वल्मीक, तिंत्रिणी वृक्षों का निर्माण करवाया।

भृगु के द्वारा त्रिमूर्तियों की परीक्षा लेना

महान नारद की हितोक्तियों को सुनने के बाद उनके बारे में सोच कर सभी मुनिगण एकत्रित हुए। अपने आपमें इस विषय के बारे में सोचने लगे। मूर्तित्रय में सबसे बड़ा कौन मोक्षप्रद है। इसके लिए तीनों की परीक्षा लेना ही उचित है समझा गया है। साथ ही परीक्षा लेने के लिए अपने में भृगु महर्षि ही उचित हैं, समझा गया। तब ऐसा निर्णय ''त्रिमूर्तियों में अधिक मोक्षप्रद कौन है?'' परीक्षा लेने का कार्य भृगु को सौंपा गया। तब भृगु सर्वप्रथम सत्य लोक गए। वहाँ तपो जनों से परिवेष्ठित ब्रह्म को देखकर उनको प्रणाम किया। ब्रह्म ने उन्हें बैठने के लिए नहीं कहा। भृगु ने इसे अपना अपमान समझा। मन में उनको बहुत गुस्सा आया। अपने गुस्से को अंदर ही दबा लिया। ब्रह्म के द्वारा बातें न करने से अंदर-ही-अंदर 'यह ब्रह्म रजोगुणवाले हैं। ऐसे रजोगुणवाला मोक्षप्रद नहीं बन सकता है। इसलिए इन्हें भूलोक में मंदिर न हो।' ऐसा निर्णय करके शीघ्र ही वहाँ से निकलकर कैलास गए। वहाँ पार्वती के साथ क्रीड़ा करनेवाले परमशिव के सामने खड़े हो गए। अचानक भृगु को सामने देखकर पार्वती लज्जित हो गयी। तब शिव ने 'अन्यों को इस रहस्य स्थल पर बिना अनुमति के आना क्या उचित है।' मन में सोचते हुए गुस्सैल नेत्रों से भृगु को देखा। शिव के बातें न करने से 'ये तमोगुण प्रधान है। इसलिए ये भी मोक्षप्रद नहीं है। ऐसे को भूलोक में शरीर की पूजा नहीं होगी, सिर्फ लिंग पूजा होगी।' ऐसा निर्णय भृगु अंदर ही अंदर करके वहाँ से वैकुंठ गए। वहाँ शेष शयन पर लक्ष्मी के साथ शयनित होनेवाले विष्णु को देखा। वहाँ भी भृगु का आदर नहीं हुआ। तब भृगु ने

गुस्से में श्रीनिवास के वक्षस्थल पर लात मारी। तब हरि ने तुरंत उठकर भृगु को नमस्कार किया। अर्घ्य, पादादि पूजा करके उचित आसन पर बिठाया। अपने वक्षस्थल पर मारनेवाले पैर को अपने जांघ पर रखकर विष्णु भृगु के पैर दबाने लगे। फिर मंदस्मित होकर भृगु की तरफ देखकर इस रूप में कहा। ''हे मुनीश्वर! आपके आने के बारे में मुझे पता नहीं था। इसलिए मैं सो गया था। इसलिए मुझसे अपराध हो गया। मुझ पर न रूठकर अब आप मुझ पर कृपा कीजिए। मेरे अपराध के लिए उचित रीति से मुझे आपने मारा है। यह मुझे पसंद आया। किंतु मेरे कठोर वक्ष पर मारने से आपके पैर को कितनी पीड़ा हुई? इसके लिए मैं क्या उपाय करूँ? आपके बहुत कोमल नयी कोंपल जैसे पैर हैं। इसलिए मुझे वक्ष पर कोई दर्द नहीं हुआ। कमल के स्पर्श जैसा आपका पदाघात मेरे लिए भूषण बन गया। किंतु कठोर वक्ष पर लगने से आपके पैर को अवश्य पीड़ा हुई होगी।'' कहते हरि ने उस मुनि के पाद का प्रक्षालन किया। तब उस तीर्थ को सिर पर धारण करके फिर इस रूप में कहा। ''वर विप्रों के पद रेणु को बड़ी इच्छा से मैं सिर पर धारण करता हूँ। आज आपके पदाघात से उस इच्छा की पुर्ति हो गयी। हे धरणी सुरवर्य! मैं धन्य हो गया।'' हरि की इन बातों को सुनकर भृगु को आनंद हुआ। मन में भय और भक्ति के उदय होने से श्रीहरि को देखकर लज्ञा से सिर झुकाकर भृगु ने इस रूप में कहा। ''हे शाश्वत सद्गुण मूर्ति! तुमको छोड़कर और कौन इस रूप में रक्षा कर सकता है? आपकी स्तुति करना मेरे लिए संभव नहीं है।'' भृगु ने ऐसी विनति की। तदुपरांत भृगु ने हरि से विदाई ली। गंगा नदी के तट पर यज्ञ करनेवाले कश्यपादि मुनियों के पास लौट आये। ब्रह्म, शिव के रजो, तमो गुणों के बारे में और हरि के सत्व गुण के बारे में तथा अपनी परीक्षा लेने के वृत्तांत के बारे में भृगु ने उन्हें बताया। तब संतोष के साथ उन्होंने निर्णय किया कि हरि ही

अधिक मोक्षप्रद है। यज्ञ के सकल पुण्य फल को विष्णु को समर्पित करके विष्णु का ध्यान करने लगे।

लक्ष्मी का श्रीहरि से प्रणय कलह करके कोल्हापुर पहुँचना

हरि के वक्ष पर भृगु के लात मारते समय उनके वक्ष पर रहनेवाली लक्ष्मी को अपने निवास स्थान पर लात मारनेवाले भृगु पर गुस्सा आया। उन्होंने रूठ कर हरि को नमस्कार करके इस रूप में कहा। ''परब्रह्म स्वरूप समझ कर आपके वक्षस्थल पर मैं इतने दिन रही थी। आज इस पर परपुरुष ने अद्भुत ढंग से मारा है। यह आपके लिए संतोष का विषय बन गया। मुझे गुस्सा आया है। अगर उस मुनींद्र से मैं कुछ कहती तो आपको बुरा लगता। इसलिए हे कमलनाभ! अब मैं तप करना चाहती हूँ। मन में आपके चरणों का ध्यान करते हुए कहीं भी तप करने का ज्ञान मुझे दीजिए। निर्मल मन से मैं आपके चरणों में ही रहती हूँ।'' इस रूप में रमासति ने गुस्सा करते हुए सर झुका कर कहा। पुरुषोत्तम ने लक्ष्मी के मन को जानते हुए प्रेम से इस रूप में कहा। ''हे सिरि! तुम उस मुनि के मारने को अपमान के रूप में मत देखो। विप्र के पदाघात वक्ष पर लगना बहु शुभकर ही है। हे कमलाक्षी! तुम मत रूठो।'' हरि की इन बातों को सुनकर लक्ष्मी ने कहा। ''आप आत्माओं के लिए आत्मा हो, विश्व कारण समझ कर आपकी पूजा करनेवाले यहाँ पर आकर मारा है। उस मुनि को कौन-सी गति प्राप्त होगी? वे अति मूर्ख हैं। उनके बारे में मैं सोचना नहीं चाहती हूँ। हे केशव! आपने मुझे बहुत बड़ी भेंट प्रदान की है। उसका पिता ब्रह्म आपका पुत्र है। वह उस ब्रह्म का पुत्र है। छोटा-बड़ा न जानकर अपने को पितामह लगनेवाले को उसने मारा है। उसे छोड़ देने पर भी, आपको परमात्मा न समझता है क्या? ऐसे मुनि का पाद आपके वक्ष पर लगा है। इसलिए अब मेरा यहाँ पर रहना ठीक नहीं

है। मैं कहीं भी रहूँ आपको चित्त में रखकर पूजा करना मेरे लिए अच्छा है। अब मुझे आज्ञा दीजिए हे जगदीश! हे चित्प्रकाश!'' सिरि की इन बातों को सुनकर हरि ने हँसते हुए इस रूप में कहा। ''हे सिरि! ब्रह्म मेरा पुत्र है। वह भृगु मेरा पौत्र है। पुत्र होते मारना बुरा नहीं माना जाता है। बच्चा पेट में रहते हुए माँ को भी मारता है। जिस रूप में माँ प्रेम से फिर उसे नहीं मारती है। वैसे ही प्रेम से मैंने उसे स्वीकार किया है। जीव कोटि के लिए मैं पिता समान हूँ। इसलिए उनका दोष नहीं मानता। इससे अलग वह ब्रह्म का पुत्र है। सत्ब्राह्मण है। तापसोत्तम है। तत्ववेदी भी है। सचमुच ही उसने मुझ पर भक्ति रखी है। भक्त ही सचमुच मेरे लिए परम प्रिय हैं। भक्त के लिए मैं प्रिय नहीं हूँ। इसलिए मेरे भक्त मुझे मारने से उनकी निंदा कैसे कर सकता हूँ। वे मुक्तिमान हैं। मुनिजन मुख्य भी हैं। वे तो मूर्ख नहीं हैं। हे भामिनी! भेदोक्तियों को छोड़कर मेरे हृदय पर शांतिमति बन कर बसे रहो।'' विष्णु की इन बातों को सुनकर लक्ष्मी को बहुत गुस्सा आया। उनके नेत्र रोष से चमके। तब लक्ष्मी ने पति को देखकर कहा। ''हे तामरसाक्षा! सुनिए। परपुरुष के पाद स्पर्श जहाँ लगे हैं। हे हरि! वहाँ अब मैं नहीं रहूँगी। मेरा पातिव्रत्य धर्म नहीं बिगड़ेगा क्या? अब आगे आपको मुझसे अलग करनेवाले वंशजों को राक्षसों के लिए आप्त बनेंगे। जरा-मरण से पीड़ित होंगे। कलियुग में उनके वंशज ब्राह्मण अपने आपको पोषण करने में असमर्थ होकर याचक बन जाएँगे। अपने नित्य कर्मों को भी छोड़कर नीचों के सांगत्य में आश्रय प्राप्त करेंगे। गरीब बनकर अपने तोंदू को बढ़ाकर सकल विद्याओं को बेचकर धरती पर जीयेंगे।'' कहते हुए आदि लक्ष्मी ने विप्रों को शाप दिया। फिर हरि को देखकर इस रूप में कहा। ''मारनेवाले विप्र को दंड दिए बिना भेज दिया। आगे आपको कायर समझकर नीच दृष्टि से देखते हुए कोई ग्वाला भी

आपको मार सकता है। धरती पर स्त्रियाँ भी परिहास करते हुए आप पर पथराव कर सकती हैं। इसके बारे में सुन कर म्लेच्छ (अनार्य) बहुत आसानी से आप पर आक्रमण कर सकते हैं। शांति के कारण से ही हम दोनों को अलग होना पड़ रहा है। मैं कहीं भी रहूँगी आपको चित्त में बसा कर ही पूजा करती रहूँगी। हे नाथ! किंतु आपके हृदय पर मैं कैसे रहूँगी।'' कहते मन में विचार करते हुए, कुछ अपने को सहलाते हुए, अपने पैर के अंगूठे से जमीन पर खुरचते हुए लक्ष्मी बहुत चिंता करने लगी थी। ऐसी लक्ष्मी को देखते हुए उसके कारण की कल्पना करके विष्णु कुछ बोले बिना चुप रहे। ऐसे विष्णु को देखकर लक्ष्मी ने फिर से कहा। ''हे हरि! क्षमा किए बिना हमारे बीच में इस रूप में उपद्रव करने के बाद मुझ पर दया क्यों करते हैं?'' कहते वैराग्य भाव से कमलनाथ को हृदय में अच्छी तरह बसाकर हरि को नमस्कार करके शीघ्र ही वैकुंठ को छोड़कर सुंदर कोल्हापुर पहुँच गयी। कोल्हापुर में भक्त बड़ी श्रद्धा से उनकी पूजा करने लगे। इससे लक्ष्मी सुस्थिर चित्त से संतुष्ट होकर संतोष के साथ वहीं कोल्हापुर में बस गयी।

इस क्रम में लक्ष्मी और नारायण के बीच में हुए प्रणय कलह के कारण लक्ष्मी वैकुंठ छोड़कर कोल्हापुर चली गयी। सूत के द्वारा बतायी गयी इस कथा को सुनकर शौनक को और आगे सुनने की जिज्ञासा हुई। इसलिए उन्होंने सूत से यह पूछा। ''श्री नारायण इस रूप में लक्ष्मी से अलग होकर भूदेवी और नीला देवी के प्रति संपूर्ण प्रेम दिखाते आनंद से रहा करते थे? या सिरि का स्मरण करते दीन बनकर दुखी थे?'' 'हे सूत! कृपया बताइए।' इस रूप में शौनकादि के पूछने पर सूत ने उनसे कहा। ''विष्णु भगवान को सिरि से अलग होने का बड़ा दुख था। बार-बार सिरि का स्मरण करते हुए अपने आप में विरह ताप से वे पीड़ित थे।''

विष्णु देव की चिंता

विष्णु देव अपने आप में इस रूप में प्रश्न करने लगे थे। उस देव मुनि को ब्रह्म से वेंकटाद्रि पर मेरी अनुपस्थिति के बारे में बताना ही क्यों था? ब्रह्म के द्वारा भेजा गया नारद को मुनियों के पास जाकर प्रश्न ही क्यों करना था? हमारी परीक्षा लेने आये भृगु को मुझे मारना ही क्यों था? इसे देख कर मेरे साथ नित्य अनुयाइनी के रूप में रहनेवाली लक्ष्मी मुझे छोड़ कर जाना ही क्यों था? अहो! मैं क्या करूँ? अपने कर्म से मैं कैसे मुक्त हो जाऊँ? कर्म से कोई बच नहीं सकता है। अद्‌भुत रूप में लक्ष्मी से अलग होने के इतने कारण हैं। अब चिंता करने से क्या लाभ है। चंद्र बिंब में रहनेवाली चंद्रिका की तरह लक्ष्मी मेरे अंदर ही रहेगी। किंतु सौभाग्य लक्ष्मी मुझे छोड़कर चली गयी है। सिरि के हृदय में बसने के लिए तीनों लोकों में मुझे उसे ढूँढ़ना होगा। उस सागर तनया का स्थूल शरीर अब कहाँ पर है? मालूम नहीं है। किंतु उसका सूक्ष्म शरीर मेरे अंदर ही बसा हुआ है। इसलिए चिंता नहीं है। फिर भी लोक हित के लिए अपने सर्वज्ञत्व को छिपाकर लक्ष्मी की खोज मुझे करनी चाहिए। अगर मैं चुप रहूँगा तो निर्दय कहकर कुछ मेरी निंदा करेंगे। स्नेह से वैकुंठ के सभासदों को सुपालन करने के लिए वैकुंठ को सौंप कर, भूदेवी और नीला देवी को भी उनके संरक्षण में रख कर फिर माधव ने इस रूप में सोचा।

श्रीहरि का फिर से वेंकटाद्रि पर लौटना

इस प्रकार कुछ समय बीत जाने के बाद 'फिर से उस महालक्ष्मी को अपने वक्ष पर रखूँगा।' ऐसा निश्चय करके भूदेवी और नीला देवी को देखकर उन्हें समझा-बुझाकर 'रमा देवी की खोज करके शीघ्र ही यहाँ ले आऊँगा।' ऐसा उन्हें बताकर, उनसे हामी लेकर वैकुंठ को छोड़ कर

श्रीहरि फिर से वेंकटाद्रि पर्वत पर लौट आये। ऐसा बतानेवाले सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने कहा। ''श्री महालक्ष्मी को ढूँढ़ने वैकुंठ को छोड़कर धरती पर वेंकटाद्रि पहुँचनेवाले हरि ने वहाँ पर क्या किया?'' ऐसा मुनियों के पूछने पर सूत ने इस रूप में कहा। ''सुनिए! श्रीहरि वेंकटाद्रि पर पहुँचकर वहाँ रहनेवाले श्री वराह स्वामी के और पुष्करिणी के दक्षिण में शोभित तिंत्रिणी बृक्ष के मूल में बने वल्मीक के विवर में प्रवेश कर गए। कई वर्षों तक किसी को दिखाई नहीं दिया। बांबी में रहते, धरती पर अट्ठाईस द्वापरांत के बाद कलि युग शुरु हो गया। तब धरती पर चोल राज धर्म से पालन कर रहा था। ऐसे समय में वरुण देव सही समय वर्षा कर रहे थे। पृथ्वी पर सकल सश्य श्यामल था। गायें बहु क्षीर दे रही थीं। पतिव्रत स्त्रियाँ, सतीव्रत पुरुष, माता-पितृ भक्त पुत्र धरती पर हुआ करते थे। ऐसे कलियुग के आदि काल में कोल्हापुर पहुँचनेवाली लक्ष्मी को श्रीहरि के वैकुंठ छोड़कर शेषाचल पहाड़ पर तिंत्रिणी वृक्ष के वल्मीक में वास करने का समाचार प्राप्त हुआ। वे अपने आप में दुःखी होकर चिंता करते हुए इस रूप में तर्क-वितर्क करने लगी।

'मेरे लिए कमलनाथ! वैकुंठ छोड़कर वल्मीक में अकेले छिपकर रहने लगे हैं। अहो! अब मैं क्या करूँ?'। वे शीघ्र ही कोल्हापुर छोड़कर ग्वालिन के रूप में वेशधारण करके चोल राज की पत्नी के पास चली गयी। उस रानी के मणिमंदिर के पास पहुँचकर 'हरि को मैं कैसे तृप्त करूँ?' सोचते।

ब्रह्म और रुद्र का गाय और बछड़ा बन जाना

लक्ष्मी के इस रूप में मन में सोचते समय महालक्ष्मी के भाव को समझ कर ब्रह्म ने रुद्र को साथ में ले आकर वहाँ पर धेनु का रूप धारण कर लिया। वह ऐसा है कि कपिल वर्ण का सुड़ौल शरीर, मंगलकर श्रृंग

युगल, काजल लगाए नेत्र, सुंदर कान, काला चमकनेवाला नासिका पुट, गुरुतर कंठ, बड़ा नोपुर, बड़ा उदर, उचित दीर्घ पूंछ, चमकनेवाली दृष्टि, शोभित जांघे, पूर्ण कुंभ जैसा थन, भार से केले के फल समान चार स्तनों के साथ क्षीर वारिधि में पैदा होकर उत्साह से रहनेवाली कामधेनु की तरह लक्ष्मी के पास आकर खड़ी हो गयी।

तब वाम देव (शिव) उसका बछड़ा बन गये। वह बछड़ा धवल वर्ण में चमकते अपनी माँ के पास दूध पीते उछलते-कूदते बाल क्रीडाएँ करने लगा। गाय और बछड़े को देखकर लक्ष्मी ने पहचान लिया। ब्रह्म और रुद्र इस रूप में श्रीहरि को प्रयोजन पहुँचाने के लिए वेश धारण कर लिया। लक्ष्मी तब उन दोनों को पकड़कर लाकर उन्हें बेचने की कोशिश करने लगी। लक्ष्मी के बेचने की पुकार सुनकर चोल राज की पत्नी ने अपनी बेटी को दूध पिलाने उस गाय और बछड़े को आवश्यक धन देकर खरीद लिया। ऐसा खरीदकर पहले से उनके पास रहनेवाले दो सहस्र धेनु समूह में उसे शामिल करने के लिए उसे गोप को सौंप दिया। बाद में लक्ष्मी सोचने लगी कि 'यह धेनु और बछड़ा आगे वल्मीक में रहनेवाले श्रीहरि का पोषण करेंगी। अब मुझे कोई चिंता नहीं है। कहीं भी हो स्वामी का सुखी रहना ही मेरे लिए संतोष का विषय है।' ऐसा सोचती वे शीघ्र फिर से कोल्हापुर चली गयीं। तदुपरांत ब्रह्म स्वरूपी गाय प्रति दिन बाकी गायों के साथ चरती श्री वेंकटशैल पर चढ़कर अपने दूध को वल्मीक के अंदर रहनेवाले श्रीहरि को अर्पित करने लगी।

श्रीहरि गाय के उस क्षीर को पीकर अति प्रसन्न थे। मन में ही ब्रह्म और रुद्र की वे प्रशंसा करने लगे थे। उस समय चोल भूपाल की पत्नी ने अपनी पुत्री के लिए दूध लेने इसके पहले खरीदी गयी गाय को अपने सदन में लाने के लिए कहा। उन्होंने गाय को सहलाते हुए दुहने की

कोशिश की। उसके थन में दूध नहीं था। तब उन्होंने मन में इस रूप में सोचा। 'गाय के थन को देखकर खरीदा। पूर्ण कलश जैसे थन को देखकर खरीदा। किंतु आश्चर्य से उसमें दूध ही नहीं है। यह कौन-सा पाप है?' इस प्रकार चिंता करते हुए कुछ दिनों तक उस दिव्य धेनु पर ध्यान रखते हुए उसकी परीक्षा ली। फिर भी उससे दूध नहीं मिला। तब उन्होंने गोप को बुला भेज कर उससे इस रूप में कहा।

चोलराज की पत्नी का गोप को डांटना

''गोपाल! इस बड़ी गाय के थन में दूध क्यों नहीं है? यह कौन-सा पाप है? कहीं तुमने जंगल में ही इसके दूध को पी लिया क्या?'' रानी की बातों को सुनकर गोप ने कहा। ''आपकी गाय का दूध मैंने नहीं पिया। शायद बछड़े ने पी लिया होगा।'' कहने पर ''अपने घर में रहनेवाला बछड़ा कैसे दूध पी सकता है? तुम झूठ बोल रहे हो।'' गुस्से में रानी ने गोप को डांट सुनायी। तब उसने डर कर कहा। ''गाय के थन ने ही दूध पी लिया है। मैंने कोई पाप कर्म नहीं किया।'' तब राजा ने उस पर गुस्सा करते हुए उसे बंदी बनाकर खूब पिटवाया। वहाँ से उसे बाहर भी निकाल दिया। रोते हुए उसने जंगल में गाय का पीछा किया। तब उसने देखा कि वह गाय बाकी गायों के साथ नहीं चरते अलग होकर शेषाचल पर्वत पर चढ़कर वल्मीक में छिपे हुए श्रीहरि को दूध देने लगी। इसे देखकर तब गोप ने गुस्से में अपने हाथ के परशु से उस पर वार किया। तब विष्णु देव ''इस गाय ने मुझे माँ की तरह हर दिन दूध देकर मेरी रक्षा की है। ऐसी गाय पर गोप वार कर रहा है। इसे मैं कैसे सहन कर सकता हूँ।'' ऐसा सोचते गाय को बचाने अपने सिर को बांबी के ऊपर से गाय की आड में रख दिया। तब गोप के द्वारा चलाया गया परशु हरि के मस्तक पर जाकर लगा। तब हरि के मस्तक से रुधिर बहने

लगा। हरि का रुधिर तब सप्त ताल वृक्ष की तरह उनके सिर के ऊपर से पृथ्वी पर गिरने लगा। यह देखकर गोप डरकर नीचे गिर कर मर गया। इसे देखकर गाय शेषाद्रि से उतर कर राजा की सभा में गयी। वहाँ पर वह नीचे लुढ़कती आंखों से आँसू निकालने लगी। इसे देखकर राजा को चिंता हुई। राजा ने तब इस रहस्य को जानने अपने गुप्तचरों को जंगल में भेजा।

राजा के गुप्तचर गाय का पीछा करते गए। वह गाय वेंकटाद्रि पर चढ़कर वल्मीक के पास जाकर रुक गयी। बांबी से रुधिर का बहना, गाय का वहाँ खड़े होकर थन से दूध देना, गोप का वहाँ पर गिरे रहना आदि को देखकर गुप्तचरों ने डर कर भागते हुए आकर राजा को सब कुछ बता दिया। राजा ने शीघ्र ही पालकी में बैठ कर परिवार समेत वेंकटाद्रि पर पहुँच कर वहाँ घटित पूरे दृश्य को देखा। अपने मंत्रियों की तरफ देखकर 'इस वल्मीक से ऐसा रुधिर का बहना, गोप का मर कर यहाँ पर गिरा पड़ा रहना, गाय के द्वारा आँखों से आँसू बहाने का कारण क्या है?' इस रूप में वितर्क करते समय श्रीहरि वल्मीक में से अति रक्त सिक्त शरीर से, आँखों में आँसू निकलते, गद्गद कंठ से, शंख, चक्र धारण करके बाहर निकले। राजा को देखकर इस रूप में कहा। ''हे! पापात्मा! मैं बांबी में छिपा हुआ था। आज तुम्हारे गोप ने यहाँ पर आकर सदा मुझे दूध देनेवाली गाय के सिर पर मारा है। परशु से अतिक्रूर ढंग से मेरे सिर पर मारा। इस घोर पाप के कारण वह मर गया है। सुनो राजा! मैं अनाथ हूँ, माता-पिता न होने से, पत्नी-बच्चे न होने से, बंधुजनों के न होने से, अति गरीब बनकर, परदेशी बनकर यहाँ पर आया। शेषाचल पर रहनेवाली इस बांबी में छिपा हुआ था। तब माँ समान इस धर्म सुरभि ने मुझे नित्य दूध देकर मेरी रक्षा की है। तुम्हारे पशुपालक के द्वारा गाय को

मारने का पाप फल उसने प्राप्त किया। वह तुम्हारा है इसलिए उसके मरने का पाप फल तुमको भी भोगना पड़ेगा। तुम नीच दशा को प्राप्त करके धरती पर पिशाच बन कर रहो।'' श्री हरि के इस शाप को सुनकर डर कर राजा बेहोश होकर धरती पर गिर गया। थोड़ी देर के बाद राजा ने होश में आकर उठकर सामने लीला मानुष विग्रह के रूप में खड़े श्रीहरि को साष्टांग दंडवत करके मुकलित हस्तों के साथ गद्गद स्वर में रोते हुए स्वामी को देखकर इस रूप में कहा।

चोलराज का पश्चाताप

''अहो देव! जानबूझ कर मैंने ऐसा नहीं किया। आपने अति कठोर शाप देकर मुझे संकट में डाल दिया। मैं इसे कैसे सहन कर सकता हूँ। हे जगदीश्वर! मुझ पर कृपा करके इस कठोर शाप से मुक्त होने का उपाय मुझे आप बताइए।'' आर्ति बनकर इस रूप में राजा के कहने पर कमलाक्ष ने उसकी तरफ देखकर इस रूप में कहा। ''हे नृपति! तुम्हारा कोई दोष नहीं है, किंतु मैं इसे नहीं जानता था। व्यर्थ ही तुमको शाप दिया। मेरा शाप व्यर्थ नहीं जाता। अब मैं क्या करूँ? शेषाचल पर बांबी में दुबक कर छिपा हुआ था, मुझे तितर-बितर करके मुझे कष्ट पहुँचाया गया। इसलिए सत्य को नहीं जानते हुए बुरे रूप में तुम सुजन को दुष्ट समझकर कठोर शाप दिया। धरती पर मेरे इस शाप को कोई रोक नहीं सकता। तुम पर वत्सलता को भी मैं छोड़ नहीं सकता हूँ। इसलिए तुम पर रहनेवाली करुणा के कारण मुझे बड़ा दुःख हुआ है। पिशाच की गति और दुःख मेरे कारण ही तुझे प्राप्त हुए हैं। दोनों को दुःख हुआ है। कलियुग तक इस शाप को तुझे भोगना होगा। बाद में आकाश राज प्रेम से और संतोष से अपनी पुत्री के साथ मेरा विवाह करते समय मेरे सिर पर एक किरीट को रखो। वह किरीट ऐसा होना चाहिए कि सौ भारु

(एक नाप, जो मण से बड़ा) सुवर्ण से तथा अनेक मणि-माणिक से जटित होना चाहिए। मैं उसे हर शुक्रवार को छः घड़ियों तक धारण करूँगा। तब मेरे नेत्रों से आनंद के भाष्प निकलेंगे। उन छः घड़ियों में तुमको सुख प्राप्त होगा।'' श्रीहरि ने ऐसी आज्ञा दी। उसे सुनकर चोल राज शापग्रस्त होकर लौट गए। तब श्रीहरि बांबी में चले गए। सिर पर लगी चोट के दर्द को वे सहन नहीं कर पा रहे थे। इसलिए उन्होंने बृहस्पति का स्मरण किया। बृहस्पति गुरु वल्मीक के पास आये। उन्हें देखकर श्री हरि ने अपनी दीन कथा को सुनाया। हीन स्वर में हरि ने इस रूप में कहा। ''हे देव देशिक! सादरता के साथ सुनो। काल, कर्म, ग्रहगति वश गोप ने मेरे सिर पर परशु से मारा है। इसलिए दर्द अधिक हो गया है। दर्द को दूर करनेवाले औषध के बारे में तुरंत ही बताओ।'' हरि के इस रूप में कहने पर बृहस्पति ने शांत मन से इस रूप में कहा। ''हे महात्मा! आपके लिए काल, कर्म, ग्रहगति कैसे हो सकते हैं? आपकी महिमा को दूसरे नहीं जानते हैं। उनके बारे में आपको ही मालूम है। मुझसे पूछा इसलिए बताऊँगा। हे कमलनाथ! एक औषध के बारे में आपको बताऊँगा। आक की रुई को दूध में भिगोकर सिर के बीच में रखने से दर्द कम हो जायेगा।'' यह कहकर हरि को नमस्कार करके सुरगुरु बृहस्पति लौट गए।

'तब हरि गुरु के द्वारा बताये औषध को उस चोट पर लगाने की कोशिश में थे।' सूत के इस रूप में बताने पर शौनकादि ने बड़ी दया के साथ सूत को देखकर इस रूप में कहा। ''हे रोम महर्षि के पुत्र! तिंत्रिणी वृक्ष का वृत्तांत, बांबी का विधान आदि के वृत्तांत को हमें बताओ। उस कथा को सुनने की इच्छा हुई। विश्व के जनों को पैदा करके और उनकी रक्षा करनेवाले, और उनका लय करनेवाले सर्वज्ञ को ऐसी आपदाएँ

क्यों हुई हैं? इसे सुनकर हमें मन में दुःख हो रहा है। हे महात्मा! इसे अच्छी तरह हमें बताइए।'' इस रूप में उनके पूछने पर सूत ने इस रूप में बताया। ''विष्णु के चरित अतिगूढ़ हैं। विशद रूप से बताना क्या किसी को संभव है?

वाल्मीक एवं तिंत्रि वृक्ष का प्रभाव

फिर भी जितना कुछ मुझे मालूम है बताऊँगा। वह ऐसा है कि त्रेता युग में दशरथ और कौसल्या देवी दोनों देह मुक्त होते समय श्री रामचंद्र के प्रति अपने वात्सल्य भाव को छोड़ नहीं पाये। पुत्र पर सुनिए! उस स्वामी के दर्शन करने की इच्छा रखनेवाले सारे सत्कर्म सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं।'' यह कहते सूत ने आगे इस रूप में कहा। वैकुंठ छोड़कर शेषाचल पर वाल्मीक के गर्भ में रहनेवाले श्रीनिवास के अनेक चित्र-विचित्र कार्यों को सुना है। और श्रीनिवास के मनुष्य के रूप में मनुष्यों से किए क्रीड़ा-विनोद और एक सामान्य मनुष्य के रूप में किए गए नाटकों के बारे में सुरुचिपूर्ण ढंग से बताऊँगा। सुनिए! औषध के बारे में बृहस्पति के द्वारा बताये गए उपाय के अनुसार औषध को लगानेवाला कोई हित व्यक्ति उन्हें नहीं मिला। तब श्रीनिवास चिंता में पड़ गए। 'अब मैं क्या करूँ?' इस रूप में सोचते अपने औषध को स्वयं लाने के लिए प्रातःकाल ही अकेले निकल पड़े। तब वराह स्वामी वृषभासुर से यद्ध करके उसे संहार करके बाद में भूदेवी के साथ उस पर्वत की गुफाओं एवं श्रृंगों पर विहार कर रहे थे। बहु वर्षों के बाद फिर से शेषाचल का स्मरण करके शेषाचल के मार्ग से आनेवाले श्रीनिवास को देखकर वराह स्वामी ने उसे कोई राक्षस समझ लिया। शायद अपने से युद्ध करने के लिए आया है, समझा। वराह स्वामी उन्हें देखकर अट्टहास करते हुए, सारे

विश्व उस ध्वनि से कांप गए हों, बड़ा हुंकार किया। इस महा हुंकार ध्वनि से डरकर नारायण स्वामी एक झुरमुट में छिप गये। युद्ध किए बिना इस रूप में छिपनेवाले को देखकर वराह स्वामी गर्व से अपने विकार आकार के साथ दांतें निफोरते हुए वे शीघ्र ही झुरमुट में घुस आए। तब श्री हरि एक कोने में दुबक कर छिप गए।

वराह और श्रीनिवास के संवाद

वैसे दुबक कर आंखों से आँसू निकालनेवाले स्वामी की दीन अवस्था को देखकर वह राक्षस नहीं है। बल्कि राक्षस का शिकार हुआ समझकर 'अकारण ही इस पर क्रोध दिखाया' मन में सोचते वराह स्वामी भी बाष्पपूरित लोचनों से उसे देखकर लीला मानुष के रूप में उसे पहचान कर पास जाकर 'मत रो' कहते हुए इस रूप में कहा। ''वैकुंठ को छोड़कर निकल कर आने का कारण क्या है? सिरि हृदय पर नहीं है, यह विचित्र क्यों है? मनुष्य के आकार में क्यों हो? सिर पर चोट कैसे लगी है? अत्यंत बलवान हो, फिर भी इस रूप में दुबककर छिपने का कारण क्या है? आँखों से आँसू क्यों बहा रहे हो? मेरे हुंकार करने पर खड़े होकर बात किए बिना इस रूप में छिप जाने का कारण क्या है? तुम्हारा यह व्यवहार मुझे विचित्र लग रहा है। सच-सच बताओ।'' ऐसा स्नेह से वराह स्वामी ने श्रीहरि से पूछा। तब निष्कपट भाव से दीनता में भू वराह स्वामी को देखकर श्रीहरि ने इस रूप में बताया। ''सुनो! वराहा रूपा! मेरा सारा वृत्तांत। सिरि को हृदय पर धारण करके मैं वैकुंठ में था। तब भृगु ने मेरे वक्ष पर लात मारी। तब सिरि मेरे हृदय से निकल कर 'परपुरुष के पदाघात लगने के कारण मैं यहाँ नहीं रहूँगी' कहते रूठकर कोल्हापुर जाकर लक्ष्मी ने वैराग्य लिया। इसलिए पारिवारिक सुख को त्याग करके मैं आपके पास आकर इस वल्मीक में दुबक कर

रहते समय एक ग्वाले ने परशु से मेरे सिर पर मारा। उस चोट को भरने के लिए बृहस्पति ने औषध बताया। उस औषध को इस गिरि पर ढूँढ़ते हे विमल शरीरा! शीघ्र ही आप को देखा है। सिर की चोट सताने पर कमजोर पड़ गया। बलवान होते उत्साह से आपके हुंकार को सुनकर डर कर हे महात्मा! झुरमुट में छिप गया। मुझ पर दया से आपने मुझ से बात की है। इससे मन में रहनेवाली पूर्व चिंता मिट गयी। हे वराह! अपना समझ कर मुझे अपने ही पास रख लीजिए। उस वैकुंठ को छोड़कर आपको ही मैं समझ कर बड़े स्नेह से यहाँ बस गया हूँ। जल्दी में आप कहाँ पर हैं, पहचान नहीं पाया।'' हरि के इस रूप में पूछने पर वराह स्वामी ने कहा। ''इस पर्वत पर वृषभासुर नामक एक राक्षस बस कर मुनिजनों को कष्ट दे रहा था। इसलिए मैंने उस राक्षस से बहु दिन घोर युद्ध करके उस माया राश्रस का संहार किया। यहाँ आकर तुमको देखा है। मुझे भी तुमने अब देखा है। तुझे और मुझे अब स्नेह हो गया है। इसलिए हे इंदिरेश! आनंद से रहो।'' वराह स्वामी के स्नेह से इस रूप में बोलने से सुनकर संतोष के साथ श्रीहरि ने इस रूप में कहा। ''अवनि में कलियुगांत तक मुझे रहने के लिए आप जगह बताइए।'' इस रूप में श्रीहरि के बोलने से सुनकर ''यह क्या है?'' संशय के साथ वराह स्वामी ने पूछा। ''हे हरि! गरीबों में आशा पैदा नहीं करनी चाहिए। उसी रूप में बलवानों को आश्रय नहीं देना चाहिए, उचित धन देने से यहाँ नाप कर आपको सौ कदम भूमि दूँगा।'' वराह स्वामी के इस रूप में बोलने से श्रीहरि ने इस रूप में कहा। ''लक्ष्मी जो धन मेरे पास छोड़कर गयी है, उसे मैं तुझे दे दूँगा। किंतु लक्ष्मी अब मुझे छोड़कर कोल्हापुर चली गयी है। तुम्हें देने के लिए मेरे पास धन कहाँ से आयेगा? जन से याचना करके मुझे जीवन काटना है।'' हरि की इन बातों को सुन कर महा महान

वराह देव ने इस रूप में कहा। "यह कैसी बात है? बिना धन के भूमि नहीं दूँगा।" कहनेवाले वराह स्वामी को देखकर हँसते हुए माधव ने कहा। "पूरा धरातल आपके वश में आ रहा है। थोड़ा मुझे दे दीजिए। जितना आप देंगे उतने में ही मैं रहूँगा। जीवन काटने के लिए नर के रूप में नाटक करते हुए यहाँ पर नरों को आने के लिए मजबूर करके आपको नित्य पंचामृत अभिषेक मुफ्त में कराऊँगा। आप के तीर्थ में डुबकी लगाकर आपकी पूजा करके उपहारादि आपको चढ़ाने के लिए अपने भक्तों से कहूँगा। इससे बढ़कर पहले आपके भोजन करने के बाद ही मैं बाद में भोजन करूँगा।" कहने पर स्वीकार करके वराह देव ने श्रीहरि को वहाँ ठीक से सौ कदम नाप कर भूमि दी।

इस प्रकार वराह स्वामी ने श्रीहरि का आदर करके फिर से उन्हें शेषाचल पर खड़ा किया। तब दोनों के शीर्षों पर देवताओं ने फूलों की वर्षा की। अनेक प्रकार से विनति की। तब वराह स्वामी ने अपने पास लोक हितार्थ रहनेवाली वकुल मालिका के पास श्रीहरि को सौंपकर 'अन्नपान औषध आदि सर्वोपचार करते रहने के लिए' वकुला मालिका से कहा। तब वकुला मालिका ने श्रीहरि को श्यामकान्न और शहद भोजन के लिए दिया। चोट पर औषध भी लगाया। यह देखकर गाय बछड़े के रूप में दूध देकर तृप्त होने वाले ब्रह्म और रुद्र संतोष के साथ शेषाचल छोड़कर अंतर्धान हो गए। अपने निजी स्थानों पर लौट गए। तब श्रीनिवास उस पर्वत पर सकल विनोद करने लगे। भक्तहीनों को मोहक बनकर, परम भक्तों को सकल सिद्धियाँ प्रदान करते हुए, राक्षसों के लिए सिंहस्वप्न बनकर, देवताओं का विनोद करते हुए, सिर की चोट से मुक्त होकर, दिव्य सौंदर्य लीला मानुष विग्रह के रूप में माँ के पास लाड़ले पुत्र

के रूप में वकुला मालिका के पास रहकर अपनी लीला करते रहे। यह बतानेवाले सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने इस रूप में कहा।

वकुला मालिका वृत्तांत

"वकुला मालिका कौन हैं? उनके अकलंक चरित के बारे में हमें बताइए।" पूछने पर सूत ने इस रूप में कहा। "द्वापर युग में श्रीकृष्ण की पोषित माँ श्री यशोदा देवी बालक श्री कृष्ण पर पुत्र वात्सल्य दिखा कर कालांतर में देह-मुक्त हो गयी। उस ऋणानुबंधन को मानते हुए ब्रह्म ने उन्हें अगले जन्म में वकुला मालिका नाम से पैदा करके भू वराह स्वामी के पास छोड़ा। वराह स्वामी ने श्रीनिवास को उनके संरक्षण में रखा। तब वे माँ की तरह श्रीनिवास की सेवा करने लगीं। औषध लाकर उन्होंने श्रीनिवास की चोट को ठीक किया। श्रीनिवास तब शेषगिरींद्र पर रहते विस्तार से क्रीड़ा-विनोद करने लगे। उन्होंने पूर्ण श्रृंगार लीलाओं से परिपूर्ण राजकन्या के साथ श्रीनिवास का विवाह कराना चाहा। सूत के इस रूप में बताने के बाद शौनकादि ने सूत से पूछा। "रमापति के लिए अनुकूल कन्या कहाँ मिली? उसके माता-पिता, भाई-बहन कौन हैं? इसके बारे में आप हमें विस्तार से बताइए।" इस रूप में पूछने पर सूत ने इस रूप में कहा। "भूमि पर आठवें द्वापांतर में कलियुग के आरंभ में विक्रमार्क मुख्य राजाओं का जन्म हुआ। उन्होंने धरती पर सुपालन किया। वे बाद में स्वर्ग लोक चले गए।

आकाश राज का चरित

तदुपरांत चंद्र वंशज पांडव दौहित्र वंश में सुवीर नामक एक राजा पैदा होकर सुपालन करते रहे। उसे सुधर्म नामक पुत्र पैदा हुआ। कुछ सालों के बाद सुवीर ने सुधर्म को राजा बनाकर सद्गति को प्राप्त किया।

सुधर्म अच्छे ढंग से राज्य पालन कर रहे थे। तब पूर्व में वेंकटाद्रि आकर पाप मुक्त होकर ब्रह्म के द्वारा वरदान प्राप्त करनेवाले माधव नामक ब्राह्मण वेंकटाद्रि की यात्रा करके स्वामी पुष्करिणी में स्नान करके, वराह स्वामी के दर्शन करके वहीं उसने तप किया था। वहीं पर अपने शरीर को छोड़ दिया था। वह माधव सुधर्म के जेष्ठ पुत्र के रूप में पैदा हो गया। उसका नाम आकाश राज रखा गया था। पूर्व में उस माधव की धर्मपत्नी के रूप में पैदा हुई सुरेखा नामक स्त्री पति की अच्छी सेवा करके कालांतर में देह-मुक्त हो गयी। वही फिर धरणी नाम से पैदा हो गयी। सुधर्म ने अपने पुत्र आकाशराज का विवाह इस धरणी देवी के साथ किया। यह बताकर सूत ने आगे इस रूप में बताया। उसके बाद एक दिन सुधर्म महाराज आखेट खेलने वन में गए। आखेट खेलते वे थक गए। एक सुंदर सरोवर के पास वे गए। वहाँ पर एक सुंदर नाग कन्या को देखकर उस पर मोहित हो गए। विवाह करने के लिए उससे बहुविध प्रार्थनाएँ कीं। उसने अस्वीकार करते हुए इस रूप में कहा। ''हे राजन! तुम मानव हो। मैं नाग कन्या हूँ। इसलिए हमारा दांपत्य कैसे होगा। तुम अपना रास्ता नापो।'' कहते वह चली गयी। उसे छोड़ने में असमर्थ राजा ने बार-बार उससे प्रार्थना की। वह कन्या राजा पर दया करके अलग जाने की जगह राजा से पूछा। ''तुम कौन हो?'' पूछने पर नृपति ने अपने कुल, गोत्र, नाम आदि के साथ-साथ अपने को राजा के रूप में बताया। तब उस नाग कन्या ने राजा की ओर देखकर कहा। ''हे भूनाथ! तुमको पैदा होनेवाला पुत्र नाग लोक में होगा। मेरा पिता कौन है? ऐसा सवाल वह करेगा। तो उसे क्या जवाब देना है। तुम ही बताओ।'' तब सुधर्म ने इस रूप में कहा। ''तुमको अगर पुत्र पैदा होकर तुमसे पूछेगा तो मेरा नाम बताकर मेरे पास भेज दो। उसे मैं अपना आधा राज्य दे दूँगा।'' कहते प्रमाण के रूप में अपनी अंगूठी को उसे दे दिया। बाद में

वे अपने नगर में लौट आये। बाद में नाग लोक जानेवाली नाग कन्या ने गर्भ धारण किया। नाग लोक के राजा को इसका पता चलने पर भी उसने कुछ नहीं कहा। उलटा पुत्री का गर्भवती बनना उसे अच्छा लगा।

तोंडमान का चरित

नाग कन्या के गर्भ से श्रीकर चक्रवर्ती चिह्नों के साथ एक शुभ लग्न में एक सुंदर पुत्र का जन्म हो गया। नित्य प्रति उसका विकास होता रहा। एक दिन उस बालक ने अपनी माँ से पूछा 'माँ ! मेरे पिताजी कौन हैं?' सुनकर नागकन्या ने अंदर ही अंदर हँसते हुए बालक को गोद में लेकर लालन करते हुए कहा। ''हे पुत्र! तुम्हारे पिता का नाम सुधर्म राज है। पृथ्वी पर बहुत बड़ा शासन करनेवाले राजा हैं। उनके पास तुमको निर्भय होकर जाना चाहिए। वहाँ जाकर तुम सुख प्राप्त करो पुत्र! तुम्हारे पिताजी तुझे आधा राज्य देंगे। आधा राज्य प्राप्त करके हे पुत्र! तुम धर्मानुसार शासन करो। मेरा स्मरण करते रहो। यहाँ तुझे कोई काम नहीं है। तुम अब अपने पिताजी के पास जाओ। अच्छे उपदेश देकर दुलार करते हुए जाने वाले मार्ग के बारे में भी उसने बताया। तब बालक अपने मातामह नागराज को नमस्कार करके, बाकी भुजंगों को भी प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त करके, अपनी माँ को दंड-प्रणाम करके पाताल बिल के मार्ग से आने लगे। तब उसकी माँ ने अपने पुत्र को लेकर पृथ्वी के ऊपर तक आकर, सुधर्म राजा के द्वारा दी गयी अंगूठी को अपने पुत्र को दिया। पुत्र की उंगली पर उसे पहनाया। उसका पुत्र फिर उसे पुनः प्रणाम करने पर माँ ने आशीर्वाद दिया। 'दीर्घायु बनकर, हरि का भक्त बनकर, चक्रवर्ती बनकर जगत्प्रसिद्ध बनो।' आशीष देकर सिर पर सहलाकर, लाड़ प्यार से गाल पर चुंभन लेकर अपने पुत्र को नाग कन्या ने विदा किया। फिर वह अपने पाताल लोक चली गयी। तब बालक नारायण पुर

पहुँचकर सुधर्म राजा के पास गया। राजा को नमस्कार करनेवाले बालक को देखकर सुधर्म ने पूछा। 'हे लाडले पुत्र! मुझे क्यों नमस्कार करके यहाँ खड़े हो गए हो? तुम कौन हो? तुम्हारे माता-पिता कौन हैं?'' बालक निडर होकर ''हे नरनाथ! मेरी माँ नाग कन्या है। पिता सुधर्म महाराज हैं।'' स्पष्ट रूप से कहा। फिर माता के द्वारा दी गयी अंगूठी को दिखाया। उस अंगूठी को देखकर राजा ने अपने मंत्री, पुरोहित, बंधु मित्रादि को उसे दिखाकर, पूर्व में नाग कन्या के साथ किए गए वृत्तांत को बताया। नाग कन्या को अंगूठी देने की बात भी बतायी। उन सबको सब कुछ बताकर अपने पुत्र को सादर और प्रेम के साथ उसे तोंडमान नाम रखा। तदुपरांत सुधर्म अपने पुत्र तोंडमान को उपनयन, विवाह आदि संस्कार करके बहुत सुखी रहे। कुछ समय के बाद अपने पुत्र आकाशराज को राजा बनाकर और तोंडमान को युवराज बनाकर सुधर्म राजा ने मुक्ति प्राप्त की। तब आकाशराज और तोंडमान ने भिन्नोदर होते हुए भी अत्यंत स्नेह के साथ निजी भाईयों की तरह नारायण के भक्त बनकर सुज्ञानयुक्त होकर सुशासन किया। उनमें जेष्ठ आकाशराज संतानहीन होने से चिंता करने लगा। एक दिन आकाशराज ने बृहस्पति को नमस्कार करके अपनी चिंता के बारे में बताया। ''हे सद्गुरुवर्य! मुझे संतान नहीं हुई है। पता नहीं मैंने कौन से कर्म किए हैं? क्या कारण है। आप बताइए।'' राजा की इन बातों को सुनकर बृहस्पति ने कहा। ''तुमने कितने भी पाप क्यों न किए हों, उससे मुक्त होने का एक उपाय है। वह यह है कि तुम संतान की इच्छा से अचल भक्ति के साथ पुत्र कामेष्टि यज्ञ करो। तुम्हें पुत्र संतान होगी।'' इस रूप में बृहस्पति ने बहु हित वाक्य बताये। राजा ने उन्हें सुनकर उनको नमस्कार करके यज्ञ करने के प्रयत्न को शुरु किया। कनक हल के साथ भूमि को जोता।

पद्मावती का उदय

कनक हल से भूमि को जोतने से भूमि से सहस्र दलवाला पद्म बाहर निकला। राजा ने उस सहस्रदल पद्म को देखा। 'धरती में यह सहस्र पद्म कैसे पैदा हो गया।' उसे निकाल कर देखने पर उस पद्म के मध्य में अद्भुत ढंग से एक बालिका दिखाई पड़ी। तब राजा ने सभी लोगों को बुलाकर भक्ति से पद्म में स्थित उस बालिका को दिखाया। तब अशरीरी ने कहा। ''हे राजा! बहुत अच्छा हुआ। तुम इस बालिका को अपनी संतान मान कर पालो। तुम्हारी जय होगी।'' इस रूप में अशरीरी के बोलने से राजा ने उस बालिका को लेकर लाड़ प्यार देते हुए आदरता के साथ अपने मंदिर ले जाकर पत्नी को दिखाया। उनकी पत्नी इस बालिका को पाकर बहुत आनंदित हुई। राजा ने अपनी पत्नी से इस रूप में कहा। ''सुनो यह बालिका अयोनिजा है। इस बालिका को हमें भगवान ने ही दिया है। संतोष के साथ अब इस बालिका का पालन-पोषण करो।'' इस रूप में बालिका के माता-पिता ने उसे बहुत लाड़-प्यार देते पाल-पोस कर, बचपन की सारी क्रिड़ाओं से बहुत आनंद को प्राप्त किया। उस कन्या के अपने घर आने के मुहूर्त बल से आकाशराज की पत्नी गर्भवती हो गयी। सभी बुजुर्गों को बुलाकर राजा ने पाँचवें महीने में अपनी पत्नी का सीमंत महोत्सव करवाया। आकाशराज की पत्नी के नौ मास पूरे हो गए। दसवें महीने में कन्या राशि में शुक्ल पक्ष दशमी के दिन, रोहिणी नक्षत्र में शुक्रवार के दिन एक शुभ मुहूर्त में संध्या के समय नंदन नामक एक पुत्र पैदा हुआ।

तब राजा ने स्नान करके संतोष के साथ ब्राह्मणों को बुलाकर उन्हें नव धान्य, धन, सहस्र धेनु, दस हजार घोड़े, छत्र-चामरादि सकल वस्तुओं को शास्त्र प्रकार से दान दिया। अपने निज गुरु की पूजा करके

तदनंतर नामकरण महोत्सव किया। पुत्र का नाम वसुदान रखा गया। पुत्री का नाम पद्मवती रखा गया। तब राजा ने अनेक सहस्र ब्राह्मणों को भोजन खिलाया। बहुत लाड़ प्यार से पुत्र और पुत्रिका का पालन पोषण करने लगे। वे अच्छे ढंग से बड़े होने लगे। मानो क्षीरसागर के मंदिर के मध्य में लक्ष्मी, चंद्र के समान आकाशराज के गृह मध्य में पद्मावती और वसुदान प्रकाशित हो रहे थे। राजा ने दोनों को सारी विद्याओं को सिखाया। पुत्र का उपनयन संस्कार करवाया। 'पद्मावती को क्या उचित वर प्राप्त होगा?' ऐसी चिंता करने लगे। उन्होंने अपने गुरु को बुलाकर अपनी चिंता के बारे में बताया।

''हे पुण्यात्मा! गुरुचंद्र! पुत्र कामेष्टि आपकी अनुमति से करते समय भूमि को जोतने पर तब वहाँ पद्म प्राप्त हुआ। उस पद्म में से बालिका प्राप्त हुई। उस बालिका का नाम पद्मावती रखा गया। क्या इस भूतल में ऐसी पद्मावती के लिए उचित वर प्राप्त होगा?'' राजा की इस चिंता को जानकर गुरु ने कहा। ''हे नृपति! तुम्हारी पुत्री के लिए भूतल में ही उचित वर प्राप्त होगा। हे राजन! आप संतोष के साथ रहिए।'' गुरु ऐसा आदेश देकर लौट गए। तब राजा पद्मावती को देखकर संतोष के साथ रहने लगे। अत्यंत लाड़-प्यार के साथ पालन-पोषण करने लगे। अपनी पुत्री को सुंदर दिव्य वस्त्र, अनेक भूषणों के श्रृंगार से शोभित देखकर वे बहुत आनंद का अनुभव कर रहे थे।

जनता के द्वारा पुण्यात्मा के रूप में प्रशंसित होकर आकाशराज धर्मानुसार शासन कर रहे थे। अपनी पत्नी और संतान के साथ बहुत सुखी रहने लगे थे। तब दूसरी ओर वेंकटाद्रि विभ श्री वेंकटेश्वर पद्मावती के साथ विवाह करने को सोच रहे थे। पद्मावती ने नव यौवन में प्रवेश किया। तब वसंत ऋतु शुरु हो गयी। सारे वन और कानन फल-

फूलने लगे। फूल खिलने लगे। उन फूलों पर भ्रमरों की झुंड मंडरा रही थी। वसंत ऋतु और इस प्रकार के मौसम में कोयल बोलने लगी। तोते-मैना बोलने लगे। पिक पक्षीगण कोंपलों को खाकर मद मत्त से कूकने लगे। फूलों पर बैठ कर भ्रमर मकरंद पान कर रहे थे। तोते पके फलों को खा रहे थे। सारे पक्षीगण अत्यंत उत्साह से कलरव ध्वनि कर रहे थे। इस रूप में सारे श्रृंगार वन नेत्र पर्व लग रहे थे। पद्मावती अटारी से फूलों को बार-बार देख रही थी। उसके मन में वन विहार करने की इच्छा पैदा हो गयी। अपनी सखियों से बात करके, उन्हें राजी करके अटारी से उतरकर माँ के पास आकर इस रूप में कहा। ''हे माँ ! श्रृंगार वन अत्यंत सुंदर और कनक वनों की तरह लग रहे हैं। इसलिए मैं सखियों के साथ वहाँ जाकर आपके लिए अच्छे-अच्छे फूल तोड़ लाऊँगी।'' पद्मावती की बातें सुनकर उसकी माँ ने कहा। ''हे पुत्री! फूल तोड़ने तुम जाओगी तो सारे जन देखकर हंसेंगे। तुझे वन में मैं जाने नहीं दूँगी। चाहे तो अपनी सखियों को भेजो। बड़े-बड़े पुष्प वे तोड़कर लायेंगी।'' माँ की इन बातों को सुन कर पद्मावती रूठ गयी। पद्मावती चिंता मग्न होकर, बिना भोजन किए शय्या पर लेट गयी। पद्मावती के रूठने से उसकी माँ ने आदरता से उसे बुलाकर उसे समझाने बुझाने की कोशिश की।

पद्मावती देवी का वन विहार

अपनी सुंदर पुत्री को मनाने उसकी माँ ने इस रूप में कहा। ''वन में मत जाओ, कहने मात्र से तू रूठ गयी। उठो अब।'' तब उसकी सखियों को और ब्राह्मण स्त्रियों को बुलाकर पद्मावती के साथ भेजते हुए चल्दी के साथ सकल वस्तुओं को सखियों को देकर बहुत सुंदर ढंग से अपनी पुत्री के वन-विहार की तैयारी उसकी माँ ने की। तब पद्मावती अपनी सखियों के साथ वन विहार पर चली गयी। वहाँ पर सुंदर, कमलों

के सरोवर के पास पालकी उतरकर वन में विहार करने लगी। बड़े उत्साह से फूलों को तोड़ने लगी। सखियों से मिलकर वह आनंदोत्सव कर रही थी। वह ऐसा है कि उत्साह से फूलों को तोड़ कर सखियों पर डाल कर हंसने लगी थी। मधुर फलों को बार-बार काटकर सखियों को देने लगी थी। सखियों पर परिहास करते नीलकंठों से स्पर्धा करते हुए क्रीड़ा कर रही थी। राज हंस की तरह चलते सखियों को रिझा रही थी। जानबूझ कर पक्षियों की तरह कूक उठ रही थी। बार-बार तोतों की तरह बोलने लगी थी। भृंगियों की तरह गाती वह मीन नयनी सबमें उत्साह बढ़ा रही थी। चमेली, पुन्नाग, मौलसिरि, जुही, संपंगी, गेंडे, मंदार आदि को बड़े पैमाने पर तोड़कर उल्लास से एक दूसरे पर फेंक रही थी। हठलाहट के साथ चलते, कर्कश व्यवहार करते, परिहास उपहास करते, पेड़ों के नीचे सखियों के साथ झूले झूलते, पलास फूलों की वसंत बना कर, सखियों को इकट्टा करके, दांत की पिचकारियों से वसंत छिढ़काकर अट्टाहास कर रही थी, धरती पर गिरे पुष्प-रेणुओं को इकट्ठा करके एक दूसरे पर फेंकते, हांफते, हंसते, बड़बोली करते कमल सरोवर के पास खेल रही थी। उत्साह के साथ सरोवर में उतरकर जल क्रीड़ा करने लगी थी, तट पर चढ़कर सबको समीप बुलाकर सबको साड़ियाँ दिलायी। उसके बाद सारी सखियाँ मिलकर पद्मावती को मृदुल वस्त्र से जल को पोंछ कर एक सखी ने रेशमी लहंगा पहनायी। सुंदर सुगंधित सरिगे फूलों की साड़ी को रेशमी लहंगे पर एक ने पहनाया। कटि बंध, कमर बंध एक ने बांधा। एक ने गोट के साथ रहनेवाली चोली पहनायी। एक ने भासुर नवीन आभरणों को सर्वांगों पर पहनाया। रेखिणी, केवडों के फूलों से चोटी बनायी एक ने, एक ने ललाट पर तिलक लगायी, एक ने आंखों में काजल लगाया, एक ने शरीर भर परिमल गंध लेप किया। चारों दिशाओं में सौरभ के फैलते जुही के चामरों से हवा भरी एक ने। इस रूप में

पद्मावती का श्रृंगार करके उसे दिखाने दर्पण दिखाया एक ने। इस रूप में सखियों ने पद्मावती को सारे उपचार किए। तब पद्मावती ने सारी ब्राह्मण स्त्रियों को हलदी, कुंकुम, फूलों की मालाएँ, फलादि भक्ति से समर्पित करके सत्कार किया। उन स्त्रियों ने तब पद्मावती को आशीर्वाद दिया। बाद में माँ के द्वारा भेजी चल्दियों से पंच भक्ष्य परमान्न सबको बांट कर भोजन किया। भोजन करके हाथ धोकर उस विलासवती के लिए वन के मध्य में बनायी गयी फूलों की शय्या पर बैठ कर पद्मावती ने सबको भेंट प्रदान की। तब वह आराम कर रही थी।

पद्मावती से नारद का संभाषण

तब उस वन में अद्भुत ढंग से देवमुनींद्र नारद पहुँच गए। उन्हें देखकर सखियों को चिंता हुई। 'आप कौन हैं.' पूछने पर उनसे नारद ने इस रूप में कहा। ''मैं पराया नहीं हूँ। तुम्हारे राजा का गुरु हूँ।'' यह सुनकर सब उठकर गुरु भक्ति से पद्मवती ने नारद को आसन देकर नमस्कार किया। तब नारद ने कहा। ''हे वनज लोचना! तुमको विवाहसिद्धि शीघ्र ही होगी।'' ऐसा आशीर्वाद दिया। पद्मावती को इससे संतोष हुआ। सलज्जित होकर बिना कुछ बोले वह रह गयी। इसे देखकर फिर से नारद ने कहा। ''हे कन्या! मेरे सामने तुम्हें लज्ञा करने की जरूरत नहीं है।'' ऐसा बोलते उसे पास बुलाकर बैठने के लिए कहा। फिर हाथ दिखाने के लिए कहा। तब पद्मावती ने कहा। ''हे मुनिवर्य! मेरे पिता बनकर मेरे हाथ को देखिए।।'' कहते हाथ बढ़ाया। तब नारद ने मंदहास करते हुए पद्मावती के हाथ को पकड़कर जोतिष बताते इस रूप में कहा। ''तुम्हारे हस्त में महान सुलक्षण रेखाएँ हैं। साफ-साफ सुनो री। ठीक-ठीक बताऊँगा। स्वस्तिक, पद्म, छत्र, चामर, यव, कुलिश रेखादि अखिल शुभ शुभतर रेखाएँ तुम्हारे हस्त में हैं। तुम्हीं देख लो इस रीति में।'' कहते

रेखाएँ पद्मावती को दिखाकर फिर से इस रूप में कहा। ''फूलों के किसलय की तरह मृदु रहनेवाला तुम्हारे वाम हस्त में महान कांतिवान मांगल्य रेखा चमक रही है। हे मीन नयनी! तुम्ही देख लो। इस रेखा के बल से साक्षात नारायण ही तुम्हारा पति होगा। तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी। हे पुत्री! तुम लक्ष्मी की तरह संतोष के साथ रहो।'' कहते पद्मावती को सुंदर सर्वांग सौंदर्य कलित सारे लक्षणों को बताकर मुनींद्र लौट गए।

उस दिन वेंकटाद्रि पर श्रीहरि प्रातःकाल ही अच्छी तरह भोजन करके बड़े उत्साह से कनक वर्ण वाले वस्त्र पहन कर, किनारे पर मोतियों से जटित कमर बंध कमर पर बांधकर, बालों को संवार कर, फूलों से सजाकर, श्रेष्ठ वस्त्र से बनी रुमाल पहन कर, सरिगे फूलों जैसी शुभ्र वस्त्र को कंधे पर लटकाकर, भूषणों को पहनकर, चमकती तिरुमणि, तिरुचूर्ण आदि को ललाट पर धारण करके, श्रेष्ठ सुगंध परिमल को शरीर पर लगाकर, चमकने वाले सुवर्ण के यज्ञोपवीत को धारण करके अत्यंत संतोष के साथ, सोने से बनायी गयी चूने की डिबिया, सुपारी और पान को रेशमी वस्त्र में लपेटकर कमर में बांध कर, हाथ में धनु और बाण लेकर आखेट के लिए निकल पड़े।

श्रीनिवास का आखेट पर जाना

देव योग से तब उनके समीप एक सुंदर घोड़ा आकर खड़ा हो गया। श्रीनिवास उस घोड़े पर सवार होकर वन में आखेट करने निकल पड़े। सारंग, भल्लूक, चमरी, शरभ, सिंह, शार्दूल, मृग आदि का पीछा करते हुए वे आगे बढ़े। तब एक हाथी ने श्रीनिवास पर हमला किया। श्रीनिवास ने उसका संहार करने का प्रयत्न किया। तब वह हाथी पर्वत से उतरकर भागने लगा। श्रीनिवास ने उसका पीछा किया। वह एकाध योजना दूरी पर भाग गया। वह पद्मावती जहाँ वन विहार कर रही थी, वहाँ पहुँच

गया। पद्मावती के समीप जाकर घींकार करने लगा। हाथी को देखकर पद्मावती के साथ रहनेवाली सखियाँ डरकर वृक्षों की आड़ में छिप गयीं। वहाँ से एक-दूसरे से बात करने लगी। ''हे सखियाँ! देखिए अद्भुत ढंग से मद से मत्त एक हाथी आ गया है। अब हम क्या करें? सर उठाकर उसकी तरफ मत देखिए। अपने बीचों-बीच पद्मावती को रखकर चारों तरफ घेर कर रहिए। हमें कुछ हो जाए तो कोई बात नहीं। किंतु पद्मावती की रक्षा अवश्य करनी चाहिए।'' कहते वे एक दूसरे की तरफ देखने लगी। तभी एक बड़े घोड़े को आते देखा। घोड़े पर एक पुरुष बैठा दिखाई दिया। घोड़ा उनके पास आकर खड़ा हो गया। उसे देखकर सखियाँ डर गयीं।

तब उस हाथी ने अपना पीछा करते हुए आये श्रीनिवास को देखकर बिना डरे अपने सूंड को ऊपर उठाकर श्रीनिवास को दंड प्रणाम किया। इसे देखकर श्रीनिवास ने उस पर दया करते हुए उसका पीछा करना छोड़ दिया। हरि के इस रूप में क्षमा करने पर वह हाथी विपुल वन में घुस कर चला गया। तब श्रीनिवास झुरमुट की आड में छिप गये। तब पौधों की आड़ में से देखनेवाली सखियों ने उस हाथी को तथा घोड़े को और उस पर आरूढ़ पुरुष को अचानक अदृश्य होते देखकर उन में से कुछ ने इस रूप में कहा। ''हे बहने! देखने पर अब यहाँ पर हाथी, घोड़ा और उस पर बैठा पुरुष दिखाई नहीं पड़ रहे हैं। यह सब माया के रूप में लग रहा है। यह किसी की महिमा है। या सिर्फ एक झूठ था'' ऐसा कुछ ने कहा। ''हम भ्रांति में थीं'' कुछ ने कहा। ''शायद हमने सपना देखा।'' कुछ ने कहा। ''थकावट से हमें ऐसा लगा है।'' ऐसा कुछ ने कहा। ''नहीं नहीं यह कोई विचित्र है।'' कुछ ने कहा। इस रूप में सखियों ने विविध रूप में प्रतिक्रिया व्यक्त की। यह सुनकर पद्मावती ने हँसकर

सखियों को पास बुलाया। पहले की तरह पद्मावती अपनी सखियों के साथ शतरंज खेलने लगी।

श्रीनिवास के द्वारा पद्मावती को देखना

श्रृंगार वन में अपनी सखियों के साथ शतरंज खेलनेवाली पद्मावती को श्रीनिवास ने अद्भुत ढंग से देखा। श्रीनिवास ने झाड़ियों की आड़ से पद्मावती के रूप लावण्य को तथा विलास रेखाओं को देखा। उन्हें बहुत अच्छा लगा। तब उन्होंने मन में ही इस रूप में सोचा। ''इस तरल लोचना के रूप सौंदर्य को देखने से लगता है कि यह रति से, विमल भारती से और पार्वति से, श्री लक्ष्मी से भी अतिशय सौंदर्यवाली है। यह मुझे देखकर कैसे मोहित होगी।'' ऐसा सोचते हुए पद्मावती के यौवन सौंदर्य को नेत्रपर्व के रूप में देखकर मन में ही उसकी प्रशंसा इस रूप में की। ''पाद, जांघ और उरु हाथी के सूंड को भी लज्जित करनेवाले हैं। कटि मध्य, कुच युग्म चक्र मृग कंदूक को हरानेवाले हैं। हस्त, कंठ, हारादि कमल, शंख और चंद्र को हरानेवाले हैं। भासुर अधर, दांत, नासिका बिंब फल, कुंद और तिल पुष्पों की तरह हैं। इतने सुंदर ललितांगी को पहले कभी नहीं देखा। वह भी इस जंगल में देखा। ब्रह्म ने इस सुंदरी को कैसे सृजन किया?'' कहते पद्मावती की प्रशंसा करते फिर इस रूप में सोचा।

''कान, नेत्र, भ्रू युग्म श्रीकारब्ज पत्र और कंदर्प चाप को जीतनेवाले हैं। मानो इस कांता के रूप को सुवर्ण को पीसकर उसमें अमृत रस को डाल कर अति सुंदर और महाद्भुत रूप में मेरे लिए विधाता ने बनाया है। अगर वह सच नहीं है तो इस प्रकार की शरीर-कांति के साथ अवनि में ऐसी कांता क्यों होगी? शायद संभव नहीं है। बड़े तप करने के बाद ही और बहुत पुण्य करने के बाद ही ऐसा रूप इस सुंदरी को प्राप्त हुआ है। कमलासन ब्रह्म ने सर्वकांति पुंजों के साथ अतुलित सौंदर्यवति को

बनाकर पद्म में रखने से, वह आकाशराज को मेरे लिए ही प्राप्त हुई है। इसलिए इस सुंदरी के साथ मैं शीघ्र ही विवाह कर लूँगा।'' इस रूप में श्रीनिवास को पद्मावती पर मोह बढ़ने से पद्मावती के समीप धीरे-धीरे जाने लगे। जाते-जाते फूलों को तोड़कर 'हे सुंदरी! इन फूलों से तुझ पर तलम्ब्रालु (विवाह के समय वधु के सिर पर डाले जाने वाले अक्षत) डालूँगा।' ऐसा इशारा करते हुए फूलों को फेंकने लगे। बहुत आनंद से श्रीनिवास पद्मावती के समीप पहुँच गए। तब पद्मावती ने श्रीनिवास को देखकर डरकर साड़ी के सोने की आंचल को घूंघट के रूप में सर पर डाल लिया। फूलों की झाड़ी में छिप गयी। बिना हिले डुले अपनी सखियों की ओर ताक कर लाड़ली बोली में इस रूप में कहा। ''हे सखियाँ! बिना किसी हिचकिचाहट के राज कन्या विहार करनेवाली जगह पर इस रूप में पराये पुरुष को नहीं आना चाहिए। भय के साथ जल्दी क्यों करना है? मेरे समीप मत आइए।'' इस रूप में पद्मावती के बोलते देखकर तब सखियाँ पद्मावती के सामने खड़े होकर श्रीनिवास से पद्मावती को छिपाने लगीं। सखियों ने श्रीनिवास की तरफ देखते हुए लज्जित होकर आगे इस रूप में कहा। ''राज कन्या यहाँ पर होते तुम पराये पुरुष यहाँ क्यों आये हो? तुमको कोई भय नहीं है क्या? यहाँ से चले जाओ।'' कहते श्रीनिवास को वहाँ से भगाने की कोशिश की। तब चक्रधर हँसते हुए ''हे मीन लोचना! तुम्हारी राज कन्या से मुझे प्रेम हो गया है। इसलिए बात करने आया हूँ। तुम लोगों से मुझे कोई काम नहीं है। चले जाइए।'' इस रूप में पद्मावती की सखियों को दूर भेजने की कोशिश की श्रीनिवास ने। श्रीनिवास की बातें सुनकर पद्मावती ने अपनी सखियों को पास में बुलाकर कहा। ''बंधु के रूप में तुमको बुलाकर डरा रहा है। यह कौन है? इसके बंधु कौन हैं? इसके कुल गोत्र के बारे में विशद से पता लगा लीजिए।'' पद्मावती ने अपनी सखियों से कहा। तब सखियाँ श्रीनिवास

की तरफ पलट कर ''हे शबर! तुम्हारे माता-पिता कौन है? गोत्र और कुल कौन-सा है? बताओ'' सखियों के इस रूप में पूछने पर तब श्रीनिवास ने अपने बारे में बताया।

श्री हरि के द्वारा अपने वृत्तांत को पद्मावती की सखियों को सुनाना

श्रीनिवास ने पद्मावती की सखियों को देखकर इस रूप में कहा। ''हे वारिज लोचन! स्नेह से मैं अपने कुल, गोत्र के बारे में आपको बताऊँगा। राजा की बेटी के साथ मेरे प्रेम को बताने से मैं आपको विशेष उपहार दूँगा।'' ऐसा कहते फिर से कहा। ''मेरे कुल शीतांश (क्षत्रीय कुल), वशिष्ट गोत्र, पिता वसुदेव, माँ देवकी देवी, बल भद्र मेरा भाई, सुभद्रा देवी मेरी बहन, अर्जुन मेरा साला, धर्मराजादि मेरे बंधु वर्ग हैं।'' श्रीनिवास के इस जवाब को सुनकर पद्मावती की सखियों ने हँसते हुए कहा 'तुम्हारा शरीर इतना काला क्यों है?' तब श्रीनिवास ने जवाब दिया ''कृष्ण पक्ष को आधी रात के समय माता-पिता से मैं पैदा हो गया। इसलिए मेरा शरीर नीले रंग का हो गया है। इसलिए लोग मुझे कृष्ण कह कर पुकारते हैं। अब मेरे कुल गोत्र के बारे में आपको पता चल गया न। इसलिए तुम्हारी कन्या के कुल, गोत्र आदि के बारे में मुझे भी बताइए।'' श्रीनिवास की बातें सुनकर सखियों ने कहा। ''चंद्र वंश का कुल, अत्रि गोत्र के राजा आकाशराज की पुत्री है यह, भूतल में बड़ी हुई पद्मावती इसका नाम है। बचपन से हमारे साथ खेलते-कूदते बड़ी हुई है। हमें हमेशा सकल वस्तुओं को देखकर स्नेह के साथ हमारे साथ रहती है। यह सदा हम पर कृपा करती रहती है।'' सखियों की इन बातों को सुनकर श्रीनिवास ने इस रूप में कहा। ''हे अँबुज लोचन! तुम लोगों पर कृपा करनेवाली सुवासिनी का स्नेह प्राप्त करने के लिए मैं आया हूँ। बिना किसी संदेह के मेरे साथ प्रेम करने के लिए अभी अपनी सखि से डटकर कहिए।''

पद्मावती का श्रीनिवास से बहस करना

यह सुनकर पद्मावती ने शीघ्र ही अपनी सखियों को पास बुलाकर गुस्से में उन्हें डांटते हुए श्रीनिवास की तरफ देखकर इस रूप में कहा। ''हे निषादेंद्र! शीघ्र ही तुम दूर चले जाओ!'' यह सुनकर विष्णु ने इस रूप में कहा। ''हे ललितांगी! इस रूप में निष्ठुर क्यों हो रही हो! तुम प्रेम के साथ बात करो। उत्साह से कन्यापेक्षा से यहाँ आया हूँ। तुम्हारे साथ विवाह करने के लिए मैं योग्य हूँ। पराया नहीं हूँ। कन्यादान करनेवाले तुम्हारे जनक राजा को अपार सुख प्राप्त होंगे। जब मैंने तुम्हें चाहा। तभी मुझे तुझे दान देना चाहिए। चंद्र वंशज मुझ से दूर रहने का संशय छोड़कर मेरे साथ विवाह कर लो।'' इसे सुनकर पद्मावती ने कहा। ''तुम निषाद हो। मैं चंद्र वंशज की तनया हूँ। हे मूढात्मा! इस कारण से तुमको दूर जाने के लिए जानबूझ कर कहने पर भी तुम दूर नहीं जा रहे हो। झगड़ा न करके बुरी बातें न करके चले जाओ। अगर मेरे पिताजी तुम्हारी बातें सुनेंगे तो बंदी बनाकर तुझे पिटवायेंगे। उसके पहले ही तुम यहाँ से चले जाओ।'' कहने से हरि ने इस रूप में कहा। ''न्याय और धर्म क्या है? मैं ब्रह्मचारी हूँ। तुम कन्या हो। इसलिए तुम्हारे साथ विवाह करना धर्मसम्मत है। यह अधर्म नहीं है। इसलिए तुम मुझ पर दया करके निष्ठुर बातें न करके मेरे साथ विवाह कर लो।'' कहते सुनकर पद्मावती ने भौंहें चढ़ाकर आंखें लाल करके चक्री को देखकर इस रूप में कहा। ''रे! हे निषाद! तुम इस रूप में बातें न करके चले जाओ। अपने रास्ते चले जाओ।'' कहते सुनकर हरि ने कहा। ''अपना बंधु समझकर तुम्हारे साथ प्रेम से बात कर रहा हूँ। दूसरे लोगों से मुझे मत पिटाओ। हे तरुणी!

अगर पीटना है तो तुम्हीं मुझे पकड़ कर पीटो।'' चक्री की इन बातों को सुनकर पद्मावती ने कहा। ''तुम इस रूप में मुझ पर पलाश के फूल फेंककर बार-बार मुझे गुस्सा करने के लिए विवश कर रहे हो। तुमको बचकर रहना पसंद नहीं है क्या? छी! जाओ!'' कहने से हँसते हुए हरि ने इस रूप में कहा। ''पैदा होनेवाला मरना सत्य है। इसलिए फिर चिंता क्यों है? तुमसे मिलने के बाद जगत में रहना या मरना दोनों अच्छे हैं! रमणी! इसके लिए मुझे चिंता क्यों है? सुनो। वांछित कार्य पूरा होने के बाद तुम पकड़कर पीटो या डांटो, इससे मुझे कोई भय नहीं होगा। हे नीरजाक्षी! अब तुम शीघ्र ही मुझ पर दया करो।'' कहते सुनकर पद्मावती ने इस रूप में कहा। ''मेरे पास इस रूप में बातें करना अगर आकाशराज को मालूम हो जायेगा तो तुमको इस लोक में रहने नहीं देंगे। हे कुमती! तुम्हें वह कष्ट क्यों? यहाँ से चले जाओ।'' कहते सुन कर हरि ने कहा। ''पैदा होनेवाले का मरना जिस रूप में सत्य है, तुमको किसी भी रूप में मैं नहीं छोड़ूँगा। तुम्हारे पिताजी विमल धर्मात्मा हैं! मुझे कोई बाधा नहीं देंगे। फिर भी बाधा से मैं नहीं डरता। वे तुम्हारे साथ मेरा विवाह करेंगे।'' ऐसा प्रीति से श्रीनिवास ने पद्मावती से कहा। सुनकर पद्मावती ने कहा। ''कंची के वरदराज, कावेरी के रंग, वेंकटाद्रि के वेंकटेश्वर के होते तुम्हें मुझे दान नहीं देंगे मेरे पिताजी। तुमको ऐसी भ्रांति क्यों है? जाओ हे निषाद! अपना बचपना छोड़कर जाओ!'' कहते सुनकर चक्री ने इस रूप में कहा। ''बार-बार जाओ कहते मुझे असमंजस में डाल रही हो। मुझ पर गुस्सा कर रही हो। हे शीतांश मुखी! तुम्हें छोड़कर मैं नहीं जाऊँगा।'' कहते पद्मावती ने इस रूप में कहा। ''अहो! अपने माता-पिता दूर रहनेवाली मुझसे इस रूप में बात कर रहे हो। हे निषाद! तुम चले जाओ!'' यह सुन कर हरि ने इस रूप में कहा। ''सुनो री! तुमने मुझे इस रूप में विवेक को सुनाया। तुम्हारे कितने भी बताने

पर मेरे भाग्य में जो लिखा हुआ है, उससे अलग कुछ नहीं होगा। तुम्हारे साथ परिणय करने के बाद मैं कहीं भी चला जाऊँ मेरे लिए कुशल ही होगा। हे मानिनी! इसलिए तुझे अपने गले में लिए बिना नहीं छोड़ूँगा।''

पद्मावति के द्वारा हरि पर पथराव कराना

कहते पद्मावती के समीप पहुँचनेवाले श्रीनिवास को देखकर पद्मावती को बड़ा गुस्सा आया। अपनी आंखें लाल करके, श्रीहरि का धिक्कार करते हुए, सखियों की तरफ मुड़कर 'इस निषाद पर पथराव करो' पद्मावती ने आज्ञा दी। तब पद्मावती की सखियाँ शीघ्र ही घोड़े पर सवार श्रीनिवास पर बड़ी मात्रा में पथराव करने लगीं। श्रीनिवास ने पथराव से अपने को बचाने की कोशिश की। पत्थर घोड़े पर लगे। घोड़ा घायल होकर नीचे गिर गया। तब श्रीनिवास घोड़े को छोड़कर आश्चर्यचकित होकर अति वेग से आनेवाले पत्थरों से अपने को बचाते हुए, सर के बाल खुलने से चारों दिशाओं में बचने के लिए भागने लगे। उत्तराभिमुख होकर वेंकटाद्रि पर चढ़ गए। अपने निवास स्थान वल्मीक में प्रवेश किया। फिर वकुला मालिका द्वारा बनायी गयी अपनी फूलों की शय्या पर ऐसा सो गए, मानो प्रलय काल में महाजल में वटपत्र पर सोने वाले परम पुरुष श्री हरि सो गए हों। तब इधर वन के मध्य में रहनेवाली पद्मावती ने अपनी सखियों को देखकर इस रूप में कहा। ''हे सखियाँ! अपनी माँ की बातों को अनसुना करके मैं इस वन में आयी हूँ। यहाँ पर कष्टों का अनुभव किया। आगे इस पुष्प वन में नहीं आऊँगी। अब बस है। शबर की बातों को आप मेरी माँ को मत बताइए। बताने से हमारे लिए वह लज्जा की बात होगी।'' कहते पद्मावती पालकी पर चढ़कर सखियों के साथ फूल और फलों को लेकर शीघ्र ही अपने महल पहुँच गयी। वहाँ महल में फूल और फलों को अपनी माँ को सौंपकर अपनी

जूही की शय्या पर लेट गयी। इस रूप में हरि के व्यवहार के बारे में सुनकर शौनकादि मुनियों ने 'तदुपरांत हरि ने कौन से प्रयत्न किए।' सूत से पूछा। तब सूत ने बताया। ''हे मुनिवर्य! अब आपको कर्णपर्व के रूप में बताऊँगा, उसके बारे में सुनिए। वह परात्पर परमात्मा विष्णु मनुष्य के रूप में कामुक बनकर मोह से विरह ताप में जलते हुए तनावग्रस्त होकर शय्या पर चादर ओढ़ कर लेट कर चिंता मग्न हो गए।

विरहतप्त श्रीहरि का वकुला माता के द्वारा परमार्श करना

लंबी सांस लेते और सांस छोड़ते शय्या पर लेटकर इधर-उधर करवट बदलते सोने की कोशिश करनेवाले श्रीनिवास के पास आकर उनकी अवस्था को देखकर दयालु वकुला मालिका ने इस रूप में कहा। ''हे पुत्र! वेंकट! उठो! भोजन करने में देर हो रही है। तुम्हारे लिए अन्न, परमान्न, भक्ष्य आदि बनाकर तुम्हें खिलाने के लिए मैं लायी हूँ। पेट भर खा लो।'' कहने से बोले बिना आँखों से आँसू बहानेवाले स्वामी को देखते हुए व्याकुल होकर वकुला मालिका ने इस रूप में कहा। ''हे मेरे पुत्र! इस रूप में आर्ती बनकर आंखों से आँसू क्यों निकाल रहे हो? इस रूप में रोने का हेतु क्या है? दिन में नहीं सोना चाहिए, ऐसी रीति को जानते हुए भी इस समय क्यों सो रहे हो? विपुल धैर्य, स्थैर्य रखनेवाले तुम इस रूप में दीन क्यों बने हो? उठो। बैठकर मुझे सब कुछ बताओ। तुम्हारी चिंता का क्या कारण है?'' वकुला मालिका का इस रूप में समझाने बुझाने से श्रीहरि कुछ बोले बिना लंबी सांसें छोड़ने लगे। इस रूप में उत्तर नहीं देनेवाले पुत्र की ओर देखकर डरकर वकुला मालिका ने इस रूप में कहा। ''आखेट खेलने जंगल जाकर वहाँ पर क्रूर मृगों को देखकर क्या डर गए हो? कहीं भूत, पिशाच तो नहीं लगे? या पत्थरों पर चल कर फिसल कर घायल हो गए हो? नालों में गिरकर उठकर आ गए

हो? हे पुत्र! सच सच शीघ्र बताओ। मैं चिकित्सा करूँगी। अगर नीचे गिर कर घायल हो गए तो तेल लगाकर मालिश करूँगी तो ठीक हो जाओगे। पत्थर पर फिसल कर नीचे गिर गए हो तो गरम पानी घाव पर डालना है। अगर कोई भूत लग गया तो भूत वैद्य को बुलाकर मंत्र करवाना है। अगर मृग भीति मन में बैठ गयी है तो पीठ पर थप-थप मारना है। इन चार चिकित्साओं में कौन-सी चिकित्सा मैं करूँ? तुम अगर सच-सच नहीं बताओगे तो मुझे कैसे मालूम पड़ेगा? हे पुत्र! मेरे मन से चिंता को दूर करने के लिए सच-सच बताओ।'' कहते नीचे से ऊपर तक श्रीनिवास के शरीर को सहलाते हुए पसीने से लथपथ शरीर पर पत्थरों से बनी चोटों को पहचान कर महा भीति से वकुला ने कहा।

''हे पुत्र! तुम्हारे शरीर से इस रूप में पसीना क्यों निकल रहा है? तुम्हारे कोमल शरीर पर पत्थरों की ये चोटें किस पाप से हुई हैं? धैर्यवान तुम इस रूप में दीन बनकर आंखों से क्यों आँसू बहा रहे हो? जो कुछ हुआ उसे मुझे सच-सच बताने के लिए कहती हूँ तो यह मौन कैसे?'' कहते ओढ़े हुए वस्त्र को हटाकर उठाकर वकुल मालिका ने श्रीनिवास को शय्या पर बिठा दिया। जहाँ-जहाँ चोट लगी थीं वहाँ पर दूसरा वस्त्र ओढ़ाकर, शरीर पर चंदन का लेप किया। ठंडे पानी से नेत्रों को साफ करके सहलाते-सहलाते श्रीनिवास को जगाकर, श्रेष्ठ जूही के फूलों से बने पंखे से हवा देकर श्रीनिवास की थकावट को दूर किया।

इस रूप में हरि की थकावट को दूर करने के बाद बड़ी दया और वात्सल्य के साथ वकुला देवी ने 'हे पुत्र! परमान्न खाओ' प्रेम से पूछा। फिर भी श्रीनिवास ने कोई जवाब नहीं दिया। पुत्र की हालत को देखकर वकुला मालिका व्याकुल हो गयी। फिर कहा। ''हे पुत्र! वेंकट! अपनी ज़िद को छोड़ो। तुम्हारे मन में यह कैसा विचित्र हो गया है?'' कहते

वकुला ने हरि की तरफ देखकर फिर से कहा। ''कहीं तुम वन में किसी सौंदर्यवती विलासी सुंदरी को देखकर विभ्रम होकर उसके मोह में गिर गए हो? कहीं तुम्हारे मन में उसका रूप बस गया हो? कहीं उस ललना ने तुम्हारे हृदय पर बाण छोड़ दिया हो? हे पुत्र! तुमने जिसे देखा क्या वह किन्नेरा तो नहीं है? कहीं गीर्वाणी भामिनी तो नहीं है? कानन जंगलों में घूमनेवाली चेंचीता तो नहीं है? गंधर्व कामिनी तो नहीं है? वनदेवता है या कहीं अप्सरा उर्वशी तो नहीं है? कहीं मेनका तो नहीं है? सर्वलक्षणों से शोभित रंभा तो नहीं है? तिलोत्तमा तो नहीं है? घृताचो तो नहीं है? इन दसों कन्याओं में किसे देखकर तुम आये हो? वह मुझे सच-सच बताओ।'' वकुला के इस रूप में बोलने से भी श्रीहरि सर झुकाकर ही चुप रहे। कुछ नहीं बोले। उसके नेत्रों से भाष्प निकलते ही रहे। इस रूप में दुःखी चक्री को देखकर वकुला मालिका ने भीति से फिर इस रूप में कहा। ''कहीं मोहिनी भूत तुम्हारे सामने खड़ी होकर मंत्र डाल कर गयी है क्या? गगन से कोई कामिनी भूत तुम पर सवार हो गयी है क्या? बताओ हे पुत्र! अगर नहीं तो इस रूप में मुझसे कुछ नहीं बोलने का क्या कारण है? मेरी व्याकुलता बिना कुछ बताये कैसे दूर होगी। मैं कौन-सी चिकित्सा करके तुझे ठीक सर सकूँ? एक शब्द भी मुझ से कहे बिना विकलात्मा होकर विवेकहीन होने से मेरा मन व्याकुल हो रहा है। आगे मेरा क्या होगा? तुम मौन धारण करके इस रूप में चुप रहोगे तो यहाँ पर आगे हमारा रखवाला कौन है? कम से कम उस वराह स्वामी को तो अपना वृत्तांत बताओ। इतना रहस्य क्या है? आत्मीयता से तुम्हारे मन की चिंता को मुझे बताओ। मैं नाना प्रकार से उस पर विचार करके तुम्हारी चिंता को निश्चय ही दूर करूँगी। इस रूप में मेरी ओर देख रहे हो। तुम जीवित रहने से ही मैं जीवित रहूँगी। तुम्हारे बिना मेरे लिए भी देह की जरूरत नहीं है। मैं भी यहीं पर खड़ी रहूँगी। निष्ठा से कन्या-दीक्षा और गुरु-निष्ठा में रहनेवाली मुझे परम गुरु और परम पुरुष पुण्यात्मा! वराह स्वामी ने तुझे पालने के लिए दिया। तुम जैसे पुत्र रत्न को जन्म दिये बिना मुझे पालने के लिए दिया। तुझ पर विश्वास रखते हुए मैं तुझे पालने लगी थी। आज तुम्हारे शोक को मैं सहन नहीं कर सकती हूँ। मुझ पर दया करके अपने मन की चिंता को मुझे बता दो। मैं उसकी पूर्ति करूँगी। मैं वचन नहीं तोड़ूँगी।'' कहते श्रीनिवास के हाथों में हाथ रखकर दबाते हुए, सिर पर हाथ से सहलाते हुए चक्री की आँखों के आंसू वकुला मालिका ने पोंछ दिया। यह सब करते उनकी आँखें भर आयीं। रोनेवाली माँ को देखकर माधव का मन पिघल गया।

श्रीहरि के द्वारा अपनी चिंता को वकुला से बताना

अपनी आँखें धीरे-धीरे खोल कर काम विकार मन में रहते हुए श्रीहरि ने इस रूप में कहा। ''हे जननी! प्रेम से तुम पूछ रही हो। मैं बताऊँगा। सुनो। एक हाथी का पीछा करते हुए मैं पर्वत से उतर कर गया। वहाँ सामने एक पुष्प वन दिखाई दिया। उस वन में एक सुंदरी विद्युल्लता की तरह अत्यंत सुंदर लावण्ययुक्त, सर्वलक्षण कलित सामने दिखाई दी। उस कांता के पैर कोमल कोंपल-पल्लव हैं। कटि सिंह जैसी है। जांघें केले के पेड़ के समान हैं। कमर गगन समान है। हस्त लाल कमल जैसे हैं। उसके स्तन सोने के कलश हैं। कंठ शंख जैसा है। सुंदर दर्पण जैसे गाल। चेहरा मानो शहद का कुँआँ जैसा है। दाँत जूही के फूल जैसे हैं। कान श्री लक्ष्मी जैसे हैं। नासिका तिल पुष्प जैसी है। उस ललितांगी की आंखें मीन जैसी हैं। भौहें सुंदर कलाओं से भरी हैं। मुख उसका चंद्र बिंब जैसा है। सर के बाल भ्रमर के पंख जैसे हैं। हे जननी! उस कामिनी के सौंदर्य का वर्णन ब्रह्म भी नहीं कर सकते हैं। मैं कैसे बता सकता हूँ? मेरे मन में वह बस गयी है। उसके साथ मेरा प्रियानुबंध बैठ गया है। मैं

उससे विवाह करना चाहता हूँ। हे जननी! अगर ऐसा नहीं होगा तो मैं सहन नहीं कर पाऊँगा। सर की चोट को ठीक करनेवाली तुझे छोड़कर जाने का कारण यही है। मुझे उसकी चिंता है। संतोष के साथ अगर मैं उसे प्राप्त नहीं कर सकता तो मैं सहन नहीं कर पाऊँगा। अब तुम ही शीघ्रता से उसे मेरे पास ले आओ। तब मैं संतोष के साथ यहीं रहूँगा। और किसी दूसरी जगह तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगा।'' इस रूप में हरि के कहने से तब वकुला मालिका ने हरि की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''हे पुत्र! तुमने जिस लतांगी को देखा है, उसका कुल, गोत्र सुनाओ। माता-पिता के विवेक और उसके विवेक के बारे में मुख्य रूप से जानने की जरूरत है। विवाह करने योग्य कन्या हो तो अवश्य विवाह करवा देंगे। उसका नाम क्या है? कहाँ रहती हैं? ठीक-ठीक बताओ। विवाह करवा दूंगी।'' वकुला मालिका की इन बातों को सुनकर वासुदेव ने महा-मोह से इस रूप में कहा। ''हे जननी! उस क्रम को निश्चय ही सुनो। सूर्य वंशी आकाशराज ने संतान के न होने से महा पुत्रकामेष्टि यज्ञ किया। उस क्रम में भूमि को जोतने से भूमि के अंदर से एक पद्म प्राप्त हुआ। उस पद्म में एक बालिका को देखकर उसे महल में लाकर आकाशराज ने उसे पाला पोसा। उसका नाम पद्मावती है। अगर धरती पर मेरे साथ उसका विवाह ब्रह्म ने निश्चय किया है तो मैं जीवित रहूँगा। नहीं तो मैं यहाँ नहीं रह पाऊँगा। ऐसे में मुझे वैकुंठ पुर लौट जाना होगा। हे माँ! सुनो। वह कन्या लक्ष्मी के समान है। इसलिए जन्म जन्मांतर पुण्य से उसी पुरुष को प्राप्त होगी। बाकी लोगों को प्राप्त नहीं होगी। पूर्व पुण्य फल से उसके साथ मैं बात कर पाया। ऐसी सुंदरी को छोड़कर आ गया हूँ। मुझे अन्न जल कैसे अच्छा लगेगा? अगर ऐसी कन्या मुझे प्राप्त होगी तो मैं जीवित रहूँगा। नहीं तो जीवित नहीं रहूँगा। यह सत्य है। उस पद्मावती ने मेरा विरोध करते हुए मुझ पर अपनी सखियों को भेज कर पथराव

करवाया है। उस पथराव से मेरा घोड़ा घायल होकर नीचे गिर गया। तब भागते हुए इस पर्वत पर चढ़कर मैंने अपने को बचा लिया। ब्रह्म ने ऐसी सुंदरी को बनाकर उसे कठोर बुद्धि दी है। उसने मुझे इतना कष्ट दिया है। मुझे चिंता दी है। ब्रह्म ने उस कांता को मेरे लिए बनाया है। इसलिए तुम अब मेरी सहायता करके उस कन्या को प्राप्त करने का उपाय बताओ। ऐसा करेगी तो उसके माता-पिता के, सहोदरादि बंधुओं के साथ मेरे भक्त जन प्रह्लाद, नारदादि परम भागवोत्तमों को साथ भेजूँगा। अनेक गो, भू, हिरन्यादि दान देने से जितना पुण्य होगा उतना पुण्य मांगल्य धारण करानेवालों को मैं दूँगा। इसलिए तुम मुझसे पद्मावती के साथ मांगल्य धारण कराओ।'' आगे इस रूप में कहा। ''उचित शुभ लग्न में उसके साथ मेरा विवाह कराने से तुम्हारे प्रति प्रीति बढ़ेगी। इसलिए शीघ्र ही विवाह कराओ।'' हरि ने उत्साह से कहा। तब स्नेह से वकुला ने कहा। ''हे पुत्र! यह परमाश्चर्य की बात है कि धरती में पद्म से इस प्रकार सुंदरी का जन्म होने का क्या कारण है? तुम मोद से इसके बारे में बताओ।'' यह सुनकर हरि ने इस रूप में कहा।

राम कथा को हरि वकुला को सुनाना : पद्मावती (वेदवती) का पूर्व वृत्तांत

हे माँ ! अच्छी तरह सुनो। पूर्व काल में त्रेता युग में दशरथ के पुत्र के रूप में जन्म लेकर, विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करके, शिव धनु को तोड़कर, जनक की पुत्री के साथ विवाह करके, अयोध्या पहुँचकर, अपने पिता की आज्ञा पर सीता और लक्ष्मण को साथ लेकर राम वनवास पर गया था। तब जंगल में जानकी ने एक माया मृग को देखकर शीघ्र उसे पकड़कर लाने के लिए मुझसे कहा था। मुझे ढूँढ़ते लक्ष्मण भी आ गया था। तब रावण नामक एक राक्षस वहाँ पर आकर सीता को

पकड़कर रथ पर लाद कर ले गया। तब सीता 'रामा' कहती व्याकुल हुई। उसे किसी ने नहीं छुड़ाया। तब अग्नि ने रावण से पूछा था कि ''हे दशग्रीव! यह सीता नहीं है। यह कौन है?'' तब सुनो। राम ने उस सीता को मेरे पास छोड़ कर एक ब्राह्मण की स्त्री को सीता की तरह बना कर उसमें रखकर चले गए। तुम्हारे स्नेह के कारण यह रहस्य मैंने तुमको बताया। इस रूप में शांति से बता कर सीता का वेश वेदवती को डाल कर ले आकर रावण को सौंपा। वह मूर्ख रावण सीता को वहाँ छोड़कर उस वेदवती पर कामुक होकर अपने साथ ले गया। अशोक वन में उसे रखा। रामा! कहते अपने को वह वेदवती सीता की तरह वहाँ पर अशोक वन में रही। इस रूप में वेदवती ही रावण के पास बंदी के रूप में रही। अग्नि ने सीता को अपनी पत्नी के पास छिपाकर रखा। मैंने मनुष्य के वेश में उस रावण से युद्ध करके उसका संहार किया। सीता को पाने के लिए मैंने सागर पर सेतु को बांधा। रावण, कुंभकर्ण आदि मुख्य राक्षसों का संहार किया। सबकी प्रशंसा प्राप्त करके रावण के पास बंदी के रूप में रहनेवाली सीता को देखकर 'अगर तुम अग्नि में प्रवेश करके आओगी तो ही तुमको स्वीकार करूँगा।' ऐसा कहा। तब वह सीता अग्नि में सुरुचिर भक्ति से कूद पड़ी थी। तब दो सीताएँ अग्नि में खड़ी होने से सीता को बुला कर मैंने पूछा था कि 'हे री! तुम्हारे साथ खड़ी वह दूसरी कौन है? सच सच बताओ!' तब सीता ने कहा ''दशकंठ मुझे पकड़कर लाते समय मैं चिंता का शिकार हुई थी। तब मैंने अग्नि देव से प्रार्थना की थी। अग्निदेव ने अपने पास रहनेवाली वेदवती को लाकर रावण को सौंपा और मुझे अपने में छिपा लिया था। वेदवती ने लंका पहुँचकर रावण की सारी हिंसाओं को झेला है। उसने मेरे लिए यह सब कुछ सहा है। तुम पर इच्छा से तप करनेवाली कन्या होने के कारण इस कन्या पर दया करके सत्करुणा से इसके साथ प्रेम से विवाह कर लो।'' इस रूप में सीता ने

मुझ से कहा था। तब मैंने इस रूप में कहा था। ''हे सुंदरी! अब मैं एक पत्नीव्रत हूँ। मैं इस सुंदरी के साथ विवाह नहीं कर सकता। हे रमणी! अगले जन्म में बड़े आनंद से इसके साथ विवाह करूँगा। अठ्टाईस द्वापरांतर के बाद कलियुग में अनेक भक्त जनों की रक्षा के लिए वेंकटाद्रि पर अवतार लेने पर इस कन्या के साथ मैं विवाह करूँगा। तब तक यह कन्या ब्रह्म लोक में रहेगी। बाद में जब मैं वेंकटाद्रि पर अवतरित होने पर तब यह भामिनी भूमि से उदय होगी, तब मैं इसके साथ विवाह करूँगा।'' ऐसा मैंने सीता से कहा था। यह पूरा रहस्य सिर्फ मुझे ही मालूम है। हे जननी! इससे बढ़कर जनक को तथा वेदवती को इस रहस्य के बारे में मालूम है। किसी पराये को नहीं मालूम इस रहस्य को आज मैंने तुमको बताया। इसे अपने मन में ही छिपा कर रखो। उसके बाद अपनी महिमा से मैंने उस वेदवती को अग्नि में ही छोड़कर सुरुचिर सीता को प्राप्त किया। विभीषण को पट्टाभिषिक्त बनाकर, लक्ष्मणादि कपि वीरों के साथ अयोध्या नगर पहुँचकर जनरंजक रूप से शासन किया। काल बीतता गया। तदुपरांत द्वापर युग में मैं ही वसुदेव को कृष्ण के रूप में पैदा हो गया। यही वल्मीक में पड़ा रहा।'' इस रूप में वकुला को हरि ने अपना पूर्व वृत्तांत सुनाया। यह सुनकर वकुला ने संतोष के साथ 'वेदवती के पूर्व वृत्तांत के बारे में बताओ' कहा तो हरि ने इस रूप में बताया। ''सुनो वकुला देवी! वेदवती की पूर्व कथा बताऊँगा। वह ऐसी है कि विप्र कन्या वेदवती ने मुझ पर मोहित होकर पति के रूप में मुझे पाने के लिए तप किया। तब उसे देखकर उस पर कामुक होकर रावण ने उसे पाने की कोशिश की। किंतु वेदवती ने उसका विरोध किया। वेदवती ने अपनी देह पर आशा छोड़कर विश्रवसु के पुत्र रावण को देखकर गुस्से में उससे कहा। 'मैं अवश्य ही तुझे हरि के हाथों से संहार कराऊँगी।' ऐसी प्रतिज्ञा वेदवती ने की। यह कहते वेदवती अग्नि में कूद

पड़ी। तब अग्नि ने वेदवती को अपने पास छिपाकर, रावण के द्वारा सीता का अपहरण करते समय वेदवती को सीता से भी सुंदर बनाकर सीता के रूप में उसे रावण को सौंप दिया। वेदवती को अपनी पत्नी स्वाहा देवी के पास छोड़ दिया। रावण के साथ वेदवती ने लंका पहुँचकर रावण को मेरे हाथों से संहार करवाया। इस रूप में वेदवती ने रावण से अपना बदला ले लिया। फिर अग्नि के पास रहनेवाली सीता को मुझे सौंप दिया। स्वयं वेदवती उस समय ब्रह्म लोक चली गयी। वहाँ पर महा तप किया। कुछ समय के बाद वही वेदवती पद्म में समाकर अवनि में आकाशराज को प्राप्त हुई। वही वेदवती पद्मावती के रूप में मुझे मोहित करके अपने आपको भूल गयी है।'' इस रूप में श्रीनिवास ने वेदवती के पूर्व वृत्तांत और पद्मावती के जन्म के बारे में वकुला को सुनाया। यह सुनकर वकुला ने स्वामी को देखकर कहा। ''हे देव! महानुभाव! पहले मैंने अज्ञानी होकर आपको मनुष्य मात्र के रूप में देखा। आप तो साक्षात ब्रह्म हैं। आप ही ब्रह्म के पिता हैं। आप ही महानिर्वाण संधाता हैं। आप ही विष्णु हैं, आप ही रामचंद्र हैं, आप ही कृष्ण देव हैं, आप ही वेदात्म हैं, आप ही सर्वतोमुख हैं, आप ही कर्ता हैं, आप ही भोक्ता हैं, आप ही विश्व हैं, आप ही वराह देव और शैलाधिप हैं। हे तोयज लोचन! आपकी इस माया को बिना जाने अपने पुत्र के रूप में आपसे प्रेम किया। हे महात्मा! आप ही ईश्वर हैं, यह मैं जान नहीं पायी।'' यह सुनकर विष्णु ने कहा। ''यहाँ पर आपने मेरी चोट को ठीक करके माँ के रूप में वात्सल्य दिया। आपका ऋण मैं कैसे चुका पाऊँगा। इसकी चिंता मुझे हो रही है।'' कहते विष्णु ने वकुला पर अपनी माया को डालकर उसे वात्सल्य सद्बुद्धि को प्रदान करके फिर से इस रूप में कहा। ''हे माँ! तुम मेरा विवाह कराओ'' स्नेह से उसी समय विवाह की बात चलाने के लिए कहा। तब वकुला देवी

ने हरि की ओर देखकर ''हे पुत्र! अब वह कन्या किस नगर में है। उस नगर के बारे में बताओ।'' इस रूप में वकुला के पूछने पर हरि ने कहा।

नारायणपुर वर्णन

''इस पर्वत के नीचे अमरावती के रूप में प्रकाशवान एक नगर है। वह नगर ऐसा है। उस नगर में वेद वेदांग प्रवीण, वेदांत वेत्तों के रूप में प्रचलित विप्रगण, प्रबल बहु शौर्य पटु भूपाल, मणिकांचनोज्वल सुंदरीगण, अधिक संपन्न वैश्यगण, ब्राह्मण और अन्यों की सेवा करनेवाले शुभ धुरंधर शूद्र जन रहते हैं। इन सबके होते वह नगर गोपुर, ललित, कलित, रत्नकांति, परिभ्रांत राजहंस, पथनिरोधक सालविभ्राज के होते नारायणपुर अत्यंत प्रसिद्ध हुआ है। उस नगर पर महामह आकाशराज धर्मात्मा के रूप में शासन कर रहे हैं। सज्जनों के अभीष्ट के अनुसार जनों को सुशासन दे रहे हैं। गुरुजन आदि बुजुर्गों पर सुभक्ति और विनय के साथ सेवा करनेवाले राजा को देखकर देवतागण भी राजा की प्रशंसा करते रहते हैं। सप्तांगों को अपने अधीन रखकर, आत्मा के अंदर दुष्टांग रीति को त्याग कर, बाह्य शत्रुओं को हराकर, अंतर्विरोधियों को दबाकर, बाह्य पुण्यादि प्रभावों को देखते हुए, अंतरादि पर आत्मा को खड़ा कर, बाह्य चक्रों को उत्साह से नियंत्रण में रखकर, अंदर के चक्रों के दर्शन कर, दीन जनों के उद्धारक, विष्णु चरणों में समर्पित, विष्णु पर मन को केंद्रित कर, आकाश और पृथ्वी पर शासन करनेवाले उस आकाशराज को तोंडमान नामक एक परम भक्त लाड़ला भाई है। वसुदान नामक एक पुत्र है। पत्नी धरणी देवी और पुत्रिका सरस मानस पद्मावती है।'' ऐसा चक्री ने नारायणपुर वर्णन और उसके साथ आकाशराज का परिचय भी दिया। तब वकुला मालिका ने ''ठीक है हे पुत्र! इस पर्वत से उतरने के मार्ग बताओ!'' पूछा। तब माधव ने इस रूप में कहा। ''हे जननी! ठीक

से बताऊँगा। सुनो। हे माता! इस मार्ग से पर्वत से उतरकर, वहाँ प्रवाहित होनेवाले पावन पुण्य तीर्थ में स्नान करके, उसके समीप मुनि से पूजाादि प्राप्त करनेवाले शिवलिंग के दर्शन करके, पूजा कर, 'श्रीनिवास का विवाह शीघ्र ही हो' ऐसी मनौती शिव से कर, आगे शुकाश्रम पहुँचना। वहाँ रहनेवाले शुक महर्षि को प्रणाम कर, वहाँ से अगत्स्य आश्रम पहुँच कर मुनि को दंडवत कर, अगस्त्य मुनि निर्मित शिवालय में जाकर शिव भगवान की पूजा करनी है। वहाँ रहनेवाली स्त्री जनों का अनुसरण करते हुए उनके साथ नारायणपुर पहुँचना है। वहाँ पर राज-पत्नी के समीप पहुँचकर मुझे विवाह के लिए पद्मावती अनुकूल है। ऐसा उनसे कहना है।'' हरि की इन बातों को सुनकर वकुला मालिका ने कहा। ''हे देव! सुनिए। अगर वे आपके वृत्तांत के बारे में पूछेंगे तो मैं क्या बताऊँ?'' ऐसा वकुला मालिका के पूछने पर वासु देव ने कहा। ''हे माँ! अगर वे पूछेंगे तो वर चंद्रकुल का है, वसुदेव और देवकी मेरे माता-पिता हैं बताओ। बलराम देव, सुभद्रा मेरे भाई और बहन हैं बताओ। गोत्र वशिष्ट गोत्र बताओ। नक्षत्र के बारे में पूछेंगे तो बताओ कि श्रवण नक्षत्र है। ललित, यौवन, सौंदर्य कलित के रूप में मुझे बताओ। मानधन और विभव निधान के रूप में बताओ। अवनि में पद्मावती के लिए अनुकूल पुरुष के रूप में बताओ।''

वकुला के द्वारा नारायणपुर जाना

चक्री ने नारायणपुर जाने के मार्ग आदि के बारे में बताकर 'होकर आओ' ऐसा वकुला मालिका से कहा। तब देव माया निर्मित एक घोड़ा वहाँ पहुँच गया। तब वकुला मालिका संतोष के साथ हरि से आज्ञा लेकर घोड़े पर सवार होकर पहाड़ से उतर गयी। श्रीनिवास की आज्ञा के अनुसार ही वहाँ प्रवाहित पुण्य तीर्थ में स्नान कर कपिलेश्वर के दर्शन कर

उन्हें नमस्कार कर, बाद में शुक और अगस्त्य को प्रणाम कर शिवालय पहुँच गयी। वहाँ पर शिव की पूजा करके बैठ गयी। वहाँ पर रहनेवाली कन्याओं से एक कन्या को बुलाकर वकुला ने इस रूप में पूछा।

''हे सखि! तुम कौन हो? किसकी पुत्री हो? ठीक-ठीक बताओ।'' पूछने पर उसने चिंता करते हुए वकुला की तरफ देखकर धीरे-धीरे इस रूप में कहा। ''मैं आकाशराज की पुत्री पद्मावती की सखी हूँ।'' यह सुनकर अत्यंत स्नेह के साथ वकुला मालिका ने उसकी तरफ देखकर ''तुम्हारा चेहरा क्यों उतरा हुआ है? बताओ।'' कहने पर उस कन्या ने कहा। ''तुमको कैसे बताऊँ।'' कहने पर उस सखी की ओर देख कर वकुला ने कहा। ''बिना छिपाए अपने मन में जो कुछ है मुझे बताओ।'' कहने पर फिर उसने धीरे-धीरे कहा। ''हे माँ! कल वनविहार करने की इच्छा से राजा की पुत्री हमें साथ लेकर वन में आयी थी। तब हम सब के खेलते समय अचानक वहाँ पर एक शबर आ गया। वह कैसा था? काले काले वर्ण का था, ललित सद्भूषण अलंकृत था, आजानुबाहु था, कमललोचन था, सर्वेंद्रिय सुंदर वदन वाला था, भासुर था, गंभीर वक्षवाला था, कंबु कंठवाला था, महनीय मन्मथ आकारवाला था। बड़े घोड़े पर आरूढ़ होकर आया था। हाथ में धनुष और बाण थे। महा पराक्रमी था। उसने हमारी राज कन्या के समीप आकर कितनी-कितनी बातें कीं? तब उस शबर पर राज कन्या ने गुस्सा करके पथराव करवाया। उसका घोड़ा घायल होकर नीचे गिर गया। वह उत्तराभिमुखी होकर वहाँ से चला गया। उसके बाद पद्मावती अपने निजी महल लौट गयी। उस शबर की बुरी दृष्टि की वजह से राज कन्या को महाताप ज्वर हुआ। बिना बोले तपनेवाली पुत्री को देखकर उसके पिता आकाशराज और उसकी माताजी धरणी देवी पुत्री को गोद में बिठाकर बहु प्रकार से

दुःखी होकर पद्मावती को ज्वर से मुक्त करने के लिए बृहस्पति को बुलाया। उस महात्मा का आना देखकर उठकर अर्घ्य पादादि के साथ राजा ने उनकी पूजा करके कनकासन पर बिठाया। उस मुनि को पद्मावती को दिखाकर रोते हुए राजा ने इस रूप में कहा।

''हे देशिक! पद्मावती को महाताप ज्वर हुआ है। रात को वह सो नहीं पायी। ताप से करवटें बदलती रही। उसके ताप को दूर करने के लिए आप कोई औषध दीजिए।'' राजा की बातें सुनकर गुरु ने कहा। ''हे नृपाल! इस बालमणि को प्राण भय नहीं है। चिंता मत कीजिए। विप्रों से शिव को रुद्राभिषेक करवाइए।'' बृहस्पति के इस रूप में कहने पर राजा ने ब्राह्मणों को यहाँ भेज कर फल, फूल आदि वस्तुओं को हमारे साथ यहाँ भेजा है। हे समझ गयी।'' इस रूप में पद्मावती की सखी ने वकुला से कहा। फिर उसने वकुला से सवाल किया। ''कहाँ से प्रातःकाल ही यहाँ पर आयी हो? किस काम से आयी हो? सच-सच बताओ।'' पूछने पर स्नेह के साथ वकुला मालिका ने कहा। ''हे सुनो ललितांगी! मैं वेंकटेश्वर की दासी हूँ। प्रातःकाल ही एक काम से यहाँ पर आयी हूँ। यहाँ से नगर पहुँच कर अंतःपुर जाकर वहाँ धरणी देवी से आप्त वाक्य कहना है। उसी काम से आयी हूँ।'' वकुला ने ऐसा कहा। ''शिव के अभिषेक पूरा होने तक तुम यहाँ रहोगी तो मैं तुमको साथ ले जाऊँगी।'' इस रूप में सखी ने कहा। उसके साथ जाने के लिए वकुला वहीं पर रह गयी। उधर फणींद्र शैल पति पद्मावती पर मोहित होकर चिंता कर रहे थे। यह कहते सुन कर।

आश्वासांत

दिवाकर लोचन! दामोदर! शंख चक्रधर! भवहर! सुतामोद्धारा! सद्गुरु वर! श्री मद्वेंकट गिरींद्र! जितदनुजेंद्र!

सुरुचिर गुणधामा! शुभ्रसत्कीर्ति कामा! मुरदनुज विरामा! मोक्ष कल्याण सीमा! गुरुतर शुभनामा! घोर देवारि भीमा! द्विरद कुमुद सोमा! देवता सार्वभौमा!

यह श्री तरिगोंड लक्ष्मी नृसिंह करुणा कटाक्ष कलित काव्य विचित्र वशिष्ट गोत्र पवित्र कृष्णयामात्य की पुत्री वेंगमांबा प्रणीत श्री वेंकटाचल माहात्म्य नामक भविषोत्तर पुराण में इष्ट देवता प्रार्थना, शौनकादि के प्रश्न, जनक शतानंद का संभाषण, वृषभासुर के हाथों में पीड़ित तापसियों के द्वारा अपनी बाधाओं को वराह स्वामी से बताना, हरि वृषभासुर से अनेक वर्ष युद्ध करके तदुपरांत उसे मोक्ष प्रदान करना, अंजनादेवी के द्वारा वृष शैल पर तप करके हनुमान को प्राप्त करना, शेष और मारुत का संवाद, शेषाद्रि का परिमाण और प्रभाव, माधव नामक विप्र की कथा, वेंकटेश्वर का फिर से वैकुंठ पहुँचना, उनके वैकुंठ में पहँचने का समाचार नारद के द्वारा ब्रह्म को बताना, नारद के द्वारा मुनिगण को त्रिमूर्तियों की परीक्षा करने के प्रयत्न करने का उपदेश देना, भृगु के द्वारा त्रिमूर्तियों की परीक्षा करना, हरि से लक्ष्मी प्रणय कलह करके कोल्हापुर पहुँचना, श्रीहरि वैकुंठ को छोड़कर शेषाद्रि पर वल्मीक में दुबक कर रहना, ब्रह्म और रुद्र धेनु और वत्स के रूप में वेशधारण करके वल्मीक के गर्भ में रहनेवाले हरि को दूध देकर तृप्त करना, चोल राज की पत्नी के द्वारा गोप को डांटना, हरि के सिर पर गोप के द्वारा परशु से मारना, चोलराज को चक्री के द्वारा शाप देकर भेजना, बृहस्पति के द्वारा हरि को औषध के बारे में बताना, शौनकादि का पश्चाताप, वल्मीक, त्रिंत्रिणी, पर्वत का प्रभाव, वराह और श्रीनिवास के संवाद, वराह स्वामी के द्वारा हरि को भूमि देना, वकुला मालिका का वृत्तांत, आकाशराज का वृत्तांत, पद्मावती का भूमि से उदय होना, वसंत ऋतु का

वर्णन, पद्मावती का वन विहार, पद्मावती और नारद के संवाद, श्रीनिवास के द्वारा मृगों का आखेट करना, पर्वत से उतरकर हरि के द्वारा हाथी की रक्षा करना, हरि के द्वारा वन मध्य में पद्मावती को देखकर उसका वर्णन करना, पद्मावती की सखियों को स्वामी द्वारा अपना वृत्तांत सुनाना, हरि पद्मावती से श्रृंगारोक्तियों से बात करना, पद्मावती का गुस्सा करते हुए सखियों से हरि पर पथराव करवाना, चक्री का भाग कर शेषाद्रि पर वल्मीक में छिप जाना, पद्मावती का निज गृह लौटना, हरि के द्वारा विरह ताप को प्राप्त करना, वकुला से हरि का अपने ताप के बारे में बताना, हरि राम कथा को वकुला को सुनाना, वकुला को स्वामी वेदवती का वृत्तांत सुनाना, वकुला के द्वारा स्वामी की स्तुति करना, नारायण वनपुर का वर्णन, वकुला के द्वारा नारायणपुर जाना, वकुला के द्वारा पद्मावती की सखियों से बात करना आदि कथांशवाला यह चतुर्थाश्वास है।

* * *

पंचमाश्वास

तरिगोंड नृहरि (संबोधन)

विश्वातीत! गुणाकर! विश्वोद्धार! विष्णुदेव' वेदविहारा! विश्वेश्वर! सुर पूजित! शाश्वत! तरिगोंड नृहरि! जनहितकारी!

शौनकादि का प्रश्न

सूत को देखकर शौनकादि ने इस रूप में कहा। ''हे सूत! वकुला मालिका वेंकटाद्रि से उतर जाने के बाद विष्णुदेव ने वेंकटाद्रि पर रहते क्या प्रयत्न किया। उसके बारे में बताइए।'' यह सुनकर सूत ने इस रूप में कहा।

सूत का समाधान

''सुनिए हे मुनिवर्य! हरि के द्वारा किए गए सारे आश्चर्यजनक कार्यों के बारे में आपको बताऊँगा। वह ऐसा है कि श्रीधर तब वेंकटाद्रि पर रहते अपने मन में इस रूप में सोचने लगे थे।''

हरि का भीलनी बन जाना

''वकुला मालिका को मैंने विवाह प्रयत्न करने के लिए भेजा है। उनके पास जाकर वकुला चतुराई से बात करेगी या नहीं? पुरुषों के बारे में स्त्री कैसे बता सकती है? लड़की वाले मेरे मूल के बारे में ठीक से नहीं जानते हैं। इसलिए अगर वे लड़की को देने में इनकार कर दें तो? बाद में उनके पास नहीं जा सकते। इसलिए पहले पहल ही ठीक से काम लेना चाहिए। ऐसा सोचते सर्वज्ञ होते हुए भी मनुष्य के रूप में चिंता करने लगे थे। बाद में शीघ्र ही उठकर पद्मावती को देखने की इच्छा से, मोह को वश में रखे बिना उन्होंने एक आश्चर्यजनक काम किया। सुनिए! वह यह

है कि श्रीनिवास एक जीर्ण वस्त्र को पहन कर, ऊपर एक फटा-पुराना कुरता पहन कर, झुकते और खड़े होते एक भीलनी के वेश में पहाड़ से उतरकर अपनी कला को सबको दिखाने लगे। दांतों से बनी वस्तुएँ, घुंघुचियों की माला को गले में पहन कर, श्रीनिवास एक सात महीनेवाले बच्चे का सृजन करके, उसे बगल में बांध कर, हाथ में एक बेंत लेकर, नवधान्यों से भरी एक टोकरी को सर पर लादकर शीघ्र ही नारायणपुर पहुँच गए। वहाँ उत्साह से स्त्रियों को देखकर 'जानकारी! (एरुका) हे जानकारी! दूंगी' ऊँची आवाज में पुकारने लगे। उसकी पुकार सुनकर नगर की स्त्रियाँ अपने भविष्य की जानकारी लेने के उत्साह से बुलाकर 'हे बुढ़िया! हमारे भविष्य के बारे में सच-सच बताओ' कहते समय राजमहल की सखियों ने वहाँ पर आकर उस भीलनी को देखकर इस रूप में कहा। ''हे भीलनी! हमारी इच्छा और भविष्य के बारे में सच-सच बताओगी तो तुमको हम रेशमी साड़ियाँ दे देंगी। अच्छी तरह भविष्य के बारे में बताओ।''

भीलनी का राजमहल की सखियों से बात करना

भीलनी ने इस रूप में कहा। ''मेरी भविष्यवाणी ही सारे जनों के लिए जीवन है, मेरी भविष्यवाणी सदा शुभकर, शाश्वत है। इसके अनुसार ही सारा संसार सुखी रहता है। मेरी भविष्यवाणी कैसी है? जानो ये पंचभूत के मूल, सकल जागृत सृष्टि, स्वप्नों के लिए आदि, अंत स्वयं बनकर, पूरे ब्रह्मांड में फैले हुए उसे जानो, आशा ज्योति को अपने आप में रखकर आनंद से चलानेवाले को जानो, ऐसी जानकारी और कोई दे नहीं सकता है। मेरी जानकारी सोलह आना सच निकलती है। भविष्यवाणी पर विश्वास रखनेवालों को मैं भविष्यवाणी बताऊँगी।'' भीलनी के इस रूप में कहने से सखियों ने धरणी देवी के पास जाकर इस रूप में कहा।

''हे माई! इस नगर में एक भीलनी आयी है। उसे यहाँ पर बुलाकर पुत्रिका के कष्ट को किस रूप में दूर किया जा सकता है। उपाय के बारे में पूछ सकते हैं। वह यह रहस्य बता सकती है।'' सखियों के इस रूप में कहने से राज सति को भी यह अच्छा लगा। इसलिए 'उसे शीघ्र ही यहाँ ले आओ' कहते सखियों को भेजा। जाकर सखियों ने भीलनी को बुलाया। उनके बुलाने पर परमानंद से उसने स्वीकार करके 'रोनेवाले बच्चे को दूध देकर आऊँगी।' ऐसा कहा। और इस रूप में कहा। ''वहाँ आने के लिए बुलानेवालों से कहा मेरा बच्चा अब रो रहा है। इसे ठीक करके आऊँगी। इस रूप में भविष्यवाणी बताने से वह मुझे दूर रखेगा तो मेरा पेट कैसे भरेगा।'' कहते, हँसते, कराहते फिर इस रूप में कहा। ''वे भाग्यवान हैं, मैं गरीब हूँ। इसलिए मैं वहाँ कैसे आ सकती हूँ? इससे बढ़कर दांतहीन मुँह, पके बाल, मोटा पेट, बड़े-बड़े कान, कूबड पीठ, घुंघुची की मालाएँ, दांतों की वस्तुएँ, मेरे इस रूप को देखकर सोने के आभरण पहननेवाले सारे लोग हँसेंगे? नहीं इसलिए मुझे लज्जा होगी। आपके राजमहल को आने के लिए मुझ से क्या काम है? मेरी तरह गरीबों को ही भविष्यवाणी बताकर मैं इस पृथ्वी पर पेट पाल रही हूँ।'' यह सुनकर सखियों ने कहा। ''हमारी माई को अगर तुम अच्छी तरह भविष्यवाणी बताओगी तो रत्न, भूषणादि वे देंगी। सोने की टोकरी देकर भेजेंगी। इसके लिए हम ही साक्षी हैं।''

भीलनी (हरि) के द्वारा धरणी देवी को भविष्य बताना

सखियों ने इस रूप में बड़ी आत्मीयता से भीलनी को बताकर उसे राजी करके उसे लेकर अंतःपुर पहुँची। धरणी देवी ने भीलनी को बड़े स्नेह से सोने के पाटे पर बिठाया। तब भीलनी ने बड़े आनंद से धरणी देवी की ओर देखकर कहा। ''हे वनिता! तुम बहुत बड़ी भाग्यवान हो,

मैं अत्यंत गरीबिन हूँ। इसलिए मुझे और मेरे बच्चे को दूध-अन्न खिलाकर, अच्छे उपहार देने से मैं अच्छी तरह भष्यिवाणी बताऊँगी।'' तब धरणी देवी ने सखियों के द्वारा भीलनी को क्षीरान्न खिलाया। तब भीलनी और उसके बच्चे ने क्षीरान्न खाया। खाने से उठकर फिर भीलनी ने उपहार देने की बात कही। तब धरणी देवी ने उस भीलनी को उपहार दिला कर कहा। ''हे भीलनी! तुम्हारा देश कौन-सा है? यहाँ कहाँ रहती हो? तुम्हारे गाँव का नाम क्या है? हमारे गाँव में क्यों आयी हो?'' पूछने पर हँसते हुए भीलनी ने कहा। ''हे रानी! हम जैसे लोगों को इस धरती पर घर गृहस्थी कहाँ होती है? यहाँ-तहाँ झोंपडी डालकर कुछ दिनों के लिए रह कर फिर वहाँ से जानेवाले हैं। हमारे लिए देश क्यों चाहिए? हे रानी! आपके गाँव की स्त्रियों को भविष्यवाणी बताने यहाँ आयी हूँ। सारे भीलनी जाति के लोगों को सच ही एक ही जगह है। वह कहाँ पर है? पूछने पर वह चार-छह, दस-बारह, पांच-छह और दो शृंग पंक्तियों से आकाश को छूनेवाला होगा। छह पहाड़ों के ऊपर एक और पहाड़ जहाँ अनेक झरने प्रवाहित होते हैं। वह पहाड़। चार रास्तों के बीच में रहनेवाला पहाड़, सांप अपने आप में रखनेवाला पहाड़, पहले हमारे बुजुर्गों के रहनेवाला बड़ा पहाड़। उस पहाड़ पर सच ही हम रहते हैं। वहाँ से यहाँ पर आकर लोगों को भविष्यवाणी सुनाकर अपना पेट पालते हैं। अब तुम हमसे भविष्यवाणी पूछो। बताऊँगी। पहले कुल्हड भर मोतियाँ दिलाओ।'' भीलनी के इस रूप में कहते धरणी देवी ने कुल्हड भर मोतियाँ मंगाकर वहाँ रखवाया।

सोने के सूप में मोतियों को देखकर तब भीलनी ने हाथ बढ़ाकर मोतियों को गूंथकर तीन ढेर बना कर बीच वाले ढेर पर मन लगाया। तब तीन बार सर उठाकर नमस्कार करके मन में ही गंगादि पुण्य तीर्थों

को, काशी, गया, प्रयाग आदि प्रमुख पुण्य क्षेत्रों को, हरि हरादि देवताओं को, पराशक्ति आदि प्रमुख शक्तियों को प्रणाम करके, उन्हें आह्वान करके आगे भीलनी ने इस रूप में कहा। ''सुनिए हे धरणी सति! देवतागण यहाँ आकर स्थापित हुए हैं। अब तुम दक्षिणा और तांबूल दिलाओ। हे तरुणी! और इस भविष्यवाणी टोकरी को नमस्कार करो।'' कहने पर धरणी देवी ने तांबूल देकर, भविष्यवाणी टोकरी को नमस्कार करके भीलनी से इस रूप में कहा। ''हे री! अपने मन में जो कामना है उसके बारे में सच-सच बताओ। तुम्हारे बेटे को नूपुर दिलाऊँगी। तुमको दिव्य वस्त्र दूँगी। झूठ मत कहो हे भीलनी!'' इस रूप में कहने पर धरणी देवी की ओर देखकर भीलनी ने कहा। ''हे बेटा! मन में संदेह मत करो। अब तुम्हारे मन की बात बताऊँगी।''

भीलनी के वाक्य

कहकर अपने सामने धरणी देवी को सोने के पाटे पर बिठाकर अपने हाथ की बेंत को उसे देकर ''हे विघ्नेश्वर! वीर भद्रा! मलयाल भगवती! मधुर मीनाक्षी! आम्रयाक्षी! कामाक्षी! कनक दुर्गा! चौडांबिका! ज्ञानांबा! कोल्हापुर लक्ष्मी! आप सब आकर मुझे दीजिए! मुझे दीजिए!'' ऐसी प्रार्थना करके और इस रूप में कहा। ''हे सति! दूसरे की तरफ न देखकर मेरी ही तरफ देखो। देव की कसम! सच बताऊँगी।'' तुझ पर रीझ कर बताऊँगी कहते उसने और इस रूप में कहा। ''हे माई! हे माई! तुमने जिस के बारे में सोचा है वह बहुत ही गहरा है। देव ऐसा बोल रहा है। तुमने जो सोचा है वह यह है। बताऊँगी! सुनो! बच्ची हो तो पेट दिखाऊंगी। सहोदर हो तो भुजा दिखाऊँगी! वैसे सहोदर के बारे में नहीं पूछ रही हो। ऐसी बच्ची के बारे में पूछ रही हो। वह स्त्री है या मरद है?

पूछ रही हो। हे बेटा! यह देखो! बच्ची हो तो कान दिखाऊँगी। बच्चा हो तो दाढ़ी दिखाऊँगी। यह देखो वैसे तुम बच्चे के बारे में नहीं पूछ रही हो। वैसे बच्ची के बारे में पूछ रही हो। हे माई! हे माई! अब तुम्हारी बच्ची को एक चिंता सताने लगी है। वह चिंता क्या है? पूछने से बताऊँगी। सुनो री! कल तुम्हारी बेटी ने पुष्प वन में एक घोड़े पर आरूढ़ काले स्वामी को देखकर मोहित हुई है। री! वह काला स्वामी कहाँ रहता है? किस गाँव में रहता है, पूछो बेटा! यहाँ देखो इस कोने में है। इस कोने में है तो मालूम है न बेटा? नहीं मालूम है तो! यह देखो यहाँ से वायव्य भाग में फणों सहित चमकनेवाले सोने के पहाड़ पर है। हे माई! वह कौन है? पूछने पर वह तिरुनाम धारण करनेवाला है। सफेद पक्षी पर चढ़कर सारी दिशाओं को जीतनेवाले काला स्वामी है हे माई! वह सुचमुच ही श्रीमन्नारायण है। वह मनुष्य नहीं है। नहीं माई! नहीं माई! वह तुम्हारी बेटी के साथ विवाह करना चाह रहा है। तुम्हारी बेटी को उसीसे विवाह कर लेना चाहिए। इसे उसी को देकर विवाह करने से तुम्हारी बेटी अत्यंत सुखी रहेगी। नहीं हो तो उसे अनेक कष्ट सताएँगे।'' कहते सुनकर धरणी देवी ने भीलनी को देखकर इस रूप में कहा। ''हे भीलनी! तुम्हारी बातें माया जैसी लग रही हैं। मनुष्य की कन्याओं के साथ कहीं धरती पर नारायण विवाह करते हैं? ऐसा कभी हुआ है?'' विचित्र ढंग से वह हँस कर बोलते सुनकर भीलनी ने कहा। ''वह स्वामी हाथी का पीछा करते हुए आकर तुम्हारी बेटी के रहनेवाले वन में पहुँचा था। अपने कुल, गोत्र, अपनी कामना के बारे में उसने तुम्हारी लाड़ली बेटी को बताया था। तुम्हारी बेटी ने उससे निष्ठुर बातें कहकर उसके द्वारा आरूढ़ घोड़े पर पथराव करवाया था। घोड़ा घायल होकर नीचे गिर गया था। वह तुम्हारी बेटी को क्षमा करके वेंकटाद्रि पहाड़ पर वापस लौट गया। तब तुम्हारी

बेटी को काम मूर्छा लगी है। विरह ताप के ज्वर से पीड़ित हो गयी है। उस ज्वर को ठीक करनेवाला कोई और औषध नहीं है। कमलनयन के चेहरे को अपनी बेटी को दिखाओ। तब तुम्हारी बेटी का ज्वर उतर जाएगा।'' भीलनी के इस रूप में कहने पर धरणी देवी ने कहा। ''कमललोचन कहाँ? हमारी कन्या कहाँ? उसे हमारी बेटी ने कैसे देखा? यह मोह ज्वर कैसे उतरेगा? यह सब तुम्हारा नाटक तो नहीं है? सुनने में यह सफेद झूठ लग रहा है। धरती पर ऐसा हो सकता है?'' कहने से भीलनी ने इस रूप में कहा।

''हे माई! हे माई! मेरी बात सच होगी। अभी थोड़ी देर बाद विवाह की बात चलाने के लिए संतोष के साथ उस वेंकटेश्वर के द्वारा भेजी गयी एक कन्या आयेगी। तब मेरी बात पर विश्वास करोगी। अब तुम्हें कितना समझाने पर भी तुम विश्वास नहीं करोगी। अगर ऐसा होगा तो हे धरणी देवी! मुझे बुलाकर बाद में उपहार देना। अभी मुझे कुछ नहीं चाहिए। बस अब मुझे आज्ञा दीजिए। तुम्हारी बेटी के विवाह में फिर अपने बेटे के साथ यहाँ पर आऊँगी। हे रानी! मेरी बात सही है या झूठ है अपनी लाड़ली बेटी से ही पूछो। हे माई! हे माई! मैं अपने पेट के लिए झूठ बोल रही हूँ। ऐसा तुम संशय कर रही हो। यह झूठ नहीं है। न ही कोई नाटक है। बडबोली नहीं है। न कोई चमकानेवाली, न ही कोई भ्रांति में डालनेवाली है। कोई आडंबर की बात भी नहीं है। मेरी बातें, मेरी भविष्यवाणी, इस टोकरी की कसम है। मेरे बेटे की कसम यह सच है।'' ऐसा विश्वास दिलाते तुरंत उठकर परम पुरुष वेंकटेश्वर अपने निजी रूप को धारण करके वेंकटाद्रि पर लौट आये। तब धरणी देवी ने आश्चर्यचकित होकर अपनी बेटी पद्मावती के पास जाकर इस तरह पूछा।

धरणी देवी का पद्मावती (पुत्रिका) से संभाषण करना

''हे बेटी! यह क्या है पद्मावती! व्याकुल होकर मूर्छित होकर क्यों सो रही हो। दिन बहुत निकल गया है। तुम्हें इस रूप में देखकर मैं कैसे शांत रह सकती हूँ। अब तुम्हारे मन में जो चिंता है, उसके बारे में बताओ। अपने सुंदर नेत्रों से आँसू बहना मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। मेरे मना करने पर भी कल तुम उस उपवन में खेलने गयी थी। वहाँ तुमको किसने देखा है? हे नीरज नेत्री! तुमने वहाँ पर किसे देखा है? मैं तेरी माँ हूँ। तुम मेरी बेटी हो। हम दोनों के बीच में कोई रहस्य नहीं होना चाहिए। रहस्य को छिपाये बिना बताओ। क्यों डरती हो?'' कहने पर भी पद्मावती कुछ नहीं बोली। उसके इस रूप में शोक मनाते देखकर धरणी ने व्याकुल होकर ''हे राकेंदुमुखी! तुम्हारे इस दुःख का क्या कारण है? बताओ। हे बेटी! इस धरती पर तुझे छोड़कर मुझे कोई आप्त जन नहीं है। मुझसे बढ़कर तुझे भी कोई नहीं है। मेरी ओर संशय की दृष्टि से मत देखो। तुम्हारे पिता की कसम बात को छिपाये बिना सच-सच बताओ।'' इस रूप में बेटी से प्रेम के साथ धीरे-धीरे उसे उठाकर, अपनी गोद में बिठाकर, सिर पर हाथ से सहलाते हुए कितने प्रयत्न करने पर भी सर झुकाकर कुछ नहीं बोलनेवाली बेटी की तरफ देखकर धरणी सति ने कहा।

''हे पुत्री! यह तुम्हारा पाप नहीं है। मेरा पाप ही इस रूप में करवा रहा है। अब मैं क्या करूँ?'' कहते-कहते उनकी आंखों से आँसू निकल गए। इस रूप में अपने लिए आर्ति बनी माँ को देखकर पद्मावती का ताप और बढ़ गया। आंखों से आँसू बहाते इस रूप में कहा। ''हे माँ! पुष्प वन में जब मैं सखियों के साथ खेल रही थी वहाँ पर एक दिव्य पुरुष घोड़े पर बैठकर आया। उसने मेरी तरफ बुरी दृष्टि से देखा। तब मैंने

गुस्सा करते हुए, उसे क्षमा किए बिना उस पर पथराव करवाया। उसका घोड़ा नीचे गिर गया। वह कहाँ गया? मुझे मालूम नहीं। हे माँ! उसका सुंदर नीले रंग का शरीर अब भी मेरी आँखों के सामने नाच रहा है।'' इस रूप में पद्मावती के कहने पर सुनकर धरणी देवी ने अपनी बेटी की तरफ देखकर मन में मोद और खेद दोनों होते लज्जित होकर कहा। ''मेरी लाडली बेटी! उस युवक ने तुम्हारे मन में ऐसी बुद्धि को क्यों जगायी है। हे वनज पाणी! लोग यह कहेंगे कि वन में जाकर उस वन पुरुष को देखकर उस पर मोहित हो गयी है। पैदा होने के बाद पहली बार किसी पुरुष का स्वरूप इस रूप में तुम्हारे मन में कैसे बैठ गया हे नीलवेणी! अहो! तुम्हारे पिता मानधनी हैं। तुम्हारी मनोव्यथा के बारे में सुनेंगे तो उन्हें भी बड़ी चिंता होगी। हे सुंदरवदन! इसके लिए मैं कौन-सा उपाय ढूंढूँ? वन में किसी सुंदर पुरुष को देखकर मन में उसके साथ आकाशराज की बेटी ने प्रेम किया। ऐसी निंदा लोग करेंगे तो हमें सुनना ही पड़ेगा? अब मैं क्या करूँ? विधि ने हमारे साथ ऐसा क्यों किया है? लोगों के मुँह पर कैसे ताला लगाया जा सकता है। ऐसे पुरुष से तुमने प्रेम क्यों किया? धरती पर तुझे और हमें इससे कैसी कीर्ति मिलेगी?'' माँ के इस रूप में कहने पर तब पद्मावती ने हरि के पूर्व वृत्तांत को मन में याद करके इस रूप में कहा। ''हे माँ! तुम्हें अपकीर्ति होगी, ऐसी चिंता मत कीजिए। कहीं तुमने मन में उसे मनुष्य मात्र समझा है क्या? वह मनुष्य नहीं है। वह साक्षात रमापति है, पुरुषोत्तम है, संपूर्ण प्रकाशवान सर्वज्ञ और शाश्वत पुरुष है। इसलिए मेरा मन उस स्वामी पर लग गया है। यह मेरे लिए कम नहीं है। मेरे कारण पृथ्वी पर कोई अपकीर्ति तुमको नहीं होगी। जो होने का है वह होकर ही रहेगा। हे जननी! सुनो। जिस महामह के दिव्य चक्र ने कौरव बलों का संहार करके हस्तिनापुर में युधिष्ठिर को

पट्टाभिषिक्त करके उत्तम पुरुषों का संरक्षण किया, जिस महात्मा के शंखारव ने दैत्य बृंदों के मन में भय पैदा करके देवताओं को आनंद प्रदान किया है, ऐसे शंख, चक्रधारी महापुरुष लीलामानुष विग्रह बनकर कल मुझे वन में प्रत्यक्ष हुए हैं। तब मैंने इस मर्त्य लोकानुसार उस देव का धिक्कार करके पथराव करवाकर उसे भगा दिया। ऐसा अपचार मुझसे हो गया है अब वह विष्णु मुझे क्षमा करके मेरी रक्षा करेगा या नहीं करेगा, ऐसे संशय और भय से मेरी आंखों से आँसू निकल रहे हैं। नहीं तो मुझे कोई काम विकार नहीं है। मेरे श्रीनिवास स्वामी के दिव्य मंगल विग्रह शीघ्र ही मुझे दर्शन देंगे तो मैं जीवित रहूँगी। नहीं तो इस धरती पर मैं जी नहीं सकती।'' ऐसा कहते नेत्रों से आँसू बहाते फूलों की शय्या पर फिर से लुढ़कनेवाली पुत्री को देखकर धरणी देवी ने इस रूप में कहा।

''हे पुत्री! पद्मावती! हरि भक्ति इतनी तुम्हारे चित्त में रहने के कारण ही तुम्हारी इच्छा की पूर्ति होगी। अब शोक मत मनाओ। वह चक्री तुम्हारे साथ विवाह करेगा। ऐसा एक धर्म देवता ने आकर मुझसे बताया है। उसकी बातें झूठ नहीं होंगी। अब तुम धैर्य के साथ रहो।'' ऐसा कहते समय वहाँ पर क्रम से विप्र मुख्य ने अगस्त्य लिंग का रुद्राभिषेक किया। उसके पुण्य तीर्थ, फूल, पत्ते, फल आदि लेकर आते देखा। तब उनके साथ सखियों से प्रिय बातें करते स्नेह के साथ वकुला मालिका वहाँ पर आ गयीं। तब विप्र लोगों ने रुद्राभिषेक के पुण्य तीर्थ को पद्मावती पर छिड़काया।

वकुला मालिका के द्वारा धरणी देवी से बात करना

तब मंत्राक्षत, फूल, फल को राजा की पुत्री पद्मावती को देकर आशीर्वाद देकर वे लौट गए। विप्रों के लौटने के बाद तुरंत धरणी देवी

ने वकुला मालिका को देखा। संतोष और सादरता के साथ वकुला मालिका को एक सोने के पाटे पर बिठाया। पाद धोकर पूजा की। तदुपरांत भक्ति से इस रूप में कहा। ''हे महामाता! कहाँ से आ रही हैं। बताइए।'' पूछने पर वकुला मालिका ने इस रूप में कहा। ''हे माई! शेषाद्रि से आ रही हूँ।। किनकी हो पूछने पर धरणी देवी से बताया। ''मैं सदा श्रीवेंकटेश्वर की दासी बन कर रहती हूँ। मेरे स्वामी के द्वारा भेजने पर यहाँ पर आयी।'' वकुला की स्नेह भरी इन बातों को सुन कर धरणी देवी ने ''तुम किस काम से आयी हो।'' पूछा। वकुला ने जवाब दिया। ''प्रेम से विवाह की बात चलाने आयी हूँ।'' कहनेवाली वकुला देवी से धरणी देवी ने ''किसका विवाह तैय करने आयी हो?'' पूछा। तब वकुला ने कहा। ''सुनो हे धरणी देवी! वेंकटेश्वर के लिए आपकी कन्या को मांगने आयी हूँ। मुझे विश्वास है कि आप अवश्य देंगी। ''कुल गोत्र और माता-पिता के बारे में बताओ'' इस रूप में धरणी देवी के पूछने पर वकुला ने इस रूप में कहा। ''कुल क्षत्रीय कुल है। गोत्र वशिष्ट गोत्र है। माँ देवकी है, पिता वसुदेव हैं।'' इस रूप में वकुला के बताने पर सुनकर धरणी देवी ने हँसते हुए इस रूप में कहा। ''सौंदर्य, भाग्य, सगुणों के बारे में बताओ।'' धरणी देवी के पूछने पर वकुला ने कहा। ''हे सति! अगर तुम मेरे स्वामी के सौंदर्य के बारे में पूछती हो तो वे धरती पर सबसे सुंदर और मन्मथ जैसे हैं। सौभाग्य के बारे में पूछती हो तो उनके भाग्य के बारे में बताना असंभव है। वे तो लक्ष्मीपति हैं। सुस्थिर सुगुणों के बारे में पूछती हो तो वे गुरुतर सद्गुणवान हैं। शील के बारे में पूछती हो तो वे वेदोक्त सत्धर्म परायण हैं। इसके अतिरिक्त उनके सौंदर्य, सौभाग्य, गुण, शील के बारे में तुम्हारी बेटी को मालूम है। और मैं क्या बताऊँ? हे माई! इससे बढ़कर तुम्हारी बेटी ने उससे प्रेम किया है।'' वकुला देवी के इस

रूप में बोलने पर धरणी ने ''श्री लक्ष्मी साथ में रहने पर विष्णु हमारी कन्या से फिर विवाह कैसे करेंगे। विष्णु ने ऐसा सोचा ही क्यों? यह कैसे उचित हो सकता है। इसमें मुझे संशय हो रहा है। अगर मनुष्य सुनेंगे तो हँस पड़ेंगे?'' इस रूप में धरणी देवी ने संशय से कहा। तब वकुला ने कहा। ''लक्ष्मी अब कोल्हापुर चली गयी है। वहाँ वे भक्तों का संरक्षण कर रही हैं। श्रीहरि के वक्ष पर अब लक्ष्मी नहीं है। इसलिए तुम्हारी कन्या को देखकर चक्री ने प्रेम किया है। आप अपनी कन्या को नारायण को देकर उनका विवाह करवाइए।'' कहते सिरि के कोल्हापुर जानेवाले पूर्व वृत्तांत को विवरण के साथ वकुला ने बताकर उनको मना लिया। आगे वकुला ने इस रूप में कहा। ''तुम्हारी लाडली पद्मावती को पद्मांश संभव समझ कर वे पद्मदललोचन ने विवाह करने के लिए सोचा है। मन से अपने संशय को निकाल दीजिए। विवाह को वैभव के साथ कीजिए। ऐसा भाग्य किसी और को हो ही नहीं सकता है? आपने बहु पुण्य कार्य किए इसलिए हरि ही आपका दामाद बन रहे हैं।'' कहते वकुला ने संतोष के साथ धरणी देवी को भी संतोष दिया। ''हे सति! मेरे आने का कारण तुरंत ही तुम राजा को बताओ। उठकर अभी चले जाओ।'' तब धरणी देवी ने मोद से जाकर, चिंता में डूबे राजा को शीघ्र ही शुभ समाचार क्रम से बता दिया। राजा को मुख्य रूप से वकुला को दिखाया। तब राजा ने बड़ी कृपा से वकुला का आदर किया। तब वकुला मालिका ने आकाशराज की तरफ देखकर ''हे राजन! आपके घर आकर जो कुछ मैंने शुभ समाचार दिया, उसको आपने धरणी देवी के द्वारा सुन लिया। अभी विवाह के लग्न को तय कर लीजिए।'' वकुला की इन बातों को सुन कर आकाशराज ने बड़े आनंद से इस रूप में कहा। ''हे वकुला! मेरी लाड़ली के विवाह को लेकर जो चिंता मुझे हुई थी, वह अब दूर हो गयी।

आप जैसे आप्त इस भूतल में हमारे लिए और कोई नहीं हैं। आपके इस हित के बारे में भूलना क्या संभव है?''

इस रूप में अनेक प्रकार से वकुला से विनति करके आकाशराज ने पद्मावती के पास जाकर उसे गोद में बिठाकर सिर पर हाथ से सहलाते हुए, गाल पर चूमते हुए, चुबुक को पकड़कर प्रेम से इस रूप में कहा। ''सुनो री पद्मावती! तुम अब मन से चिंता को दूर करो। तीनों लोकों पर शासन करनेवाले वनजाक्ष के साथ अब तुम्हारा विवाह कराऊँगा।''

आकाशराज का श्रीनिवास के पास विवाह पत्र भेजना

संतोष के साथ पद्मावती से इस रूप में कहते तदुपरांत आकाशराज ने अपने गुरु बृहस्पति का स्मरण किया। उनको आते देखकर उठकर उनका स्वागत किया। उन्हें मणि के पाटे पर बिठाकर अर्घ्य पादादि विधियाँ पूरा करके नमस्कार करके बैठ गया। तब राजा ने वकुला मालिका के वेंकटाद्रि से आकर बतानेवाले विवाह के शुभ वाक्यों को सविस्तार से उन्हें बताया। गुरु बृहस्पति ने यह सुनकर आनंदित होकर नृपति को देखकर इस रूप में कहा। ''आपके इस नगर के उत्तर भाग में पांच क्रोस दूरी पर जन हित के लिए ब्रह्मानुसंधान को जाननेवाले शुक योगी रहते हैं। उन्हें उचित रीति से यहाँ बुला लीजिए।'' यह सुनकर राजा ने अपने भाई को भेज कर शुक मुनि को बुलवा लिया। शुक मुनि के आने के बाद राजा ने अपने सिंहासन से उठकर उन्हें रत्नासन पर बिठा कर उनकी पूजा की। तब शुक मुनि ने राजा को देखकर करुणा से उन्हें बैठने के लिए कहा। अमरों के गुरु बृहस्पति को देखकर संतोष के साथ शुक ने कहा।

''हे सुरवर गुरुवर! मुझे यहाँ पर बुलाने का कार्य शीघ्र ही मुझसे बताइए।'' कहते सुनकर गुरु ने आनंद के साथ इस रूप में कहा।

''सुनिए हे शुक योगींद्र! महान वेंकटेश्वर ने पद्मावती के साथ प्रेम किया। उसके साथ विवाह करने के लिए वकुला मालिका को भेजा है। वकुला मालिका विवाह की बात चलाने आयी है। उसके लिए नृपति ने मुझे बुलाया है। इसलिए मैं आया हूँ। आप भी आएँ। अब भूसुर से क्या कहना है?'' कहनेवाले गुरु की ओर देखकर शुक ने कहा। ''इस राजा के पुण्य फल से ही पद्मावती प्राप्त हुई है। ऐसी सौभाग्यवती के लिए कोई मनुष्य उचित नहीं है। चक्री ही उचित वर है।'' कहते ''हे नृपालक! तुमने महा तप करके इस कन्या को पृथ्वी पर देखा है। तुम्हें पुण्य फल की सिद्धि हुई है। अब इस पद्मावती का विवाह प्रेम के साथ हरि के साथ कीजिए।'' इस रूप में शुक योगी के कहने पर अत्यंत आनंदित होकर राजा ने कहा। ''आप और गुरु दोनों मिल कर शुभ लग्न को तय कीजिए। विवाह के तालमेल को बिठाइए।'' कहते सुनकर तब गुरु और शुक मुनि दोनों तालमेल देखते हुए महोन्नत लग्न को देखने लगे।

तब नक्षत्रानुसार योनि कूट, नाडी कूट, सूत्र योग आदि दस प्रकार से तालमेल देखकर उन्होंने राजा को मना लिया। तब राजा ने सभा मध्य में हाथ ऊपर उठाकर ऐलान किया। ''श्रीनिवास के साथ पद्मावती का विवाह किया जायेगा।'' निश्चय के साथ इस रूप में कह कर बृहस्पति की ओर देखकर और इस रूप में कहा। 'हरि को नमस्कार कहते लिखाऊँगा' यह सुन कर बृहस्पति ने कहा। ''हे नृपति! स्वामी ने मनुष्य बनकर आप की कन्या से विवाह करने का निर्णय किया है। इसलिए पहले ही नमस्कार कहते नहीं लिखना है। आशीर्वाद देना ही उचित है।'' उस रूप में पत्रिका को तैयार करके भेजने के लिए कहा। यह सुनकर राजा ने अपने पुत्रादि सर्व कलत्र, बंधुजनों को हर्ष होते सभा स्थान में स्थित एक सोने के टीन पर शुभ लग्न में इस रूप में लिखवाया। ''श्री मद्खंड लक्ष्मी

प्रसन्नेक्षणालंकृत सज्ञन अखिलांड कोटि ब्रह्मांड नायक, सर्वज्ञ श्री स्वामी को आकाशराज आयु, आरोग्य, पुत्र, पौत्राभिवृद्धि हो ऐसा आशीर्वाद देते हुए आज के दिन यहाँ सब कुशल मंगल हैं। आपके यहाँ के कुशल मंगल के बारे में लिख भेजिए। मेरे गुरु और व्यास सुत के कहने पर आपका विवाह मेरी पुत्री पद्मावती के साथ किया जायेगा। कृपया हे श्रीनिवास! इसे स्वीकार कर लीजिए।'' इस रूप में पत्रिका लिखवाकर हल्दी से लेपन करवाकर बृहस्पति के हाथों में दे दिया। तब गुरु ने उसे देखकर शुक योगींद्र के हाथों में देकर मंदस्मित होकर ''इस पत्र को श्रीनिवास स्वामी को समर्पित कीजिए। प्रत्युत्तर लाने के लिए भी आप ही योग्य हैं।'' कहा। बृहस्पति की बातों को सुनकर शुक योगी परमानंद का अनुभव करते हुए उस पत्र को लेकर वेंकटाचल पहाड़ पर चढ़ गए। तब उस मुनि के आगमन की प्रतिक्षा करनेवाले श्रीनिवास उस मुनि की अगवानी करते हुए लिवा लाकर त्रिंत्रिणी वृक्ष के नीचे पहले से बने पुष्प-पीढ़े पर बिठाया। बाद में इस रूप में कहा।

''हे योगीश्वर! सत्कृपा से आपके इधर आने से बहुत आनंद हुआ है। हे मायारहित! मेरा काम बना है या नहीं? कृपया बताइए!'' कहते सुनकर मंदस्मित होकर शुक योगी ने इस रूप में कहा। ''हे विश्वात्मक! आपके महा मन में निर्णीत कार्य कभी नहीं होगा, ऐसा कभी हुआ है? सदा सफल ही होगा।'' शुक योगी के इस रूप में बोलते सुनकर श्रीहरि को आनंद हुआ। उस मुनि को नमस्कार करके अपने कुछ समाचार सुनाने के बाद मुनि ने उत्साह से अपने साथ लाये उस महा शुभ पत्र को स्नेह से श्रीहरि को दिया।

तब हरि ने उस पत्र को पढ़कर समझ कर तुरंत तभी एक बड़े केवडे के पत्ते पर अपने नख से सुंदर लिखा।

श्रीनिवास स्वामी का जवाब

बादरायण सुत को अच्छी तरह सुनने के लिए कहते हुए श्रीहरि ने इस रूप में पढ़ा। ''श्री पूर्ण राज पूजित धर्मतत्पर सुधर्म के पुत्र सम्राट राज श्री आकाशराज जी को शेषाद्रि वल्लभ का नमस्कार। हम कुशल मंगल हैं। आपके कुशल मंगल के बारे में लिख भेजिए। वैशाख मास के शुक्ल दशमी शुक्रवार के दिन रात को शुभ मुहूर्त को हम अपने बंधु-मित्रों के साथ मिलकर वहाँ पधारेंगे। आपको हमारे शतकोटि प्रणाम।'' श्रीनिवास ने अपने द्वारा लिखे गए पत्र को अच्छी तरह पढ़कर उस पत्र को और एक पुष्प हार को मुनि के हाथों में दे दिया। फिर हँसते हुए मुनि के साथ आलिंगन करके श्रीहरि ने विनति करते हुए मुनि को विदा किया। शुक योगी ने फिर पहाड़ से उतरकर नारायणपुर पहुँचकर आकाशराज को वह पत्र दे दिया। तब शुक ने राजा को और गुरु को श्रीहरि का शुभ समाचार दिया। अपनी महिमा से फिर अपने निजी आश्रम लौट गए। बृहस्पति भी अपने निजी स्थान को लौट गए। राजा ने विवाह महोत्सव के लिए नगर को तैयार करने के लिए सेवकों की नियुक्ति की। इधर धरणी देवी ने वकुला मालिका को दिव्याभरण उपहार देकर विदा किया। तब वकुला मालिका ने शेषाद्रि लौटकर श्रीनिवास को देखकर इस रूप में कहा।

वकुला मालिका के द्वारा वेंकटेश्वर को शुभ समाचार देना

''हे मेरे पुत्र! वेंकट! नारायणपुर होकर आयी हूँ। सकल शुभ हैं। विवाह महोत्सव के लिए मुझे क्या-क्या काम करना है यहाँ पर?'' कहने पर सुन कर हरि ने कहा - ''हे जननी! इस विवाह की बात चलाकर आयी, अब धन मैं कहाँ से लाऊँ? इसका क्या उपाय है? मुझे बताओ

अभी।'' इस पर वकुला मालिका ने कहा। ''हे पुत्र! लक्ष्मी को यहाँ पर बुलाने से तुमको बहुत धन देगी।'' सुनकर माधव ने वकुला मालिका को देखकर कहा। ''हे माँ! सुनो। लक्ष्मी से अलग होकर यहाँ पर विवाह करूँगा कहने पर सिरि क्यों मुझे आवश्यक धन देगी?'' कहते सिर झुका कर हरि चिंता करने लगे। तब वकुला ने श्रीनिवास को देखकर ''उनसे बहुत आडंबर से कह कर आयी हूँ। अब इस रूप में चिंता करने से मैं क्या करूँ? तुमको वराह स्वामी से एक बात बताकर उनके द्वारा कोई प्रयत्न करना चाहिए। हे नीरजाक्ष! तुम अब चुप रहकर विवाह के लिए उनका बुलावा आने पर बिना धन के विवाह के लिए कैसे निकलोगे?'' महा भय से वकुला के इस रूप में कहने पर हँसकर चक्री ने मोद से कहा। ''हे माँ! अभी जाकर वराह स्वामी से धन के बारे में मांग कर आओ।'' विनोद के साथ हरि ने इस रूप में कहकर वकुला मालिका को वराह स्वामी के पास भेजा। वकुला ने वराह स्वामी के पास जाकर इस रूप में कहा। ''हे श्री वराह स्वामी! श्रीनिवास ने विवाह करने का निर्णय लिया है। किंतु उसके पास धन नहीं है। बिना धन के विवाह कैसे होगा? इसके लिए कोई उपाय बताओ। लड़की देनेवाले भाग्यवान हैं। उनके साथ स्तर को बनाये रखना है। वेंकटेश्वर ने सिर्फ उस कन्या के गले में मंगलसूत्र डालने का निर्णय लिया है यह सुनेंगे तो लोग हँसेंगे। तुम ही धन को जुटाने का कोई उपाय बताओ।'' इस रूप में कहने पर भू वराह स्वामी ने वकुला को देखकर कहा। 'हे वकुला! तुम निश्चिंत रहो। हमारे श्रीनिवास को धन देना कोई बड़ी बात नहीं है। मोद के साथ तुम सिर्फ देखती रहो। तुम्हारे बताने के पहले ही उस महा स्वामी के बारे में सब कुछ मैं जानता हूँ। वे आनंद के साथ सब कुछ देख रहे हैं। तुमको क्यों चिंता करनी है? शांत रहो। हरि के पास ही रहो। ब्रह्मादि यहाँ पर आकर

विवाह को संपन्न करेंगे।'' ऐसा बताकर वराह स्वामी ने वकुला को विदा किया। वकुला ने जाकर हरि से वराह स्वामी की बातों को सुनाया।

तब रमाकांत ने संतोष के साथ शांति से मन में गरुड़ का स्मरण किया। तब गरुड़ तुरंत वेंकटाद्रि पर पहुँच गया। उसने चक्री को दंडवत प्रणाम किया। तब चक्री ने कुछ लिखकर उसके हाथ में देते हुए इस रूप में कहा। ''हे गरुड! तुम जाकर ब्रह्म को यह पत्र देकर सकल बंधु समेत, सपरिवार समेत आकर मेरा विवाह करने के लिए कहो।। अब जाओ।'' फिर शेष को बुलाकर ''तुम शिव को बुलाने जाओ। शिव से परिवार के साथ मेरे विवाह महोत्सव को देखने शीघ्र ही आने के लिए कहो।''

ब्रह्म, इंद्र आदि का सपरिवार विवाह के लिए पधारना

कहकर इस रूप में नारायण के द्वारा भेजने पर गरुड़ शिव को बुलाने गया। फिर गरुड हवा में उड़ कर ब्रह्म के पास पहुँच गया। ब्रह्म को पत्रिका दिया। तब ब्रह्म ने वहीं से सारे मुनिगणों को सुनने के लिए संतोष के साथ इस रूप में कहा। ''श्री रस्तु! ब्रह्म के आशीर्वाद से पृथ्वी पर हमारे लिए शुभ है और आपके कुशल मंगल के बारे में लिख भेजिए। तदुपरांत सुरचिर वैशाख शुद्ध दशमी शुक्रवार के दिन की शुभ मुहूर्त में कलियुग में हरि आकाशराज की पुत्री का पाणीग्रहण करेंगे। परिवार समेत जो आ सकते हैं उन्हें साथ लेकर शीघ्र ही पहुँचकर विवाह को संपन्न कीजिए। ऐसा हरि के द्वारा लिखे गए पत्र को आश्चर्य के साथ ब्रह्म ने पढ़ा। तब ब्रह्म ने श्रीनिवास स्वामी के विवाह महोत्सव में सपरिवार पधारने के लिए दिक्पाल प्रमुखों को शुभ पत्र लिखवाकर भेजा। स्वयं सकल दिव्याभरणों से अलंकृत होकर सावित्री, गायत्री, सरस्वती समेत हंस वाहन पर आरूढ़ होकर, चतुर्वेद पारायण करनेवाले महर्षियों को

साथ में लेकर मंगल वाद्यों के बजते गरुड़ के साथ वेंकटाद्रि पहुँच गए। तब श्रीनिवास वाद्यरव को सुन कर उठकर ब्रह्म की अगवानी करने गए। तब ब्रह्म ने अपने हंस वाहन से उतरकर हरि को नमस्कार किया। हरि तब अपने पुत्र की तरफ देखकर भाव विह्वल होकर गद्गद कंठ से कुछ बोले बिना आलिंगन करके उन्हें ले आये। त्रिंत्रिणी वृक्ष के नीचे पहले से बने सिंहासन पर उन्हें बिठाया। तब हरि ने भृगु के हृदय पर लात मारने से लेकर, लक्ष्मी के वैकुंठ छोड़कर कोल्हापुर जाने से लेकर, हुए कष्टों के बारे में, पद्मावती से विवाह करने के लिए बने हेतु क्रम से ब्रह्म को बताया।

उसी समय शेष ने कैलास जाकर चंद्रशेखर को शुभ पत्र दिया। ब्रह्म को जिस रूप में लिखा गया था वह भी उसी प्रकार का पत्र था। गिरिजा, प्रमदगणों के सुनते शिव ने उस पत्र को पढ़कर सबको सुनाया। तुरंत उठकर पार्वती से मिलकर दिव्याभरण और दिव्य वस्त्रों को पहन कर वृषभ वाहन पर आरूढ़ होकर विविध वाद्यों के बजते शेष के साथ प्रमद गणों का कीर्तन करते शिव शेषाद्रि पहुँच गए। तब शिव के आगमन को देखकर मोद से वासुदेव ने वहाँ आए ब्रह्म के साथ मिलकर शिव की अगवानी की। शिव भगवान ने नंदी वाहन से उतरकर चक्री को नमस्कार किया। नारायण ने शिव का आलिंगन करके ले आकर मणि के पीढ़े पर बिठाया। अपने पूर्व वृत्तांत को शिव को सुनाने लगे। तब अपने-अपने परिवार समेत निज वाहनों पर आरूढ़ होकर इंद्रादि देवतागण शेषाद्रि पहुँच गए। उन्होंने हरि, हर, ब्रह्म को प्रणाम किया। उन्होंने उनको आशीर्वाद दिया। तब श्रीनिवास ने शेष और गरुड़ को बुलाकर उनके द्वारा इंद्रादि देवतागणों को उचित आसन दिलाया। कुशल मंगल पूछकर तदुपरांत सबको देखकर इस रूप में कहा।

"हे इंद्रादि देवतागण! मैं इस कलियुग में आकाशराज की पुत्री के साथ पाणीग्रहण करना चाहता हूँ। यह आप सबको स्वीकार है न?" इस रूप में पूछने पर वे सब हरि की तरफ देखकर अत्यंत संतोष के साथ "हे श्रीकांत! यह कार्य हमारे लिए परम संतोष का कार्य है।" तदुपरांत देवाधिपति को देखकर हरि ने "हे इंद्र! विश्वकर्म के साथ नारायणपुर पहुँचकर एक बहुत बड़े भवन का निर्माण कराओ। जाओ" कहने से इंद्र तुरंत शेषाद्रि से उतरकर नारायणपुर पहुँच गये। उस नगर के समीप में विश्वकर्म के द्वारा मरकत मणि तोरणों के साथ एक सोने के मंदिर का निर्माण करवाया। फिर तुरंत वेंकटाद्रि पहुँचकर श्रीनिवास के द्वारा बुलाये जानेवाले सबको बुलाने के लिए षण्मुख को, आवश्यक तैयारियाँ करने के लिए मन्मथ को, स्वयं पाक करने के लिए पावक को, जलाकर्षण करने के लिए वरुण देव को, गंध, कस्तूरी आदि सुगंध द्रव्यों को लाने के लिए गंधमादन को, धन दान करने के लिए कुबेर को, दीप प्रकाश करने के लिए चंद्र को, आवश्यक पात्रों को देने के लिए वसुवों को, सारे कार्यों को अच्छी तरह करने की निगरानी रखने के लिए दंडधर को नियुक्त किया। तब वशिष्ट ने वराह स्वामी की सन्निधि में यजुश्शाकोक्त क्रम से गृह यज्ञ करवाया। तब ब्रह्म ने विवाह पीढ़े का निर्माण करवाया। उसमें पार्वती आदि प्रमुख सुवासिनों से चंदन का तेल, हल्दी आदि सुगंध द्रव्यों को सोने की थालियों में रखवाकर विवाह के पीढ़े में रखवाया। फिर हरि की ओर देखकर अभ्यांगन स्नान के बाद पुण्याहवचन, इष्टदेवता प्रार्थना, कुल देवता की प्रतिष्ठा करने की जरूरत के बारे में बताकर हरि को शीघ्र अभ्यांगन स्नान करने के लिए बुलाया। तब हरि ने चिंताक्रांत होकर ब्रह्म से इस रूप में कहा।

हरि सिरि के बारे में सोचकर चिंता करना

"सुनो हे पद्मज! अब लक्ष्मी कोल्हापुर में है। उसके आने के पहले मेरा इस रूप में अभ्यांगन स्नान के लिए जाना ठीक है क्या? इस कारण से कार्य इस रूप में हुआ है। सिरि रूठ कर चली गयी। अब प्रीति से उस के आने के पहले विवाह करना मेरे लिए अच्छा नहीं है।" इस रूप में लक्ष्मी के बारे में सोचते-सोचते हरि के रोदन को देखकर ब्रह्मादि भयभीत हो गए। जवाब देने में असमर्थ होकर देखते रहने से रुद्र ने इस विचित्र को देखकर कहा। "हे इंदिरेश! शुभ काल में इस रूप में चिंता करना उचित नहीं है। अगर तुम चाहते हो तो लक्ष्मी को यहाँ पर बुलाओ। उसे छोड़कर अभ्यांगन स्नान के समय इस रूप में रोदन करते तुमको कोई रोकने की शक्ति नहीं रखता। हे हरि! मन के खेद को दबाकर इसी शुभ मुहूर्त में ही पीढ़े पर बैठ जाओ।" इस रूप में रुद्र ने उसी शुभ मुहूर्त में हरि को अभ्यांगन स्नान करने के लिए सावधान किया। तब रुद्र को देखकर हरि ने कहा। "हे शंकर! बाल भाषा में बोलना बंद करो। जिन के दुःख हैं वे ही उनके बारे में जानते हैं। दूसरों को मालूम नहीं होता है। ब्रह्म प्रलय के समय वट पत्र पर शयन करते समय भी नित्य अनुपाइनी के रूप में सदा मेरे हदय पर रहनेवाली लक्ष्मी काल गति से मुझ से अलग हुई है। इतने दिनों से मैं अकेला जी रहा हूँ। उस समय मेरे मन में कोई चिंता नहीं थी। अब मेरे मन में विवाह की इच्छा हुई तो सब आ गए। सिर्फ एक लक्ष्मी की ही कमी है। इसलिए मुझे खेद है। लक्ष्मी के आने के पहले विवाह करना ठीक नहीं है, ऐसा कोई मेरा आप्त कहेगा, इसकी प्रतीक्षा मैं कर रहा था। किंतु किसी ने ऐसा नहीं कहा। इसलिए भी मुझे दुःख हो रहा है।" हरि की इन बातों को सुनकर ब्रह्मादि को भय हुआ। सब ने मुकलित हस्त होकर हरि के सामने खड़े होकर इस रूप में कहा।

'अगर रमा आ जायेगी तो वे विवाह होने नहीं देंगी।' ऐसा सोचकर लक्ष्मी को बुलाने की बात हमने आपसे नहीं कही। हमसे अपचार हुआ है। उस सागर कन्या के न आने से विवाह नहीं करना है, ऐसा आपको लगना अच्छा ही है। हे पिता! यह हमारे लिए भी अच्छा है।''

कोल्हापुर वासिनी लक्ष्मी को सूर्य भगवान द्वारा ले कर आना

''लक्ष्मी को कम-से-कम अब तो यहाँ पर बुला लाइए। यह सबके लिए स्वीकार्य है।'' इस रूप में कहने पर हरि ने प्रसन्न होकर कहा। ''हे सरसिज मित्र सूर्य! लक्ष्मी को शीघ्र ही इस शेषाद्रि पर बुला लाओ।'' हरि की इन बातों को सुनकर दिवाकर ने हरि को नमस्कार करके इस रूप में कहा। ''हे हरि! करवीर पुर (कोल्हापुर) में रहनेवाली लक्ष्मी के पास जाकर उनसे क्या कहना है? उसके बारे में मुझे बताइए।'' सूर्य की इन बातों को सुन कर हरि ने हँस कर ''हे जलाप्त! सुनो। हमारी सागर कन्या को नमस्कार करके 'हरि वेंकटाद्रि पर दुबक कर अशक्त हो गए हैं। तुम्हें देखना चाहते हैं। वहाँ पधार कर हरि को दर्शन दीजिए। इस रूप में सच-सच बताओ। यह सुनते ही वह रमा अवश्य यहाँ पर आयेगी।'' कहते हरि के भेजने पर सूर्य भगवान निकल पड़े। कोल्हापुर पहुँचकर दिवाकर ने लक्ष्मी को नमस्कार करके इस रूप में कहा। ''हे सिंधु पुत्री! चक्री अब अशक्त होकर दीन बनकर शेषाद्रि पर स्थित हैं। हे माँ! उन्होंने शीघ्र ही आपको देखने की इच्छा प्रकट की है।'' इस रूप में सूर्य भगवान के कहने पर तुरंत चिंतित होकर लक्ष्मी शीघ्र ही रथ पर आरूढ़ होकर आकाश मार्ग में प्रेम से शेषाद्रि पहुँच गयी। तब सिरि अवश्य आयेगी, ऐसा विश्वास रखनेवाले ब्रह्मादि देवताओं ने अपने-अपने दायित्व को पूरा करते हुए लक्ष्मी की अगवानी की। श्री लक्ष्मी को देख कर सुरचिर भक्ति से नमस्कार करके उन्हें बुला लाये। तब पार्वती, भारती आदि प्रमुख

अंगनामणियों ने लक्ष्मी को नमस्कार करके आदर किया। तब कपट नाटक सूत्रधारी विष्णु ने लक्ष्मी का आदर करके मुहूर्तद्वय की आशा से लक्ष्मी से आलिंगन करके प्रेम से उन्हें रत्न के पीढ़े पर बिठाया। स्वयं भी बैठकर सिरि को आनंद देनेवाली कुछ बातें रहस्य रूप में बताकर हरि ने और आगे कहा।

श्री हरि लक्ष्मी से संभाषण करना

''हे श्री वनितामणि! मुझ से रूठ कर जबसे तुम चली गयी तब से लेकर अब तक मैं तुम्हारा ही स्मरण करते हुए इस वल्मीक में दुबककर ही रहा। एक ग्वाले ने यहाँ पर आकर परशु से मेरे सिर पर मारा। तब भी मैं पीड़ा सहता रहा। मुझे बहुत दया के साथ वकुला ने एक माँ के रूप में मेरी रक्षा की। कठोर परशु की मार को सिर्फ तेरे मांगल्य सूत्र की महिमा के कारण ही मैं सह पाया। जीवित रह पाया। इसमें कोई मेरी महिमा नहीं है। हे वनजाक्षी! तुम्हारी पतिव्रत निष्ठा से ही मैं बच पाया हूँ। और मैं क्या कह सकता हूँ। इससे अलग आकाशराज की कन्या मुझे देखकर मोहित हुई है। इसलिए प्रेम से मैंने उससे विवाह करने के लिए मन में सोचा है। तुम स्वीकार करके विवाह करने के लिए कहोगी तो मैं विवाह करूँगा। अगर तुम स्वीकार नहीं करेगी तो मैं विवाह नहीं करूँगा।'' हरि की इन बातों को सुनकर लक्ष्मी को मन में आश्चर्य हुआ। उन्होंने हरि से इस रूप में कहा। ''हे हरि! वामाक्षी ने तुम पर मोह से कामना की है? उसे क्षमा करने के आपके प्रयत्नों को भी मैंने देखा है। हे केशव! मन में मुझे बहुत अच्छा लगा है। हे कमलाक्ष! विवाह की तैयारी में मंगलकर से हल्दी आदि भेजकर अब अपने को अशक्त बोलते हुए, चेहरा दिखाने के लिए मेरे पास दूत को भेजने से मैं भयभीत होकर आयी हूँ। प्रीति से और गौरव के साथ मैं नहीं आयी। अगर मैं पहले

आऊँगी तो आपके विवाह को स्वीकार नहीं करूँगी। ऐसे संशय से मुझे पहले नहीं बुलाया गया। आपने ऐसा काम किया। ठीक है विवाह के कारण ही सही मुझे बुलाया गया। मैं आयी और मुझे आपको देखने का अवसर प्राप्त हुआ। हे कमलनाथ! यही मेरे लिए बहुत है। धरती पर अगर आप विवाह करना चाहेंगे। मैं क्यों विघ्न डालूँगी? आपको मेरे होते भी कोई नहीं है। इसलिए आपके मन में विवाह की इच्छा पैदा हुई है। मुझे यह स्वीकार्य है। आपको अब कोई संशय नहीं करना चाहिए। शांति से आप उस कन्या के साथ विवाह कर लीजिए। हे महात्मा! कुल मिलाकर आपका सुख ही मेरा सुख है। हे चिन्मय रूपा! आप मनुष्य के रूप में इस पहाड़ पर चढ़ कर ग्वाले के हाथों में घायल हुए, वकुला ने आपकी रक्षा की। यह बहुत विचित्र है। मुझे अब क्या चाहिए। हे कमलाक्ष! तभी भृगु के कारण मैं आपसे अलग हो गयी। मेरे वहाँ रहने पर भी मेरे मन में आपके ही रूप को पूरी तरह बसाकर जीवित रहूँगी। मैं वहीं सुखी रहूँगी। उत्साह से ब्रह्मादि के द्वारा किए जाने वाले इस विवाह को आप कर लीजिए।'' इस रूप में कहते आँखों में से आंसू बहाते सर झुका कर सिरि ने कहा। तब हरि ने संशय करते हुए लक्ष्मी की दीनावस्था को देखकर उनसे इस रूप में कहा। ''हे सिरि! तुम अपने मन में चिंता मत करो। तुमसे बढ़कर और कोई आप्त मुझे कहीं भी नहीं है। तुम ही मेरे लिए देव हो, तुम ही मेरे लिए प्राण हो, तुम ही मेरे लिए भाग्य हो। यह निश्चय है। इसलिए तुम राजी होकर मेरा विवाह करो या न करो मेरे लिए दोनों ठीक है। मुझे क्या चाहिए। लोक विडंबनार्थ के रूप में तुम्हारे प्रयत्न आज कालानुसार ही हुए।'' इस रूप में आँखों से आँसू बहानेवाले माधव को देखकर सिरि ने इस रूप में कहा। ''हे देव! इस रूप में कहना आपको शोभा नहीं देता।'' हँसते हुए इस रूप में कहा।

मंगल स्नान और श्रृंगार करना

हरि का इस रूप में आदर करते हुए, ब्रह्मादि को देखकर अब क्यों देर कर रहे हैं? सब मिल कर अपने-अपने काम शुरु कर लीजिए। चक्री का अभ्यांगन स्नान करवा दीजिए।'' इस रूप में लक्ष्मी की आज्ञा होने पर सब अपने-अपने कामों में जुट गए। तब ब्रह्म ने गरुड और शेष को भेज कर सारे पुण्य तीर्थों से जल को कलशों में भरकर उस शेषाद्रि पर मंगाया। तब क्रम से कुंकुम मिलाकर चारों दिशाओं में रखकर, सूत्रों को उनके चारों ओर बांधने के लिए ब्रह्म ने कहा। ब्रह्म के इस रूप में कहने पर तब पार्वती आदि ने प्रमुख स्त्रियाँ मंगल स्नान करके रंगीले वस्त्र और आभरण धारण करके दीप कलश, मंगल आरतियाँ हाथों में लेकर कल्याण के गीत गाते शुभ कार्य शुरु किए। ब्रह्म के द्वारा पहले बताने की तरह चारों दिशाओं में कुंकुम मिलाये पुण्योदक कुंभों को रखा। हर्षातिरेक में वरसूत्र बांध कर सुहागिनें मिलकर उन कुंभों के बीच में शोभित एक पीढ़े को रखा। तब ब्रह्म के द्वारा 'विवाह के पीढ़े पर बैठिए' कहने पर हरि ने लक्ष्मी की तरफ देखा। तब लक्ष्मी ने वासुदेव के चेहरे को ऊपर उठाकर विचित्र ढंग से देखा। गाल पर हाथ लगाकर, सिर झुकाकर, पाद की उंगली से जमीन पर लिखते हुए, मन में चिंता करते हुए, चेहरे को बिगाड़ कर, वहाँ होने वाले उत्सवों की तरफ नहीं देखते हुए दिखाई पड़नेवाली दुःखी रमा सति को देखकर हरि ने अपने मन में इस रूप में सोचा। ''मेरा विवाह करना पद्ममुखी को पसंद नहीं है। इसलिए चिंता कर रही है। अब मैं क्या करूँ?'' ऐसा सोचते तिरछी आँखों से बार-बार रमासति की ओर देखते हुए दया करके ब्रह्म को देखकर चक्री ने कहा। ''हे विधाता! इस विवाह के लिए मेरे राजी होने से मेरा अपराध हो गया है। इस विवाह से मुझे क्या चाहिए? अब मुझे

यह नहीं चाहिए। आप सब आज ही अपने-अपने स्थानों पर वापस लौट जाइए। मैं भी पहले की तरह वल्मीक के गर्भ में दुबक कर रहूँगा। माता-पिताहीन परदेशी को अब विवाह क्यों चाहिए? सारी दिशाओं के नाथ होते हुए भी मैं आज अनाथ और अकेला हूँ। चुपके से आकाश से इस मिट्टी पर गिर कर, पेट भरने के लिए मनुष्यों से याचना करते हुए जीना ही मेरे लिए बाकी रह गया है। ऐसे मुझ में विवाह की इच्छा पैदा नहीं होनी चाहिए। इसलिए मुझे अभ्यांगन स्नान नहीं करना चाहिए।'' कहने पर ब्रह्म देव ने भयभीत होकर श्री स्वामी की ओर देखकर उनके पाद पद्मों को नमस्कार करके इस रूप में कहा। ''हे देव! महालक्ष्मी आपको नित्य अनुयायिनी बन कर पत्नी होकर, मैं और मन्मथ पुत्रों के रूप में रहते हुए, बाकी रुद्र-इंद्रादि देवतागण पोतों के रूप में रहते, परपोते होते वृद्धि करते रहे। सबके लिए आधारभूत बनकर कूटस्थ ब्रह्म के रूप में रहनेवाले आपको यह चिंता क्यों हैं?'' ब्रह्म के इस रूप में बोलने पर हरि ने कहा। ''दया से मेरे हाथों में तांबूल देकर मुझे आशीर्वाद देते हुए मुझ से अभ्यांगन स्नान करानेवाला कौन है?'' कहते चिंता करते हुए आँखों से आँसू बहाते हरि सिरि की तरफ देखते रहे। तब सिरि की ओर इशारा किया हरि ने। तब लक्ष्मी ने हरि के पास आकर हँसते हुए दोनों हाथों को पकड़ कर उठाया। तब अपने मन में रहनेवाली चिंता को छोड़ कर मोद से वशिष्ट आदि मुख्य मुनियों को नमस्कार करके, उनसे आशीष पाकर हरि विवाह के पीढ़े पर बैठ गए।

तब अरूंधती आदि प्रमुख सुहागिनें मंगल गीत गाते मंगल वाद्यों के बजते, उस महालक्ष्मी के साथ पार्वती, सावित्री, गायत्री और सरस्वती ने कुंकुमोदकों को थालियों में भरकर गीत गाते आरती उतारी। तब रमादेवी

ने मंगलाक्षतों को हरि के ललाट, शीर्ष पर डाल कर कपूर तांबूल को स्वामी के हाथों में देकर दीर्घ नील कुंतलों को संवारकर, सोने के कटोरे में संपंगी तेल भरकर 'दीर्घायु के साथ, इष्टपुत्र को प्राप्त करके, चतुर्दश भुवनों का सम्राट बनकर वृद्धि करो! हे महा स्वामी!' ऐसा आशीर्वाद देते हुए अभ्यांगन स्नान करवाया। कर्पूर गंध, कस्तूरी, हरिद्राचूर्ण, जवादी आदि को मिलाकर हरि का उबटन लगाया। बाद में शुद्ध जल से स्नान करवाया। इस रूप में करने से जन्म धन्य हो गया, ऐसा लक्ष्मी ने मन में सोचा। तब पार्वती, सावित्री, गायत्री और सरस्वती इन चारों ने चार कलशों से कुंकुमाभिषेक किया। लक्ष्मी के साथ मिलकर उस पुण्य तीर्थ को हथेलिओं में भर कर चारों ने ''श्री राम की रक्षा हो'', ''दीर्घायु हो'' कहते हरि के सिर पर छिड़क कर हरि को आशीर्वाद दिया।

सावित्री के वस्त्र लाकर देने से सिरि ने पानी पोंछ कर मस्तक पर सहलाकर, बालों को ठीक करके सुंदर ढंग से हरि की चोटी बनायी। गौरी के वस्त्र देते हरि ने उन्हें पहन लिया। लक्ष्मी ने धूप लगायी। सरस्वती के द्वारा दिए गए वररत्न भूषणों से लक्ष्मी ने हरि को सजाया। गायत्री ने मुकुट को दिखाया। रति, शचि ने चामर किया। पवन की सति छत्र पकड़कर खड़ी हो गयी। गंगा ने पादुकाएँ दीं। तब श्रीकांत ने पादुकाएँ पहन लीं। तब हरि पैदल चलते ब्रह्म सभा के पास आकर सिंहासन पर बैठ गए। तब सारे मुनिगणों को देखते हरि ने ऊंड्र धारण किया।

ब्रह्म को देखकर तब 'लक्ष्मी को अभ्यंजन और मंगल स्नान करवाइए।' कहने पर ब्रह्म ने जाकर पार्वती, भारती आदि प्रमुख सुहागिनों को बुलाकर ''उस जगज्जननी के अभ्यांजन स्नान करवाइए।'' ऐसा आदेश दिया। सिरि को पीढ़े पर बैठने के लिए कहा गया तो सर

झुकाकर सिरि ने ब्रह्म की तरफ देखकर कहा। ''हे वनरुहभव! मैं अभ्यांजन स्नान नहीं करूँगी। शीघ्र ही मैं स्नान करूँगी।'' सिरि की इन बातों को सुनकर हरि ने संशय से इस रूप में कहा। ''हे सागर तनया! अब तुम अभ्यंजन स्नान के लिए राजी नहीं होगी तो विवाहोत्सव को मैं नहीं चाहूँगा।'' हरि के इस रूप में बोलने पर हँसकर रमादेवी चुप रह गयी। तब पार्वती और सुहागिनों ने सिरि का अभ्यंजन स्नान करवाया। तब सिरि को हल्दी से उबटन लगाकर शीघ्र ही उनका स्नान करवाया। पानी पोंछ कर नये वस्त्रों को धारण करवाया। बालों को संवार कर, अलग-अलग जटाओं में उन्हें बांधकर, कुंकुम तिलक ललाट पर लगाकर, आंखों में काजल लगाकर, शरीर पर श्रीगंधादि मलकर, क्रम से रत्न भूषणादि से सिरि का श्रृंगार किया। बाद में विवाह के गीत गाकर प्रीति से सिरि को लिवा लाकर चक्री के साथ सिरि को उन्होंने बिठा दिया। तब शिव हरि और सिरि को देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए।

उस समय वशिष्ट आदि महामुनिगण, सनकसनंदादि योगीश्वर, इंद्रादि देवतागण, गरुड़, गंधर्वादि के द्वारा लक्ष्मी और नारायण को आनंद से देखते समय, यह शुभ लग्न है, ऐसा जोतिषियों के बताने पर, सुनकर वकुला मालिका ने हल्दी, कुंकुम आदि मंगल द्रव्यों को सोने की थालियों में लाकर स्वामी की सन्निधि में रखा। 'हरि का श्रृंगार कीजिए।' लक्ष्मी से कहने पर सुनकर लक्ष्मी ने अपने स्वामी का श्रृंगार किया। तब कुबेर ने दिव्य रत्न भूषण और वस्त्रों को लाकर लक्ष्मी को दिया। तब लक्ष्मी ने उन दिव्य भूषणांबरों के साथ स्वामी का श्रृंगार करके बहुत आनंद का अनुभव किया। तब वशिष्ट, कश्यप आदि प्रमुख महामुनियों को चक्री ने संप्रदाय के अनुसार नमस्कार किया। तब वशिष्ट ने मोतियों से चतुरस्राकार में विवाह की वेदिका की रचना की। उसमें वेंकटाद्रि के

पति श्रीनिवास को तथा उनकी सति लक्ष्मी को बिठाया। फिर उसके पूरब भाग में होम कुंड का निर्माण किया।

कुल देवता की पूजा करना

यजुश्शाखानुसार, वैखानस सूत्रोक्तों के अनुसार पुण्याहवचन आदि शुभ कार्य पूरे कर दिए गए। सभा में उपस्थित सभी को तांबूलादि दिला कर तदुपरांत हरि की ओर देखकर 'कुल देवता कौन है।' ऐसा पूछा गया। चक्री ने जवाब दिया। ''पांडवों और हमारे लिए शमी वृक्ष ही कुल देवता है।'' चक्री के इस जवाब को सुनकर वशिष्ट ने पूछा ''शमी वृक्ष कहाँ पर है?'' तो कुंभ संभव ने बताया। ''कुमार धारा तीर्थ के समीप है'' तब हरि मंगल वाद्यों सहित ब्राह्मणों को साथ लेकर कुमार धारा तीर्थ पर पहुँच गए। वहाँ पर हरि ने शमी वृक्ष की परिक्रमा करके नमस्कार करके पूजा की। ऐसी प्रार्थना की कि 'निर्विघ्न ढंग से विवाह संपन्न हो जाय।' उस वृक्ष की शाखा को सर पर लाद कर लाकर 'इस कुलदेवता को कहाँ रखना है?' पूछा। तब नारद ने बताया कि वृक्ष की शाखा को वराह स्वामी की सन्निधि के पास रखा जा सकता है। तब हरि वराह स्वामी से अनुमति लेकर वृक्ष की शाखा कुल देवता को मोतियाँ और चावल बिछाकर उस पर रखा। बाद में नये वस्त्र उसे समर्पित करके पूजा की। वहाँ पर अखंड दीप को रखवाया। तब वराह स्वामी को देखकर हरि ने कहा। ''हे श्री वराह स्वामी! तुम्हें और भूदेवी को मेरा विवाहोत्सव देखने आना चाहिए।'' तैयार होकर आने की विनति की। तब वराह स्वामी ने कहा। ''अब पूरा प्रदेश फलों से भरा है। अब मेरा आना संभव नहीं है। मेरी जगह वकुला मालिका विवाह में आयेगी।'' अब हमें निकलने की आज्ञा दीजिए। कहते हरि ने ब्रह्म की ओर देखकर यात्रा की भेरी बजाने की आज्ञा दी। तब ब्रह्म ने कहा। ''आज काफी समय निकल

गया है। आज यहीं पर भोज करके कल यहाँ से निकल जाएंगे।'' इस रूप में कहनेवाले ब्रह्म को देखकर हरि ने कहा। ''देश काल की जानकारी के बिना तुम यह यज्ञ करना चाहते हो। चाहने पर भी इस पहाड़ पर पदार्थ कहाँ प्राप्त होंगे?'' चक्री की इन बातों को सुनकर शिव ने कहा। ''जो यज्ञ किया गया उसे पूरी तरह निभाना चाहिए। हे हरि! बिना भोज के यहाँ से निकलना ठीक नहीं है।'' इस रूप में शिव के कहने पर हरि ने सिरि की ओर देखा। 'इस रूप में सिरि से वरदान मांगना मैं उचित नहीं समझता हूँ। यह एक प्रकार की याचना ही होगी।' ब्रह्म और रुद्र को देखकर हरि ने कहा। वल्मीक के समीप में पार्वती आदि प्रमुख सुहागिनों के साथ बैठी लक्ष्मी से मांगे बिना पुष्करिणी तीर्थ के पास अश्वत्थ वृक्ष की छाया में बैठ कर कुबेर को हरि ने अपने पास बुलाया। एकांत में कुबेर से हरि ने इस रूप में कहा।

श्री वेंकटेश्वर के द्वारा कुबेर को ऋण पत्र लिखकर देना

''हे कुबेर! मैंने विवाह करने का यत्न किया। किंतु मेरे पास अब धन नहीं है। विवाह के लिए लक्ष्मी से धन मांगने में मुझे संकोच हो रहा है। इसलिए तुम मुझे शीघ्र ही धन दे दो। मैं उधार पत्र लिख कर दूँगा। वर्ष में एक बार ब्याज चुकाता रहूँगा। कलियुग के अंत तक सच-सच मूल धन को चुका दूँगा। मेरी बात झूठ समझ कर धन देने से इनकार मत करना। ब्रह्म और शिव को मैं साक्षी के रूप में रखकर उधार पत्र लिखाऊँगा।'' हरि के इस रूप में कहने पर कुबेर ने कहा। ''हे पद्माक्ष! आपकी कृपा से जितना चाहे उतना धन मैं दे सकता हूँ। आप ब्याज क्यों देंगे? आपका विवाह होना हम सबके लिए संतोष की बात है। इससे बढ़कर क्या लाभ हो सकता है। तब हरि ने हँस कर इस रूप में कहा। ''दान लेने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ। इसलिए हे निर्मलात्मा! उधार पत्र

लिखकर दूँगा। धन शीघ्र ही दे दो।'' इस रूप में कुबेर को मनाते हरि ने ब्रह्म और रुद्र की ओर देखकर कहा। ''हे ब्रह्म और रुद्र! इस कलियुग के अंत तक इस धन्य शेषाद्रि पर परिपूर्ण विलास के साथ अद्भुत ढंग से सारे सुजनों को दर्शन देते हुए, उन्हें वरदान देते हुए उनसे धन वसूल करके कुबेर के उधार को चुकाऊँगा। आप दोनों ही इसके लिए साक्षी हैं। तभी पत्र को मंगाकर अनेक पंक्तियों में उधार पत्र लिखा कर हरि ने ब्रह्म के हाथों में पढ़ने के लिए उसे दे दिया।

तब ब्रह्म ने उधार पत्र को इस रूप में पढ़ा। ''श्रीकर लीला स्वस्ति श्री जयाभ्युदय अष्टादश द्वापांतर के कलियुग के आदि काल में वेंकटनायक कुबेर को लिखकर दिया गया उधार पत्र ऐसा है कि मेरे विवाह के लिए तुम से उधार के रूप में चतुर्दश लाख रामटेंकि निष्कमों को लिया। इसके लिए ब्याज सहस्र राम टेंकि निष्कम प्रति वर्ष चुकाकर और कलियुग के अंत तक मैंने जितना कुछ धन लिया उतना लौटा दूँगा। इसके लिए ब्रह्म और रुद्र साक्षी हैं। साथ ही यह अश्वत्थ वृक्ष भी। इस रूप में मेरी सम्मति से स्वलिखित उधार पत्र।'' इस रूप में अच्छे ढंग से उधार पत्र ब्रह्म ने पढ़कर शिव को दिया। शिव ने स्वीकार करके उसे कुबेर को दिया। तब कुबेर ने उस उधार पत्र को लेकर हरि को रामटेंकी निष्कमों को गिन कर दिया। कुबेर से तब धन लेकर हरि ने आवश्यक पदार्थों को लाने की आज्ञा दी। तब कुबेर ने विवाह के लिए आवश्यक मंगलसूत्र, भूषणांबर, चावल आदि पदार्थों को मंगवाया। तब हरि ने अग्नि देव को शीघ्र ही भोजन तैयार करने की आज्ञा देते हुए षण्मुख को उसके पास भेजा। तब षण्मुख पावक के पास जाकर हरि की बातों में स्वयं पाक बनाने के लिए कहा। तब पावक ने कहा। ''बरतन नहीं हैं। मैं कैसे भोजन बनाऊँगा।'' हरि को षण्मुख ने इस समाचार को दिया। हरि ने इस

समाचार को सुनकर ब्रह्मादि के सुनते इस रूप में कहा। ''परदेशी के विवाह के लिए बरतनों की जरूरत क्यों है? यहाँ की पुष्करिणी ही दिव्यान्न बरतन है। परिशोभित पापविनाश तीर्थ ही शुद्ध सूप बरतन है, स्वच्छ आकाश गंगा तीर्थ ही सदानंदकर परमान्न बरतन है। गुरुतर तुंबुर घाटी ही चित्रान्न बरतन है। साग सब्जियों को बनाने के घनदेव तीर्थ ही बरतन है। भक्ष्यों को बनाने के लिए बरतन कुमार धारा है। अचारादि बनाने के लिए बरतन पांडव तीर्थ है।'' ऐसा पावक को बताओ हे षण्मुख!

वेंकटाद्रि पर प्रीति भोज

विनोद से इस रूप में कहते हरि को सुनकर उस स्वामी को नमस्कार करके अष्टवसु ने अक्षय पात्रों को मंगाया। तब अग्नि देव ने शीघ्र ही स्वयंपाक बनाया। 'भोजन का प्रयत्न करो' यह सुनकर हरि ने कार्तिकेय को बुलाकर ब्राह्मण भोजन के लिए पांडव तीर्थ से लेकर श्रीशैल पर्वत तक साफ करवाया। फिर भोजन के लिए स्नान करने के लिए कहा गया तो सभी स्नान करके लौटे। तब सारे मुनि प्रमुख स्नान संध्यादि कृत्य पूरा कर पंक्तियों में फैल कर बैठ गए। हरि ने ब्रह्म को बुलाकर अनर्पित अन्न ब्राह्मणों के लिए देना उचित नहीं है। इसलिए अहोबिल नारसिंह को अर्पण करने के लिए कहा तब ब्रह्म ने उस भोज्य पदार्थों को शुचि करके नृसिंह और कुल देवताओं को नैवेद्य के रूप में अर्पण किया। धूप, दीप, नैवेद्य आदि को समर्पित करके वैश्व देवादि बलिहरणादि कर्म भी किए। तब श्रीनिवास की आज्ञा पर वायु देव ने केले के पत्ते लाकर थाली के रूप में बनाया। उस केले के पत्ते पर सकल पदार्थों को परोसा गया। ब्रह्म ने गंध, पुष्पाक्षतों के साथ द्विजार्चन किया। देवताओं में कुछ ने धूपात्रिकाओं को हाथ में लेकर पंक्तियों की परिक्रमा

करके आने पर उस समय 'एक विष्णुर्महद्भुत' नामक मंत्र को जप कर शुभाक्षा जल को छोड़ कर 'सर्वम श्री कृष्णार्पणम' कहते सबको भोजन परोसा गया। गोविंद, हरि भजन करते, वराह, भूदेवी समेत सभी ने भोजन किया। सबको वरुण देव ने जल पिलाया। मन्मथ और आंजनेय पंक्तियों के साथ घूमते 'समय निकल रहा है। सावधान होकर भोजन कीजिए।' उपचार करते सभी भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य. पानीय आदि का सेवन करके तृप्त हुए। ब्रह्म से पान आदि को स्वीकार करके उठकर वदन, पाणी, पाद प्रक्षालन, आचमन करके सम सुस्थल पर सभी बैठ गए। उनके द्वारा वेद घोष करने से श्रीनिवास ने उन्हें सभा तांबूल दिलाया। दिजों को दो-दो निष्कम, ऋषियों को एक-एक निष्कम के रूप में दक्षिणा दिलायी। सभा को नमस्कार करके अशीर्वाद मंत्राक्षतों को ग्रहण करके पुत्र, कलत्र, मित्रादि के आशीषों को स्वीकार किया। तब हरि, हर, ब्रह्मादि अपने निजी पत्नियों समेत भोजन करने के बाद बाकी अग्नि, वायु आदि प्रमुखों ने भोजन किया। बाद में अग्नि देव के द्वारा सारे बरतन माँझे गए।

सायंकाल का वर्णन

हरि के विवाह के लिए आए ब्रह्म आदि सारे प्रमुखों ने भोजन किया। अब मुझे यहाँ पर क्या काम है? अब पृथ्वी पर मेरे लिए मेरु पर्वत ही आश्रय है। वहाँ मैं चला जाता हूँ। 'हे चंद्र! अब तुम वेंकटाचल पर सकल सुर मुनि मुख्यों को संतोष हो, ऐसा अपनी चांदनी को बिखेर दो।' ऐसा बताकर दिवाकर मेरु पर्वत पर पहुँचने के लिए निकल पड़े। इस रूप में सूर्य के पश्चिम की ओर अस्त होने के बाद शेषाद्रि पर रहनेवाली लक्ष्मी आदि सति हर्षातिरेक में सोने के वस्त्र पहन कर, पद्मराग भूषणादि से अलंकृत होकर, रक्त चंदन, हल्दी, कुंकुम आदि के

साथ भक्ति से चमकी। तब मानो पश्चिम की कांता यात्रा करके आयी हो, ऐसा संध्या राग शरु हो गया। इससे पार्वती आदि प्रमुख सुहागिनों के मुखड़े, मणि भूषणादि लाल रंग में बदल गए। पक्षिगण उन्हें फल समझ कर खाने के लिए वृक्षों पर उतर गए। विपुल नीलांबर भर विमल मोतियों की तरह तारे शेषाद्रि के आकाश में चंद्र के साथ मिल कर प्रकाशित हुए।

चंद्रोदय का वर्णन

सागर को उफान कर, जलरुह पंक्तियों का निरीक्षण करके उनके मुँह बंद करके, कुमुद संतति को बढ़ाकर, नहीं हटानेवाली शुभ्र कांतियों को बढ़ाकर, विरहियों को सहलाते, उन्हें विरक्त करके, चक्रवाकों को हर्ष से तृप्त करके, अंधेरे को भगाकर, कोंपलों से बने दीप को जलाकर, अच्छी शीतल साड़ियों को पर्वतों की सानु में मानो फैला दी गयी हो, जैसे चंद्र ने चांदनी को बिखेर दिया। मानो पूर्व दिक्सति को देखने की रीति में चंद्र का उदय हो गया। वनगिरि सानु श्रृंगों पर महा मुनिगण, शिव, दिक्पतियों की कामिनियों के साथ रहते समय चंद्र ने उनमें मोह बढ़ाया। तब हरि महानियम के साथ सिरि को वक्ष पर न रखते हुए क्यों कोंपलों की शय्या पर लेटे हैं? वकुला के पास लक्ष्मी, वल्मीक के बिल के पास हरि, दोनों एक दूसरे से अलग चंद्र ने देखा। दुःखी होकर अपने को कलंकित समझा। ''मेरे साथ पैदा होनेवाली श्री तरुणी मणि को अलग करनेवाले हरि को मैं क्यों हित पहुँचाऊँगा।' इस रूप में चंद्र ने सोचा। ''प्रेम से हरि के वक्षस्थल पर भोगलीला करनेवाली लक्ष्मी राग विरहित बनकर चट्टान की कठोर शिला पर अब लेटी हुई है। इसे मैं कैसे देख सकता हूँ? क्रोधी भृगु के द्वारा किए गए कार्य से कोल्हापुर में रहनेवाली लक्ष्मी को पहले ही यहाँ बुलाने की जगह, धोखा देकर माया कर, अपने अभ्यांगन स्नान के समय बुलाया। कम-से-कम अब तो प्रेम से अपने

वक्षस्थल पर रखेंगे समझकर विश्वास करके आया। इस रूप में रमा के साथ हरि के द्वारा किये गए इस धोखे को देखा। मेरे नेत्र ठंडे पड़ गए। अपने गुस्से को मैं कैसे उतारूँ।'' इस रूप में गुस्सा बढ़ने से चंद्र हरि के नेत्रों में शीत किरणों को फैला कर दो प्रहरों तक इसी रूप मे 'सुध बुध खोकर सोते रहो हे साला!' कहते हरि को हिमकिरण चंद्र ने शाप दिया। तब हरि अपनी देह को भूल कर सो गए। फूलों की शय्या पर अपने विश्व तेजस को भी भूलकर, अखंड तुर्य आनंद से हरि नींद में मानवातीत सुख को प्राप्त करते रहे। इधर लक्ष्मी को नींद नहीं आयी। उसे इस रूप में देखकर चंद्र को महा चिंता हुई। अपनी बहन को दुःखी देखकर चंद्र शुष्क पड़ गया। शुक्ल सप्तमी के दिन के चंद्र की तरह होकर सोम ने सोचा। ''रमा सति को यहाँ पर प्रेम के साथ सहलाकर अपने वक्ष पर रखने की जगह दयाहीन बनकर आकाशराज की पुत्री के साथ विवाह करने के लिए हरि ने क्यों सोचा है? ये ब्रह्मादि देवताओं ने विष्णु से क्यों नहीं कहा कि इंदिरा के साथ ही रहो। यह विवाह क्यों कर रहे हो? ऐसा कहने की बजाए ये सब स्वयं विवाह के बिछौले बनकर विवाह करने आये हैं। इसलिए इनको वन में अंधेरे को ढकेलकर जाऊँगा!'' इस रूप में सोचते चंद्र पश्चिम की तरफ जाने लगा।

अपने विभ का इस रूप में रूठ कर जाना देखकर सारे ताराएँ दीन बन गए। क्रम से चंद्र का ही अनुसरण उन्होंने किया। कुमुद भी अपने आप्त को दुःखी देखकर मुकलित होकर आर्ति बने। कुमुद भी असमय इस रूप में अपने नेत्रों को बंद करने लगे। तब चंद्र अस्त हो गया। अब सूर्य एक प्रहर के बाद ही शीघ्र ही आएगा। उसके आने के पहले ही ब्रह्मादि को एक बार देखना चाहिए।'' इस रूप में सोचते चंद्र ने काली साड़ी पहनकर मानो आये हो ऐसा पहाड़ पर अंधेरा छा गया। उस अंधेरे

को देखकर शेष अपने फणों को उठाकर ''हरि, हर, ब्रह्मादि के यहाँ होते इस रूप में अंधेरे का यहाँ पर होना उचित नहीं है। सोच कर अपने फण रूपी मणियों से महाप्रकाश करवाकर मानो दिन हो गया हो, ऐसा ज्योतिर्लताएँ दिखा दीं। हेमाद्रि के इस पार रहनेवाले इस घने अंधेरे को पकड़कर हटाऊँगा।'' इस रूप में गुस्से से नये रूप में शेष वहाँ पर आये। सूर्य के पूरब की तरफ आते देखकर तब अंधेरा अधिक घना बनने का डर उसे हुआ। जलरुह संभवों को संतोष प्रदान करने के लिए शेष ने वेंकटाचल को दीप्त किया। तब चंद्र अब सप्त तुरगाधीश सूर्य आयेगा। अगर मैं यहीं रहूँगा तो मुझे वह मारेगा। इस रूप में मन में सोचते हुए चंद्र हेमाद्रि से हट कर चला गया।

सूर्योदय का वर्णन

हरि को जगाकर मानो विवाह करने भेजने के लिए शुभ्र वस्त्र पहन कर धरती पर प्राक्दिशा नेत्री भक्ति से आ गया हो, ऐसा तब पूरव में सूर्योदय हो गया। हल्दी और चूने को सोने की थाली में मिलाकर वेंकटेश्वर की आरती उतारने छाया नामक एक स्त्री आयी है, ऐसा मानो पूरब में अरुणोदय हो गया हो। बड़ी इच्छा से हरि के विवाह में जाना है ऐसा सोचते शीघ्र ही उदयाचल पर चढ़कर दिवाकर वेंकटेश्वर के पास आ गया। चंद्र किरणों के कारण मुकलित पद्म सूर्य किरणों के स्पर्श से विकसित हुए, ऐसा विष्णु जाग गए। नेत्र खोलकर विनोदी बनते हुए कमलमुखी को देखकर, संतोष के साथ उठकर 'वहाँ ब्रह्मादि के द्वारा यात्रा के लिए तैयार होने की बातें' सुनकर हरि ने ऐसा ही किया। अपने महा मित्र के आते शत्रु चंद्र के रूठ कर जाने के बारे में जान कर हँस गये हो, मानो ऐसा नलिन समिति तब संतोष के साथ विकसित होने लगी। रात के समय सरसिजों के अंदर बंद भ्रमर शीघ्र कमलों को छोड़

कर झुंकार ध्वनि करते निकल कर भागने लगे। पक्षिगण कल-कल ध्वनि करते मानो हरि के विवाह में आने का निमंत्रण देते दिक्देवताओं को बुला रहे हों। ऐसा पक्षिगण कलरव करने लगे थे।

वृक्ष, लतादि अपने निजी पीत वर्ण को बढ़ाते सारे जगत में अपनी किरणों को ओढ़ाते आनेवाले दिवाकर को देखकर जाग उठे। तब वेदांतीवेत्ता आचार्य, तापसियों, हरि, शिव आदि ने प्रसिद्ध पुष्करिणी के तट पर यथाक्रम से स्नान, आर्घ्य, नित्य कर्मादि को सावधानी से पूरा किया। सारे लोग नारायण के साथ तथा अपनी पत्नियाँ और सुतों के साथ सानंद से यात्रा पर निकल पड़े। नागेंद्र, गिरीश आदि के कल्याण गीत गाते सारे लोग निकल पड़े।

वेंकटेश्वर ब्रह्मादि के साथ विवाह के लिए निकलना

सुहागिने आगे चलते, द्विजों के द्वारा चारों वेदों का पठन करते, इंद्राणी आदि देवता स्त्रियाँ मोतियाँ, फूल, शुभाक्षत आदि को मुख्य रूप से लेते चित्त में आनंद के साथ श्री ल्वामी को आशीर्वाद देते हुए निकल पड़े। इंदिरा सुवर्ण रथ पर, पुष्पों के रथ पर वकुला, अश्व पर चक्री, नंदि पर शिव, हंस वाहन पर ब्रह्म आरूढ़ हुए। पुरोहित डिभम पर, तगुर पर अग्नि देव, महीष पर यम, नर पर नैरुत, वरुण मकर पर, हिरण पर वायु, कुबेर घोड़े पर, बाकी लोग अपने-अपने वाहनों पर पत्नी समेत आरूढ़ हुए। तब हरि के आगे ब्रह्म के निकलने पर, उनके पीछे शिव, श्री सति बाएँ तरफ चलते विविध वाद्यों के बजते अतिशय कोलाहल के साथ, चारणों के कीर्तन करते, शेष के द्वारा छत्र पकड़ने पर, दाएँ और बाएँ वायु चामरों से हवा करते, सेनाधिपति भक्ति और मोद से अगुआ करने से सारे लोग शेषाद्रि से उतर गए।

मानो धरती ने जनना है ऐसा सारे कपिल तीर्थ मार्ग से शुक महर्षि के आश्रम पहुँचते समय तब वह व्यासात्मज स्वामी की अगुवानी करते लिवा ले जाकर उन्हें एक सुंदर स्थल पर बिठाया। उन्होंने अपने निज योग प्रभाव से सारे लोगों को अनेक पदार्थों को समर्पित किया। साथ ही हरि, हर और ब्रह्मादियों को भोज दिया। उस अष्टमी दिन की रात को हरि गंधर्व किन्नरों के गान को सुना। साथ ही रंभा आदि अप्सराओं की नाच को देखा। साम गान सुन-सुन कर थककर कुसुम शय्या पर थोड़ी देर लेटकर आराम किया। तदुपरांत अगले दिन नारायणपुर के समीप पहुँच गए। तब आकाशराज ने अपने हित मंत्री, पुरोहित समेत चतुरंग बलों के साथ आकर चक्री की अगुवानी की। साथ ही पूजा आदि सत्कर्म किया। गली की परिक्रमा के रूप में हरि की शोभा यात्रा निकाली गयी। तब सबको लिवा लाकर पडाव-आवास पर पहँचाया गया। फिर आकाशराज अपने निजी मंदिर को लौट गये। उन्होंने तोंडमान को हरि के पास भेजा। उसने हरि, हर, ब्रह्मादि को भोजन करवाया। तांबूल आदि दिलाकर वह अपने निजी गृह लौट गया। वहाँ गुरु वाक्यानुसार आकाशराज ने मंगल स्नान करके नवग्रह यज्ञ करके विवाह कृत्य को आरंभ किया। सूर्यास्त होने पर हरि के साथ पड़ाव में रहनेवाले ब्रह्मादि ने आराम किया। अगले दिन सूर्योदय हुआ। सभी ने उठकर स्नान संध्यादि नित्य नैमित्यिक कृत्य पूरे किए। तदुपरांत हरि ने स्नान संध्यादि पूरा करके संतोष के साथ वशिष्ट मुनि को देखकर कहा। ''मैं, लक्ष्मी, ब्रह्म, आप, वकुला मालिका भोजन किए बिना निष्ठा के साथ रहना है न। उसी प्रकार कन्या को देनेवाले आकाशराज, धरादेवी, कन्या, तोंडमान, पुरोहित सुरों के गुरु को भोजन किए बिना रहना है, ऐसा नियम होना चाहिए। बाकी सभी भोजन कर सकते हैं। इसलिए शीघ्र ही ब्राह्मण-भोजन की तैयारी करवाइए।'' हरि की इन बातों को सुन कर वशिष्ट ने कुबेर को इस पूरे

वृत्तांत को बताकर भेजा। कुबेर ने जाकर उपवास नियम और संतर्पण की रीति आदि के बारे में आकाशराज को बताया। राजा ने इसे स्वीकार किया। उसने दोपहर के लिए ब्राह्मण संतर्पण की तैयारियाँ करवायीं। प्रत्येक को तांबूल के साथ एक-एक निष्कम दक्षिणा के रूप में दिलाया। साथ ही यह बताया कि सूर्यास्त के बाद तेरह घड़ियों को मुहूर्त है। इसके लिए आवश्यक मंगल द्रव्यादि को विवाह के लिए तैयार रखने के लिए कहा। इस काम के लिए उसने आवश्यक सेवकों की नियुक्ति भी करवायी।

वैभवपूर्ण ढंग से वर पूजा करना

तदुपरांत आकाशराज पुरोहित, बंधु, मित्रानुजों के साथ, धरणी देवी को, सुहागिनों को साथ लेकर सायंकाल के समय हरि के पास पड़ाव पर पहुँच गए। नक्षत्रों से परिवृत्त सुधाकर की तरह ब्रह्म, रुद्रादि के मध्य में रत्न पीठ पर बैठे हुए हरि को देखकर आनंदित हुए। तब वशिष्टादि मुनियों की तरफ देखकर ''स्वामी को साथ लेकर आप सभी विवाह के लिए आइए।'' ऐसी प्रार्थना की। तब वशिष्ट ने 'स्वामी की पूजा करने के लिए कहा।' यह सुन कर धरणी देवी ने संकोच करते हुए अरुंधती को सामने रखकर भय और भक्ति से स्वामी को दिव्य वस्त्राभरण, चंदन, तांबूलादि अर्पित किया। पुष्प हार से कंठ को अलंकृत किया। तब उन्होंने अनुभव किया कि हम कृतार्थ हो गए। तब तोंडमान ने सभी को सभा तांबूल दिलवाया।

ऐरावत पर हरि को और श्रीसति को बिठाकर राज वीथियों में शोभा यात्रा निकाली गयी। विविध प्रकार के चतुर्वेद घोष, महा यक्ष, गंधर्व गान आदि का कोलाहल आकाश को छूने लगा। रंभादि अप्सराएँ नाचने लगीं। अनेक महा करदीपों से सारी दिशाएँ दीप्त हुईं। सारे

दिक्पाल और ब्रह्म के द्वारा पूजित होने से चक्री संतोषित हुए। तब शोभा यात्रा निर्मल चित्त से आकाशराज के नगर पहुँचने केलिए महल के द्वार पर पहुँच गयी। तब मंगल वाद्य बजने लगे। तब तोंडमान की पत्नी ने संतोष के साथ सुहागिनों के साथ मिलकर हरि और सिरि की मंगल आरती उतारी। अपनी तथा सिरि की मंगल आरती उतारनेवाली स्त्रियों को हरि ने कुबेर के द्वारा उपहार, रेशमी वस्त्र और निष्कम दिलवाये।

पद्मावती वेंकटेश्वर का विवाह

तब श्रीनिवास ने ऐरावत से उतरकर लक्ष्मी का हाथ पकड़ कर ब्रह्म रुद्रादि के साथ चलते अंतःपुर में प्रवेश किया। अंतःपुर में चतुरस्राकार में बनाये गए कल्याण मंडप़ में सुवर्ण सिंहासन पर लक्ष्मी समेत बैठ गए। तब आकाशराज ने सांप्रदायिक ढंग से निश्चितार्थ करवाया। तब अनसूया आदि सुहागिनों ने पद्मावती को भासुर नये आभरण, दिव्य-वस्त्र, चंदन, पुष्प मालिकाएँ, काजल, कुंकुम से क्रम से अलंकृत करके श्री गौरी की पूजा करवायी। ऋषियों ने वहाँ कन्यावरण किया। बाद में वधु को आशीर्वाद दिया। तब धरणी देवी मंगलसूत्र बांध कर कन्या के साथ सुहागिनों को विवाह मंडप के पास पहुँच गयी। पूरब मुख मेें वधु को तथा पश्चिम मुख में वर को रखा गया। महान मंगलवाद्य सारी दिशाओं में बजते घोषित होते रहे।

घड़ी गिनकर तभी शुभ लग्न को देख कर पुरोहित के कहने से आकाशराज शीघ्र ही हरि के पास आये। वहाँ पर विवाह की सारी क्रियाओं को वशिष्ट मुनि ने क्रम से करवाया। कंकण धारण, नया यज्ञोपवीत धारण किए हुए हरि के पाद पद्मों को सोने की थाली में रखवाकर तापसियों के पुरुष वाक्य पठन करते राजा की पत्नी पुण्य तीर्थ

जल लाकर देने से राजा ने शुभ संकल्प के साथ हरि के पादों को धोया। उस पुण्य तीर्थ को राजा ने अपने सर पर लगाया। इसके अतिरिक्त उस तीर्थ को पत्नी और पुत्र आदि पर छिड़काया। तब चक्री को आचमन, आर्घ्य, मधुपर्क आदि समर्पित करके, पद्मावती को बगल में खड़ा करके जगदीश के दूसरी तरफ रहने से दोनों के बीच में परदा लगाया गया। पहले अत्रि नामक मत के अनुसार 'अत्री गोत्रज सुवीरक्षकनाथ पुत्र सुधर्म राजा के पुत्र आकाशराज नामक मैं अपनी कन्या को तुझे देता हूँ। हे हरि! दया करके अग्नि को साक्षी बनाकर इसे स्वीकार कर लीजिए।' कहते सुनकर हरि को अत्यंत संतोष हुआ। सकल सुर, मुनि मुख्यों के साक्षी के साथ वशिष्ट ने तब ऐसा कहा।

'वशिष्ट गोत्रोद्भव शूरसेनात्मज वसुदेव के पुत्र वासुदेव के नाम से प्रसिद्ध श्रीवेंकटेश्वर नामक मैं तुम्हारी अत्री गोत्र संजात पद्मावती को अग्नि को साक्षी बनाकर पाणी ग्रहण करता हूँ।' ऐसा कहने से सुनकर राजा ने हरि को एक करोड़ निष्कम को वर दक्षिणा के रूप में दिया। बाद में दिव्य, नये शुभ्र वस्त्र, जीवरत्न कलित शतभार किरीट, पचास भार किरीट, पच्चीस भार किरीट, इस प्रकार के तीन किरीट, तीन सोने के कंकण, सुवर्ण रत्न जटित हार, कटि आभरण, एक दिव्य मोती की हार, नींबू आकार के मोतियों के कानाभरण, दो जोड़े चप्पल, अमूल्य भुजकीर्तियाँ, नागाभरण, हाथ पर बाँधनेवाली सोने की तावीज, वज्र, पद्मराग कांति से दीपित कंकण, वीरमुद्रांगलीय आभरण, पंचशद्धार कनक कटिसूत्र, कंठादि पाद पर्यंत धारण करनेवाली एकदश शतभार वज्र कवच, अष्टादश भार सुवर्णमय पादुका युग्म, परिमल गंध पारिजात पुष्प हार से हरि का श्रृंगार करके, ऋषियों के द्वारा मंगलाष्टकों का पठन करते, अक्षत, पुष्प, हिरणाक्षतों से भरे जल को हाथ में लेकर कनक

रत्नाभरण भूषित कन्या को हरि को दान दिया। तब राजा ने आनंद भाष्प लोचन बन इस प्रकार कहा। "हे स्वामी! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष संकल्प में इस कन्या की रक्षा करें।" राजा ने ऐसी प्रार्थना की। यह सुन कर हरि ने 'महाप्रसाद' कहते उसे स्वीकार किया। तब मांगल्य-धारण, कंकण धारण, नखरोपण, प्रधान होम, सप्तधातिक्रमण, लाज होम, प्रवेश होम, अरुंधत्यवलोकन, स्थालीपाक आदि विवाह कृत्यों को सुर, मुनि वशिष्ट, अत्री आदि ने पूरा किया। तब राजेंद्र ने षोढश दान दिये। गंधाक्षत पुष्पों से सभा की पूजा की। फल, दक्षिणा, तांबूल आदि को सकल जनों को दिलाकर उनका सत्कार किया।

विवाह का महा भोज, उत्सव-शोर, शोभा यात्रा

ब्रह्म रुद्रादि के मध्य में नवरत्न जटित पीढ़ा रखकर, रेशमी, वज्र कलित दीप स्तंभों पर बहुल माणिक्य दीपों को रखकर, सोने की थाली में भक्ष्य, भोज्यादि पदार्थों को परोसकर, तब हरि और पद्मावती को अगल-बगल में बिठाकर बड़े उत्साह से ब्रह्म, रुद्र के साथ भोजन कराया गया। सब तृप्त होकर भोजन पूरा करके हाथ पादों को साफ किया। महा सुख से सभी ने तब आराम किया।

सूर्योदय होने के बाद सब उठकर अपने-अपने काम करके राजा की कन्या को, सिरि को और हरि को उबटन हर दिन करते रहे। हर दिन उबटन, नौपासन, अन्न, संतर्पण आदि होते रहे। तीसरे दिन पाकेन करके, चोथे दिन रात को सबके साथ हरि ने हरिअन्न खाया। शय्या पर सो गए। एक प्रहर रात के बचते क्रम से उठकर शेष होम किया। अग्नि को नमस्कार करके, अपने हाथ में लगे सुवर्ण कलश को पकड़ कर चोर के रूप में हरि शीघ्र ही पड़ोस के घर में चले गए। धरणी देवी आदि सुहागिनों ने तभी नींद से जागकर सब इकट्ठा होकर पद्मावती को हरि के

पास ले जाकर मोद से पुष्प, चंदन, तांबूल, भूषणों को वधू के द्वारा दिलाया। तब गौरी हँसती हुई बोली। "हरि ने तुझे चाहकर तुझसे विवाह किया। हे लाड़ली! अब तुम लज्ञा क्यों करती हो। अपने पति को आनंद देने के रूप में उनकी प्रार्थना करके बुलाकर उन्हें मनाओ।" कहने से सुनकर वधु ने महा भय और भक्ति मन में होते, हास चंद्रिकाएँ बिंबाधरों पर खिलने से, गालों में हंसी के खिलने से अपने नाथ को देखकर लज्ञा से सर को नीचे किया। तोते की बोली में इस रूप में कहा। "हे हृदेश! चोर के रूप में हमारे लोटे को क्यों ले आये। सच-सच बताओ! हर, ब्रह्म के होते आपने इस रूप में अल्प काम क्यों किया! पद्मावती को और मुझे इस रूप में अपमानित करने का काम क्यों किया! महान नाकबलि के समय इस रूप में रूठकर आने का क्या कारण है! हे देव! विवाह के समय लिए गए उधार को चुकाने के लिए क्या लोटे की चोरी की? लोटे से कहाँ उधार चुकाया जा सकता है? आईए! हे वरदान देनेवाले स्वामी! आपको हम क्या दे सकते हैं? ग्वालों के घरों में चोरी करके दूध, दही, माखन खाने की पुरानी आदत को क्यों नहीं छोड़ते? संपन्न लोगों के घर में लोटे की चोरी करना ठीक नहीं है।" इस रूप में अनेक प्रकार से प्रार्थना करके बुलाने पर हरि मुस्कराते पद्मावती का हाथ पकड़ कर सकल वैभवों से लिवा लाकर पूर्व विवाह मंडप पहुँच गए। तब मंगल स्नान करके वस्त्र भूषणादि से अलंकृत होकर रत्न के पीढ़े पर लक्ष्मी और पद्मावती समेत आसीन हुए।

इस प्रकार नाकबलि, देवतार्चन, नील मणि धारण, मधुर फलों को आर्यों को देना, सुहागिनों को सूप दान देना, उसके बाद वसंतोत्सव, वर और वधु के शय्या पर लेट कर दंपतियों के नाम मांगकर सुनना, उपहार देना आदि शुभ कार्य वहाँ पर संपन्न हुए। इन सारे कृत्यों को देव, अत्रि,

वशिष्टादि ने क्रम से करवाया। इसे देखकर ब्रह्मादि को बहुत आनंद हुआ। बाद में दंपतियुग्म को अभ्यंगन स्नान करवाकर, वस्त्र, आभरण, चंदन, पुष्पों से दंपति की पूजा करवाकर, षढ्रसोपेत रीति से सभी को भोजन खिलाया गया। तांबूलादि से सत्कार किया गया। तब सायंकाल के समय ऐरावत पर हरि, सिरि और पद्मावती को बिठा कर सकल उत्साह के साथ वीथि परिक्रमा करवा कर, उन्हें लिवा लाकर अपने निजी मंदिर में पहुँचाया गया। इस कार्य को पूरा करते आकाशराज को बहुत आनंद हुआ। उनको लगा कि 'मैं कृतार्थ' हो गया। उसके अगले दिन सूर्योदय के समय में हरि यात्रा के लिए तैयार होकर 'पद्मावती को साथ भेजने की बात कही'। यह सुनकर आकाशराज ने अपनी पत्नी समेत इस रूप में कहा।

विदाई-उपहार प्रदान करना

''हे शेषगिरिवासा! श्रीसति के साथ यहाँ पर एक मास के लिए रहिए।'' इस रूप में प्रार्थना करने पर हरि ने कहा। ''यहाँ पर नहीं रहना है। वहाँ पर काम है।'' कहते ''पद्मावती को कैसे भेजना है। शिशु के रूप में हो, प्रौढा के रूप में हो, कभी-भी कहीं भी नहीं भेजा।'' राजा के इस रूप में कहते चक्री ने सिरि की ओर देखकर इशारा किया। चक्री के भाव को समझ कर लक्ष्मी ने आकाशराज की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''हे पिता! पद्मावती को उनके साथ भेजा जा सकता है। वही हमारे लिए संतोष की बात है। आप चिंता मत कीजिए। वहाँ पर वकुला मालिका माँ के रूप में उसकी देखभाल करेगी। कोई दूसरा नहीं है वहाँ।'' इस प्रकार अनेक रीतियों से प्रीति से बताने पर आकाशराज इसके लिए राजी हुए। तब सिरि को तथा पुत्री को अपनी पत्नी से दिव्याभरण दिलाया। बड़े धूमधाम से मोतियों से गोद भराया। हरि को सुवर्णांबर दिया। वकुला

मालिका को भूषण दिया। तब अपनी पुत्री को वकुला को सौंप दिया। हरि ने भी अपने साले वसुदान को दिव्य वस्त्र दिया।

आकाशराज ने तब जगदीश्वर के सामने खड़े होकर सद्भक्ति के साथ निगमांत उक्तियों से प्रशंसा करते हुए इस रूप में कहा। ''कई दिनों तक निस्संतान रहकर पहले-पहल इस पुत्रिका को पाया। इस कन्या की प्राप्ति के बाद विशेष रूप से वुसदान पैदा हुए। उसकी देखभाल तुमको ही करनी है। हमारी पद्मावती को आप को दिया। इसलिए आगे आपकी कृपा है। पानी में डुबायेंगे या दूध में। भार आप पर ही है।'' कहते आकाशराज ने अपनी आँखों से आँसू बहाया। इस रूप में बोलनेवाले आकाशराज को देखकर चक्री ने कहा। ''हे ससुर जी! अपनी लाड़ली की चिंता मत कीजिए। मैं उसकी देखभाल करूँगा। आप बड़े हैं। संप्रीति से सदा मुझ पर विश्वास कीजिए। आप सदा शांत रहिए। आपको सकल सुख प्राप्त होगा।'' इस रूप में चक्री ने कृपा से कहा। तब हरि यात्रा के लिए निकल पड़े।

तब आकाशराज ने दो सौ भार शाली तंडूल, तीस भार दाल, चालीस भार इमली फल, सहस्त्र क्षीर भांड, सहस्त्रार्ध घी के भांड, द्विशत शर्कर घट, राई, जीरा, मेथी, हींग, काली मिर्च, नमक, वार्ताक, केले, कुष्मांड, कंदमूल आदि शाकों को, चूता, मलक आदि प्रमुख फलों को, दस मधु के घट, अनेक कदली के पर्ण को हय, गज, वृषभों पर लाद कर श्रीनिवासार्पण किया। शत दासीजनों, त्रिशत दासों, दश सहस्त्र गायों को, दिव्याभरण अनेकों को पुत्रिका को उपहार के रूप में दिया। हरि ने अपने सान्निध्य में इन सबको देखकर इस रूप में कहा। ''हे अवनीश! अपनी पुत्री को सीमित रूप से ही उपहार देना था। इतने उपहार हमारे लिए क्यों?'' चक्री के इस रूप में कहते आकाशराज ने कहा। ''हे

लक्ष्मीश! आपको किस चीज की कमी है? मैं आपको देने के लिए कितना बड़ा हूँ? पुत्रिका के साथ प्रेमवश इन्हें दिया है। कम-से-कम इतना तो ग्रहण कीजिए।'' कहते हाथ जोड़ दिए।

''अब हमें अगत्स्य महामुनि के आश्रम में जाना है। तुरंत पद्मावती भेजिए।'' हरि ने राजा से इस रूप में कहा। सुनकर राजा ने तुरंत पद्मावती को बुलाया। ''हे पुत्री! अब तुम अपने पति के साथ जाओ।'' पिता के इस रूप में कहने पर तब पद्मावती ने अपनी माँ को आलिंगन किया। धरणी सति अपनी पुत्री को देखकर रुआँसी हो गयी। चिंता करते हुए प्रेम से इस रूप में कहा। ''चिंता क्यों करती हो बेटी? सिरि के साथ रहो! मुझसे भी अधिक वकुला देवी तुम्हारा आदर करेगी। भक्ति से तुझ पर कृपा करके तुम्हारी देखभाल करेगी। हरि और सिरि तेरे साथ अच्छा व्यवहार करेंगे। तुम्हें किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं देंगे। पति से भक्ति के साथ व्यवहार करो। वेंकटगिरि पर सुखी रहो। हम वहाँ पर प्रेम से आते रहेंगे। अब तुम चिंता मत करो।'' इस रूप में कहते पद्मावती के हाथ को लक्ष्मी के हाथों में सौंप दिया। धरणी देवी ने सिरि से तब इस रूप में कहा।

धरणी देवी की विनति-श्री लक्ष्मी का समादर

''हे बेटी सिरि! पद्मावती का मधुसूदन के साथ विवाह किया गया है। इसलिए मेरी पुत्री अब आपकी संपदा बनी है। इस पर दया करो बेटी। इसके साथ खेलते रहो। यह अबला है। किसी भी काम को वह नहीं जानती है। क्या सही है क्या गलत है यह भी नहीं जानती। इसलिए आप लोग अच्छी बुद्धि से इसे सारे काम सिखाना है। दया से उसे अपना लो। मेरे साथ इतने दिन रही है। अब तुम्हारे पास रहने लगेगी। संतानहीन रहकर कई सालों के बाद हमने इसे प्राप्त किया है। उसे पाल-पोस कर

अब तुम्हारे हाथों में सौंप दिया। अब सब कुछ तुम्हारे हाथों में है। उसे भार मत समझिए। अब मुझे आगे कुछ नहीं कहना है?''इस रूप में धरणी देवी कहते रुआँसी हो गयी। तब लक्ष्मी ने इस रूप में कहा। ''हे धरणी देवी! आप अब संतोष के साथ रहिए। चिंता मत कीजिए। तुम्हारी बेटी के साथ सदा करुणा से व्यवहार करेंगे। हरि पर इसका दायित्व है। अब चिंता न करके पद्मावती को भेजो। मुझे अलग मत समझिए। मैं भी आपकी ही पुत्री हूँ।'' इस रूप में कहते अनेक प्रकार से लक्ष्मी ने धरणी देवी का आदर किया। संतोष के साथ धरणी देवी ने लक्ष्मी से इस रूप में कहा।

''हे बेटी पद्मावती! सुनो। तुम विवेक के साथ काम लो। हरि और सिरि की तुम वेंकटाद्रि पर अच्छी सेवा करो। इससे सत्कीर्ति प्राप्त करो। अब तुम सिरि के साथ जाओ।'' इस रूप में धरणी देवी ने उसे समझाया -बुझाया। तब पद्मावती माँ की तरफ देखकर आँखों में आँसू भरते सिरि के साथ हरि के अभिमुखी हो गयी।

विवाह के बाद श्रीनिवास का सपरिवार अगत्स्य आश्रम पर जाना

तब श्रीनिवास ने सिरि और पद्मावती को साथ लेकर गरुड वाहन पर आरूढ़ होकर ब्रह्मादियों के साथ अगत्स्य मुनि के आश्रम पहुँच गए। वहाँ पर ब्रह्म रुद्रादियों को भोज करवाया। अगले दिन ब्रह्म, शिव आदि प्रमुख श्रीनिवास की आज्ञा के अनुसार नमस्कार करके अपने-अपने निजी स्थानों के लिए लौट गए। तब सिरि ने हरि को नमस्कार करके कोल्हापुर की यात्रा के लिए तैयार होती हुई हरि से कहा। ''हे देव! अब मुझे करवीरपुर जाना है। कृपया करुणा से शीघ्र ही मुझे आज्ञा दीजिए।'' इस रूप में कहने पर तब विष्णु ने अपना सर झुकाकर सिरि के हाथों

को अपने हाथ में लेकर कहा। ''हे इंदिरा! मुझे छोड़कर जाने के लिए तुम्हारे पैर कैसे तैयार हो गए? तुझे जाने के लिए मैं किस मुँह से कह सकता हूँ? इस रूप में नये बंधुओं की तरह आज्ञा मांगना क्या उचित है? पद्मावती की देखभाल तुम्हें ही करनी है। तुम्हारे बिना मैं उसका पोषण कैसे कर सकता हूँ। अहो! अगर तुम यहाँ से जाओगी तो मैंने कुबेर से जो उधार लिया, उसे कैसे चुका सकता हूँ। मुझे पराया न समझकर यहाँ पर सबका कर्ता बन कर रहो।'' हरि के इस रूप में कहने पर सुधाब्धि कन्या लक्ष्मी ने मंदहास करते हुए हरि की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''अपनी सकल लज्ञा को छिपाकर, दिव्य महिमाओँ को भी भूलकर आसक्ति से तुमने पद्मावती के साथ विवाह किया है। तुमको सौभाग्य प्राप्त हुआ। अब मैं कहीं भी रहूँ मुझे चिंता नहीं है। तुम मुझे यहाँ पर रहने के लिए बिना कहे मुझे शीघ्र ही भेज दीजिए। हे प्राणेश! फिर कभी मैं आऊँगी।'' कहने पर हरि ने सुनकर इस रूप में कहा। ''हे अंबुधि कन्या! जब मैंने राम के रूप में जन्म लिया। तब तुमने जानकी बनकर लंका में तुम्हारी जगह रहनेवाली वेदवती को स्वीकार करके उसके साथ विवाह करने की बात कही थी। हे मानिनी! उस रहस्य की बात अभी तुम को याद है या नहीं। अग्नि में बिना विचलित हुए आप्त बनकर तुम्हारा हित करनेवाली वह वेदवती ही पद्म में रहते हुए आकाशराज को प्राप्त हुई है। उन्होंने उसका पालन पोषण किया। तुम्हारे कहने के अनुसार ही मैंने वेदवती (पद्मावती) के साथ विवाह किया। आपके वचन को मैंने पद्मावती के साथ विवाह करके पूरा किया। इसलिए अनन्य भाव से इसकी देखभाल करना अब तुम्हारे सर का ही भार है। फिर तुम कैसे यात्रा के लिए निकल पड़ी। मुझ पर मोह दिखाए बिना तुम कैसे पराये की तरह जाने लगी हो। पावन मूर्ति मुनि का पाद

मेरे हृदय पर लगने पर तुम रूठकर चली गयी। तुमसे अलग होने के दुःख में मैं सब कुछ छोड़कर आर्ति बनकर बांबी में दुबक कर ही रहा। हे इंदुमुखी! अब तुझे प्राप्त किया। फिर से मुझे छोड़कर दूर क्यों रहना है? प्रेम से हृदय के आभरण की तरह मेरे ही साथ रहो। शेषाचल पहाड़ हमारे विहार करने के लिए सुंदर प्रदेश है। इसलिए तुमको जाने नहीं दूँगा। हे भामिनी! फिर से अलग चले जाने की क्या जरूरत है?'' इस रूप में नारायण की आज्ञा होने पर भी बड़े आयास से लक्ष्मी ने इस रूप में कहा। ''हे स्वामी! भृगु अज्ञानी बनकर तुम्हारे हृदय पर मारने के कारण वहाँ पर रहे बिना मैं दूर चली गयी। फिर भी प्रत्येक पल तुम्हारे साथ ही रही। दुःखी ही रही। हे त्रिलोकेश्वर! अपनी दुर्गति के बारे में क्या बताऊँ! काल ने मेरे साथ अन्याय किया है। अब भृगु को दोष क्यों देना? मेरे साथ सत्कृपा से व्यवहार कीजिए। हे स्वामी! वह मेरे लिए सब कुछ है। इस सुंदर लावण्य विलासिनी को साथ में रखकर मेरे प्रति तुम कैसे व्यवहार कर सकते हो? हे प्राणेश्वर! मेरे मन का यही अभीष्ट है। तुम जब श्रीराम बने थे तब मैंने सीता के रूप में वेदवती के साथ विवाह करने की बात कही थी। वही वेदवती धरती पर पद्मावती के रूप में आयी है। उसके साथ तुमने विवाह किया है। इसलिए कुछ कम नहीं है। मन से इस ललितांगी के साथ अब सारे सुखों को तुम प्राप्त करो।'' इस रूप में स्पष्ट रूप से कहकर पद्मावती का आदर करते हुए 'संतोष के साथ हरि की सेवा करती रहो' कहते अनेक प्रकार से समझा-बुझा कर तब लक्ष्मी ने वकुला मालिका की ओर देखकर ''इस कन्यामणि का पालन-पोषण अत्यंत आदर के साथ करते रहिए।'' कहा। फिर हरि को नमस्कार करके रमा देवी कोल्हापुर के लिए निकल पड़ी। वहाँ पर चक्री को हृदय में बसाकर शांति से रही।

तब श्रीवेंकटेश्वर ने अगत्स्य मुनि की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''हे संयमीश्वर! अब हम वेंकटाचल पहुँचने के लिए निकलेंगे।'' कहने पर मुनींद्र ने कहा। ''हे इंदिरेश! छः मास तक वर के रूप में पहाड़ पर चढ़ना उचित नहीं है। इसलिए छः मासों तक संतोष के साथ यहीं पर मेरे आश्रम में ही रहिए।'' कहने पर सुनकर वेंकटगिरि पति अपनी सति समेत वहीं रहने के लिए राजी हुए।

तदुपरांत कुछ मासों के बाद आकाशराज के वैकुंठ सिधारने से वसुदान ने वैदिक कृत्यों को अच्छे ढंग से पूरा किया। उसके बाद दूत के मुँह से यह समाचार पाकर हरि नारायणपुर पहुँच गए। वसुदान और तोंडमान से मिलकर शोक प्रकट किया। उनके दुःख का उपशमन किया। फिर अगत्स्य के आश्रम में लौट आये। अपने पिता के लिए दुःखी पद्मावती का आदर किया। इस रूप में बताने वाले सूत को देखकर शौनकादि मुनियों ने कहा।

वसुदान और तोंडमान का युद्ध

''आकाशराज के हरिपद के लिए निकल जाने के बाद भाई और पुत्र में कौन सिंहासन के अधिकारी बने हैं? उसके बारे में बताइए।'' शौनकादियों के पूछने पर सूत ने इस रूप में कहा। ''हे मुनिगण! राजा का भाई 'धरती मेरी है' कहने पर राजा के पुत्र ने 'मेरे पिता के द्वारा शासन किया हुआ राज्य मेरा है।' कहा। तब दोनों के बीच में झगड़ा हुआ। तोंडमान ने गुस्से में कहा ''हम दोनों युद्ध करेंगे। हममें जो जीतेगा राज्य उसको हो जाएगा। अगर तुम जीत जाओगे तो राज्य तुम्हारा। अगर मैं जीत जाऊँगा तो राज्य मेरा।'' कहते दोनों पौरुष से युद्ध करने के लिए अपने-अपने बलों को इकट्ठा करने लगे। तब तोंडमान ने हरि के पास जाकर इस रूप में कहा।

''हे वसुदेव सुत! मुझे वसुदान से घोर युद्ध करना है। इसलिए मेरा साथ दीजिए।'' सुनकर हँसते हुए हरि ने अपने मन में इस रूप में सोचा। 'अगर मैं तोंडमान की सहायता करने जाऊँगा तो पद्मावती रूठ जाएगी। अपने भाई वसुदान के पक्ष में रहूँगा तो सति को उत्साह होगा।। तोंडमान मेरा परम भक्त है। दूसरी ओर वसुदान साला धन्य है। इसलिए दोनों के साथ मित्रता निभानी चाहिए। इसके लिए मुझे क्या करना है?' ऐसा सोचते तोंडमान की ओर देखकर इस रूप में हरि ने कहा। ''हे ससुर जी! अगर मैं आपके पक्ष में आऊँगा तो पद्मावती अपने भाई के लिए चिंता करती रहेगी। ऐसा करूँगा कि किसी भी रूप में तुम्हारी विजय होगी।' कहते गुप्त रूप से उसे अपनी आप्त बात बोलकर साथ में हरि ने अपने चक्र उसे देकर भेजा।

तदुपरांत उनके साले वसुदान ने आकर सहायता माँगी। तब हरि शीघ्र ही पद्मावती को वकुला मालिका के संरक्षण में छोड़ कर वसुदान के साथ नारायणपुर गए। वहाँ पर चतुरंग बलों के द्वारा प्रशंसित होकर हरि ने युद्ध भेरी बजायी। उस भेरी की ध्वनि को सुनकर तोंडमान को बहुत गुस्सा आया। उसने धनु-बाण लेकर स्वयं ने युद्ध भेरी बजायी। तब तोंडमान ने वसुदान और हरि का सामना किया। तब वसुदान और हरि सुवर्ण रथ पर आरूढ़ होकर वीरों के रूप में युद्ध क्षेत्र में पहुँच गए। इसे देखकर तोंडमान भी अपने रथ पर आरूढ़ होकर चतुरंग बलों के साथ युद्ध क्षेत्र में पहुँच गए। तब दोनों तरफ के बल एक-दूसरे से युद्ध करने लगे। रथों पर रथ, हाथियों पर हाथी, घोड़ों पर घोड़े, पैदलों पर पैदल के सैनिक दावा बोलकर तलवारें निकाल कर काटते, दबाते, धनु-बाणों से टंकार ध्वनि करते युद्ध करने लगे। कुछ मारों से अपने को बचाते, छिपाते, गड्ढों में गिरते, भालों से चुभाते, मुद्गरों से दबाते, काटते, मुसलों

को उठाकर मारते, शूलों से चीरते युद्ध करने लगे। इस रूप में मानो पूरब और पश्चिम के सागर उफान पर हो, ऐसा दोनों दलों के बीच में घमासान युद्ध होने लगा। तब तोंडमान के बल वसुदान के बलों की मार से डरकर भागने लगे तो तब तोंडमान और पराक्रम के साथ आगे बढ़ा। 'रुको, रुको' बोलते अपने बलों को रोकने की कोशिश करने लगे। स्वयं ने वसुदान के रथ पर नुकीले बाण छोड़े। दूसरी ओर से वसुदान ने भी उन बाणों को काटा। तब तोंडमान ने महोग्र रूप में वसुदान पर बाण छोड़े। वसुदान ने बाणों की वर्षा तोंडमान पर करवायी। तब गुस्से में आकर तोंडमान ने हरि के द्वारा दिये गए चक्र को वसुदान पर छोड़ा। तब चक्र प्रलय काल की अग्नि के रूप में वसुदान की ओर आने लगा। इस बीच हरि चक्र के सामने जाकर खड़े हो गए। तब चक्र के लगने से हरि मूर्छित हो गए। हरि को रथ पर गिरते देखकर तोंडमान भयभीत होकर अपने शस्त्रास्त्र को छोड़कर अपने रथ से उतर कर हरि के पास आये। हरि के मुख पर जल को छिड़काते हाथों में पत्ते लेकर हवा करने लगे।

तब वसुदान भी अपने रथ से उतर कर आँखों में आँसू बहाते हरि के पास आये। कपूर के टुकडों को पीसकर हरि के कानों में डालने लगा। तब काफी समय के बाद श्रीनिवास मूर्छा से उठकर बैठ गए। तब हाथ जोड़कर तोंडमान ने कहा।

तोंडमान और वसुदान के पश्चाताप

''हे हरि ! मैंने जब वसुदान पर भीकर चक्र को छोड़ने पर आप उसकी आड में आ गए। तब चक्र के लगने से आप बेहोश हो गए। अहो! आपको अपकार करने का महापाप मुझे लगा। इस पाप से मुक्त होने के लिए मुझे काशी जाना चाहिए। हे हरि! अब मुझे आज्ञा दीजिए। राज्य पालन करने के लिए वसुदान को ही पट्टाभिषिक्त कीजिए। अब मैं राज्य

नहीं चाहता हूँ। मुझे अब वैराग्य प्रदान कीजिए।'' यह कहते सुनकर हरि ने वसुदान को देखकर इस रूप में कहा। ''तुम को जन्म देनेवाला जनक परलोक सिधर गया है। चाचा पुण्य करने गंगा जाने के लिए कह रहा है। अब तुम कहो क्या करना है। सोच कर बताओ।'' यह सुनकर वसुदान ने विनय से कहा। ''हे हरि! आप मेरी रक्षा करने के लिए चक्र की आड़ में आ गए। इसलिए चक्र आपको लगा। तब आप बेहोश हो गए। इससे मुझे पाप लगा है। इस पाप को दूर करने मुझे रामेश्वरम जाना होगा। मुझसे बड़े मेरे पिता के भाई को राज्य पालन करने के लिए राजा बनाना ही ठीक है। यह लोक सम्मत है और मेरे लिए भी संतोष की बात है।'' कहने पर हरि।

राज्य के बंटवारे को सुलझाना

सुनकर शीघ्र अगत्स्य, शुक मुनियों को वहाँ बुलाया गया। तोंडमान और वसुदान के विचारों को उनको सुनाकर 'अब क्या करना चाहिए।' कहने पर उन्होंने कहा। ''अहो! हे हरि! काशी रामेश्वर इनको क्यों जाना है? भाइयों के बंटवारे के अनुसार आकाशराज के भाग को बांटकर उसे वसुदान को देना चाहिए। धर्म के अनुसार तोंडमान का भाग तोंडमान को देना चाहिए। इस रूप में दोनों को सम्मत होना चाहिए।'' इस रूप में मुनियों के कहने पर हरि ने सुधर्म की संपदा को दो भाग करके तोंडमान को आधा, दूसरा आधा आकाशराज के पुत्र वसुदान को देकर उनके बीच के झगड़े को दूर किया। तब हरि फिर पद्मावती के पास पहुँच गए। इधर नारायणपुर में वसुदान आधे राज्य पर और तोंडमान आधे राज्य पर शासन करने लगे। दोनों का शासन धर्मानुसार जनरंजक रहा। तब राजा तोंडमान ने इस रूप में सोचा।

''वेंकटनायक साक्षात विष्णु हैं। साधारण मनुष्य नहीं हैं। अपने अज्ञान से मैंने उनको साधारण मानव के रूप में देखा। आपके दिव्य नेत्र, दिव्य पाद पद्मों की भक्ति और विश्वास के साथ अब मैं सुवर्ण पुष्पों से पूजा करूँगा। इस परमात्मा के मानव के रूप में पद्मावती के साथ विवाह करके दामाद के रूप में व्यवहार करना अद्भुत है। मेरे परमेश्वर ये ही हैं।''

तोंडमान चक्रवती को श्री वेंकटेश्वर के द्वारा विश्व रूप को दिखाना

इस रूप में सोचते तोंडमान शीघ्र ही अगत्स्य मुनि के आश्रम पर पहुँच गए। वहाँ पर हरि के पास पहुँचकर भक्ति से दंड वत प्रणाम किया। राजा को देखकर चक्री ने हँसकर इस रूप में कहा। ''हे नरनाथ! मैं तुम्हारा दामाद हूँ। इस रूप में मुझे प्रणाम करना क्या ठीक है?'' तब तोंडमान ने मुकलित हस्तों के साथ आनंद से इस रूप में कहा। ''हे माधव! तुम मुझ पर मायावरण डाल कर मत कहो। आपके चरणों की भक्ति को मुझे प्रदान करके मुझे कृतार्थ कीजिए।'' इस रूप में कहने पर हँसते हुए तब हरि ने तोंडमान को अपना विश्व रूप दिखाया। उस विश्व रूप को देखकर तोंडमान ने इस रूप में कहा।

दंडक

''श्री मद्रामधीश! जीमात संकाश! कालत्रयातीत! कंजात संजात ताता! जगत्राता! वेदार्थनिर्णेत! भूतात्मा! सीताधिपा! सद्गुणव्रात! पूतावनीजात नाथ! शचीनाथ दाता! महा घोरदैत्यादि रंभोलिधारा! सहस्रार संचार! धर्माद्रिधीरा! सदा सिंधु गंभीर! मंथलोद्धारा! नारायणनंत आपके चरणों को देखने पाताल बनकर, शीर्ष भाग देखने के लिए सत्यलोक बनकर, मध्य देह को देखने मध्य लोक बनकर, नेत्र सूर्य-चंद्र बनकर, श्रोत्र

दिशाएँ बनकर, नासिकाएँ सत्य युग्म बनकर, जिह्वा वीर भद्र बनकर, महाकुक्षी अंबोधि बृंद बनकर, सारी नाड़ियाँ प्रवाह बनकर, रोम वृक्ष बनकर, शल्य सारे पहाड़ बनकर, केश मेघ पाश बनकर, प्राण गंधवाहन बनकर, बाहु इंद्रादि बनकर, दिव्य गुह्येंद्रिय प्रजानाथ बनकर, वृष्टि सद्वीर्य बनकर, सुस्तन धर्म मार्ग बनकर, रीढ धर्म बनकर, सारे वाग्विंद्रीय अग्नि बनकर, दुष्टों के लिए दंड हस्त बनकर नित्यादि चित्र आपके इस रूप में पाकर, सहस्रों नेत्र, सहस्रों हस्त, सहस्रों पाद शत कोटि संकाश पूर्ण प्रकाश से दीपित आपके विश्वरूप को देखने में मुझे कैसी शक्ति है? हे देव! फिर अपने पूर्व रूप, अपने सौम्य रूप को ही दिखाकर मेरी रक्षा कीजिए। चिदाकाशा! शेषाचलेश! तरिगोंड तत्पट्टणाधीश! नारसिंह प्रभू! श्री निवास! नमस्ते! नमस्ते! नमस्ते! नमः''

इस रूप में कीर्तन करते अनेक प्रकार से तोंडमान ने विनती की। इसे सुनकर संतोष के साथ परमपुरुष श्रीनिवास स्वामी ने अपने विश्वरूप को तिरोदान किया। फिर पूर्व सौम्य रूप धारण करके तोंडमान को देखकर इस रूप में कहा। ''हे मामा! मैंने विनोद से मनुष्य के रूप में वेश धारण करके तुम्हारी कन्या से विवाह किया। इसके बाद मैं गृहस्थ धर्म निभाऊँगा। इसके लिए विश्वकर्म के द्वारा वेंकटाचल पर शीघ्र ही एक दिव्य सुवर्णमय विमल मणिमय भवन का निर्माण कराओ। इस मंदिर को इस रूप में निर्माण कराओ। वह ऐसा है कि अच्छे ढंग से दो गोपुरों के साथ, सप्त द्वारों के साथ उसके अनुकूल वास्तु शास्त्र के अनुसार वेंकटगिरींद्र पर मंदिर बनवा दीजिए। इस कलियुग में मुझे वहाँ पर रहने का अवसर दीजिए। उस पहाड़ पर खोदे गए कुँए के चारों तरफ रक्षा दीवार भी बनवा दीजिए।'' इस रूप में कहने पर राजा को आश्चर्य हुआ। कहा - ''मैंने पहाड़ पर कभी कुँए को नहीं बनवाया।'' यह सुनकर हरि

ने हँसते हुए कहा। ''हे मनुजेश्वर! जन्मांतर में किये गए उस धर्म को आप भूल गए। संदेह को दूर करने अब मैं उसकी याद दिलाऊँगा।''

गोपिनाथ और रंगदास

सुनो! वैखानस वंश में धरती पर विमल, शांत, सद्गुण संपन्नवाले के रूप में एक विप्र का जन्म हुआ था। उसका नाम गोपिनाथ था। कृष्ण लीलाओं के बारे में सुनकर, समझकर कलियुग के आरंभ में उनकी पूजा करने के लिए वह चोल देश गया। वहाँ पर धैर्य के साथ तप करने के लिए कुशस्थल पहुँच गया। श्रीकृष्ण के रूप को चित्त में स्थापित करके तप करता रहा। तब मैंने गोपाल के रूप में दर्शन देकर उससे वर मांगने के लिए कहा था। तब उसने 'हे परमात्मा! आपको कृष्ण के रूप में रहना चाहिए। और मुझे आपकी पूजा करते रहना चाहिए। ऐसा वरदान दीजिए स्वामी मुझे।' इस रूप में उसके मांगने पर मैंने उससे इस रूप में कहा। ''शेषाद्रि पर श्रीनिवास के रूप में मैं प्रसिद्ध बन जाऊँगा। तब तुम मेरी पूजा करते रहो। कृष्ण के वेश में पूजा ग्रहण करने का समय यह नहीं है। इसलिए उठकर वेंकट गाँव जाओ। रास्ते में तुमको रंगदास नामक एक सज्जन दिखाई पड़ेगा। उसे साथ लेकर पहाड़ों को पार करके जाने के बाद सामने कनकाद्रि पर्वत प्रकाशित होते दिखाई पड़ेगा। तुम दोनों के वहाँ रहने से मुझे प्रसन्नता होगी। शूद्र रंगदास रोजाना तुमको तुलसी मालिका संतोष के साथ देता रहेगा। संदेह नहीं करके तुम उस तुलसी माला से मेरी पूजा करते रहो। वहाँ नित्य कृष्ण लीलाओं को महा मोद से मैं तुम्हें दिखाते रहूँगा। उसके बाद आपके कुल के लोग ही वहाँ पहुँच कर मेरा सदा अर्चना करते रहेंगे। ऐसा वरदान मैंने तुझे दिया। विश्वास करो।'' ऐसा कहकर हे भूवर! तब मैं वहाँ से अदृश्य हो गया था।

वह विप्र तब वेंकटाद्रि के लिए आ रहा था। रास्ते में उसे रंगदास मिल गया। दोनों मिलकर शेषाचल पर पहुँच गए। वहाँ पर मेरे दर्शन करके नमस्कार किया। उस रंगदास ने ही यहाँ पर एक कुँए को बनवाया था। उसके तट पर एक फूलों के बगीचे को पाला था। स्वयं नित्य तुलसी और फूलों की मालाओं को बनाकर उस विप्र को दे रहा था। विप्र रोजाना उन मालाओं से मेरी पूजा कर रहा था। इस रूप में कुछ वर्ष बीत गए। बाद में सहज शोभा के साथ वसंत ऋतु आयी। एक दिन रंगदास ने जंगल से टोकरी में फूलों को रखकर आते समय पुष्करिणी में स्नान करनेवाली गंधर्व कन्याओं को देखा। तब उन पर मोहित होने के कारण उसका वीर्य गिर गया। तब 'मैं अपवित्र बन गया हूँ।' सोचकर वह पुष्करिणी में डूब कर फिर शीघ्र ही बगीचे से फूल तोड़कर गोपीनाथ के पास ले गया। तब गोपीनाथ ने उस पर गुस्सा करते हुए कहा। ''हे दुष्ट चित्त! स्वामी की पूजा करते समय फूल और तुलसी मालाएँ नहीं लाये। गर्व से तुम बिगड़ गए हो। इसलिए यहाँ रहने लायक नहीं हो। अधो लोक में जन्म लो।' इस रूप में उसने शाप दिया। वह इसे सुनकर बहुत दुःखी हुआ। तब मैं उस पर दया करके उसे पास में बुलाकर 'दोष भोग बनकर तुम चिंता मत करो। तुम्हारे मनोरोग ने इस रूप में किया है। ब्राह्मण के शाप का निवारण नहीं हो सकता है। इसलिए अब तुम पुष्करिणी में डूबकर अपने प्राण छोड़ दो। बाद में सुधर्म महीपति के शरीर में प्रवेश करो। फिर नागकन्या के गर्भ से जन्म लेकर धरती पर तोंड़मान के रूप में प्रचलित हो जाओगे। धरती पर राज्य पालन करते हुए मेरे भक्त बन जाओगे। यह सत्य है। मेरी सेवा कभी व्यर्थ नहीं जाएगी। अब चिंता किए बिना जिस रूप में मैंने बताया, उस रूप में करो।'' तब रंगदास ने उसी रूप में किया। वही रंगदास तुम्हारे रूप में फिर से पैदा हो गया। मेरे हित

को अधिक करने से तुम मेरे परम भक्त बन गए हो। हे राजा! पूर्व जन्म में तुम्हारे द्वारा खोदा गया कुँआ वहाँ पर सुरक्षित है। उसकी मरम्मत कराओ। वह शाश्वत रहेगा। हे चारु शुभ मूर्ति! तोंडमान चक्रवर्ती! मेरे द्वारा धारण करके विसर्जित होनेवाले फूलों को धारण करते वह कुँआ प्रचलित हो जाएगा।'' स्वामी की ऐसी आज्ञा होने के बाद महाद्भुत समझकर तोंडमान ने हरि से इस रूप में कहा। ''हे महानुभाव! सकलात्माओं की आत्मा आप हैं। हे हरि! मेरे जन्म रहस्य को स्पष्ट रूप से मुझे अवगत कराया। हे परात्पर! मैं मनुष्य हूँ इसलिए त्रिगुण माया को कैसे जान सकता हूँ?''

तोंडमान के द्वारा मंदिर का निर्माण कराना

इस रूप में कहते बहुविध विनतियाँ करते हुए हरि से विदा लेकर संतोष के साथ महा भक्ति से तोंडमान विश्वकर्म के पास गया। विश्वकर्म के साथ वेंकटाद्रि पहुँच गए। अपने द्वारा पहले बनाये गए कुँए का किनारा बनवाया। फिर विश्वकर्म से स्वामी के लिए मंदिर बनाने के लिए कहा। तब विश्वकर्म ने शिल्प शास्त्र के अनुसार प्राकार त्रय का, दोपुर द्वय का, सप्त द्वार, आस्तान मंटप, मुख मंटप, गोशाला, धान्यशाला, महानस गृह, वस्त्र, भूषण, परिमल द्रव्य गृह, वैवाहिक मंटप, तेल, घृत कूप, भक्ष्य शाला, नैवद्य शाला, अन्न शाला, अन्न शाला के अग्र में भूतीर्थ कूप का निर्माण किया। सबके मध्य प्रदेश में ताल वृक्ष के प्रमान्नोत विमान की रचना की। तदुपरांत उस पर शातकुंभ को रखवाया। विशाल वीथित्रय का निर्माण कराया। साथ ही वेंकटाद्रि पर पैदल आने के लिए सीढ़ियों के मार्ग को भी बनाया। उस मार्ग के बीच में मंटपों का निर्माण किया। बीच-बीच में नीरागारों की व्यवस्था भी की। तब राजा ने सारे पदार्थों को उस मंदिर में रखवाया। फिर तोंडमान ने गिरी से उतरकर हरि के पास आकर इस रूप में कहा।

''हे हरि! आपकी सत्कृपा से वेंकटाद्रि के अग्र भाग में आपके लिए एक मंदिर बनाया। आप और आपकी सति वहीं बस जाइए। मैं किंकर बनकर सदा आपकी पूजा करता रहूँगा। हे परमात्मा! पधारिए।'' संतोष के साथ तोंडमान के इस रूप में प्रार्थना करने पर श्रीनिवास पहाड़ पर बसने तैयार हुए। महान वैखानस वंश में जन्म लेनेवाले एक प्रमुख विप्र को साथ लेकर, श्रीनिवास शुक, कुंभजु को साथ लेकर वेंकटाद्रि मार्ग पर निकल पड़े। तब मार्ग में चलते समय वसुदान ने वहाँ पर आकर हरि को और पद्मावती को रेशमी वस्त्र और आभरण उपहार के रूप में दिया। इस रूप में देते समय वसुदान बहुत दीन दिखाई दिया। उसे देखकर चक्री ने इस रूप में कहा। ''हे वसुदान! तुम क्यों चिंता करते हो? मैं वेंकटाद्रि पर ही रहूँगा।'' प्रेम से इस रूप में कहा। फिर से हरि ने कहा। ''आर्य जनों का आदर करते रहो। पद्मावती को देखने तुम वेंकटाद्रि पर कभी भी आ सकते हो। अच्छे ढंग से शासन करते रहो।''

श्रीनिवास के द्वारा पद्मावती समेत आनंदनिलय में प्रवेश करना

इस रूप में वसुदान को शांत करके विदा करके, पद्मावती के साथ तोंडमान को साथ लेकर मंगल वाद्यों के बीच में विकृति नाम वर्ष पाड्यमी के दिन को, अश्वनी नक्षत्र, गुरुवार के दिन शुभ मुहुर्त में सायंकाल के समय श्रीनिवास वेकटाद्रि पर पहुँच गए। वैखानस आगम के अनुसार वैखानस ब्राह्मण के द्वारा पुण्याहवचन आदि कर्म करवाये। निर्धारित लग्न में 'स्थिरोभव' लोगों की पुकारों के बीच में श्रीनिवास ने आनंद निलय में प्रवेश किया। तब ऋषिगण, ब्रह्मादि देवताओं ने

श्रीनिवास पर फूलों की वर्षा करवायी। श्रीनिवास के पास पहुँचकर उनकी अनेक प्रकार से स्तुति की। तब वैखानस द्विज ने द्वारपालकों को स्थापित करके यथाक्रम से हरि की पूजा की। तब हरि पद्मपीठ पर पाद रखकर खड़े हुए। कटि प्रदेश में बाएँ हस्त को, दक्षिण पाद प्रदेश पर दक्षिण हस्त को दिखाते, तब ब्रह्मादियों की ओर देखकर कहा 'यह परमपद है।' तब ब्रह्म ने हरि की सन्निधि में दो अखंड दीपों को रखवाकर इंद्रादि देवताओं से इस रूप में कहा। ''इस धरती पर जब तक कलिधर्म रहेगा, तब तक ये द्वीप द्वय रहेंगे। जब तक ये द्वीप जलते रहेंगे तब तक यह महनीय दिव्य विमान रहेगा। कलियुग के अंत से दीप भी बुझ जायेंगे। तब विमान भी धरती से चला जाएगा। तब विमान के साथ श्री वेंकटेश्वर श्री वैकुंठपुर लौट जायेंगे।

तब धरती पर कृत युग का उदय होगा। धर्म देवता चार पादों पर विचरण करेगी। तीन युगों तक श्री वेंकटेश्वर वैकुंठ में रहकर फिर शैषाद्रि पर पहुँचेंगे।'' ब्रह्म की इन बातों को सुनकर संतोष के साथ आदि विष्णु ने इस रूप में कहा। ''हे ब्रह्म! फिर से मेरे लिए रथोत्सव का आयोजन कराओ'' तब उनके साथ ही रहनेवाले ब्रह्म ने वैखानस आगम के अनुसार उत्सव का प्रयत्न आरंभ किया। पूर्व प्रकार से कन्या मास में अंकुरार्पण, ध्वजारोहण, विविध वाहन सेवाएँ, रथोत्सव, तीर्थादि के प्रमुख कृत्य करवाकर बहु भक्ष्य, बहुविधान अन्न नैवेद्य समर्पण करने का निर्णय किया। 'सर्वम श्रीनिवासर्पितम' कहते नमस्कार किया। तदुपरांत हरि की आज्ञा से इंद्रादि देवताओं को निजी स्थानों पर भेज दिया। ब्रह्म भी तब अपने सत्य लोक पहुँच गये। तब तोंडमान हरि के सारे उत्सव करवाते निजी राज्य का पालन भी करने लगा। ऐसे में एक दिन।

कूर्म का वृत्तांत

श्रीकर मति वशिष्ट गोत्रवाले कूर्म नामक एक ब्राह्मण वहाँ पर आकर तोंडमान के पास पहुँचकर पहले कार्यार्थी के रूप में तोंडमान को आशीर्वाद देकर इस रूप में कहा। ''हे राजा! सुनो। पत्नी के साथ मैं जाह्नवी यात्रा पर गया था। तब पत्नी को गर्भ ठहर गया। पंचाब्ध बालक माँ को छोड़कर मेरे साथ नहीं आ सकता है। इसलिए धर्म संकट पैदा हो गया। सति और सुत को यहाँ छोड़कर सुस्थिर ढंग से मैं यात्रा पर जाना चाहता हूँ। हे राजा! इन दोनों को अन्न-पान आप ही दिलाइए। क्योंकि आप ही शासक हैं।'' विप्र के द्वारा इस रूप में कहने पर राजा ने ''तुम इस रीति में यहाँ छोड़कर जा सकते हो। कहने पर कूर्म उसी प्रकार करके अपनी यात्रा पर निकल पड़ा। तब राजा ने उस विप्र की सति और पुत्र को नगर के एक कोनेवाले गृह में रखवाकर छः महीने तक पालन पोषण करवाया। एक बहु विशाल भवन में उस विप्र की पत्नी रहती थी। विधिवश एक दिन वीथी द्वार पर किसी ने कुंडी लगायी। तब विप्र की पत्नी ने 'द्वार को खोलने के लिए' वहाँ के लोगों को बुलाया। उसकी पुकार किसी व्यक्ति तक नहीं पहुँची। तब उस विप्र की पत्नी ने 'कैसी आपत्ति आ पड़ी है। किसी को मुझ पर करुणा नहीं हुई। मेरे हृदयेश्वर मुझे यहाँ छोड़ कर गए।'' कहते बहु शोक प्रकट किया। दिशाओं की ओर ताकते हुए वह वहीं पर रह गयी। छः महीनों के लिए दिया गया खाद्यान्नों का भत्ता समाप्त हो गया था। भोजन न मिलने से शुष्क बनकर विप्र की सति और सुत दोनों धरती पर गिर कर मर गए। महान तोंडमान कर्मवश विप्र की सति और सुत को एक महल में रखने की बात भूल गया था। काशी यात्रा पर निकला विप्र लौट कर आया। उसने राजा से 'अपनी सति और सुत के बारे में पूछा।' तब राजा तोंडमान के मन में

भय और भीति पैदा हो गयी। तब राजा ने उनका पता लगाने अपने चरों को भेजा। चरों ने जाकर विप्र की सति और सुत के मर जाने का समाचार लाकर राजा के कानों में सुनाया। राजा तनावग्रस्त हो गया। अपने दुःख को छिपाते हँसते हुए विप्र की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''सुनो हे विप्रोत्तम! श्री वेंकटेश्वर के दर्शनार्थ मेरे घर की स्त्रियाँ जा रही थीं। पतिव्रता होने से तुम्हारी पत्नी भी उनके साथ श्रीनिवास के दर्शन के लिए गयी है। वह आ जाएगी। तुम भोजनादि कृत्यों को यहाँ पर पूरा कर लो।'' इस रूप में विप्र से कहकर खाद्य सामग्री उसे दिलाकर राजा ने उसे भेज दिया। महल में राजा ने किसी रूप में दिन काटा। रात होते ही राजा तोंडमान बिल मार्ग से शेषाद्रि पर जाकर श्री वेंकटेश्वर के चरणारविंद पर गिर पड़ा। नेत्रों से भाष्प निकलने लगे। तब तोंडमान को देखकर वेंकटेश्वर ने इस रूप में कहा। ''हे राजेंद्र! इतनी रात को तुम यहाँ पर किस काम से आये हो। स्पष्ट कहो।'' पूछनेवाले श्रीनिवास से राजा ने कहा। ''हे अंबुजाक्ष! मैंने पापात्मा बनकर ब्राह्मण स्त्री का वध किया। अब मेरी रक्षा कीजिए।'' कहते सत्क्रम को बड़े दुःख के साथ हरि को सुनाया। तब हरि ने कहा। ''हे भूनाथ! सुनो। जो हो गया है सो हो गया। अब चिंता करने से क्या प्रयोजन है? सूखे पड़े कलेवरों को तुम शीघ्र ही अभी यहाँ पर मँगाओ।'' हरि के इस रूप में कहते ही राजा ने अपने चरों को भेजकर उन कलेवरों को मँगाया। तब हरि तोंडमान के द्वारा उन कलेबरों को लेकर स्वामी पुष्किरिणी के पूर्व भाग में रहनेवाले दिव्य सरोवर के पास ले गए। उस तीर्थ में उन कलेवरों को डुबाकर फिर उन्हें ऊपर उठाया। तब विप्र की सति और सुत दोनों पुनर्जीवित हो गए। तब देवताओं ने पुष्प वर्षा करवायी। उस पुण्य तीर्थ के नाम को कपिल तीर्थ रखा गया। तब तोंडमान ने संतोष के साथ हरि की स्तुति की। तब श्रीनिवास अपने निजी स्थान पर लौट गए। मन में सोचा ''कलियुग में

मनुष्यों से सीधे बात करने पर इस प्रकार के धर्म संकट पैदा होंगे। इसलिए आगे इस रूप में बातें नहीं करनी चाहिए। उनसे कहने की बातें उन्हें स्वप्न में बताऊँगा।' हरि ने इस रूप में मौन धारण किया। तोंडमान ने उन मृत विप्र की सति और सुत को विप्र कूर्म को सौंप दिया। तब उस विप्र ने अपनी पत्नी, पुत्र और पुत्रिका को देखकर पूछा कि 'आप लोग कहाँ गए थे।' तब उसकी पत्नी ने इस रूप में कहा। ''हे स्वामी! अब मैं किस रूप में चर्चा करके बता सकती हूँ? महनीय विष्णु माया से मैं पुण्य मार्ग में जाकर महनीय ब्रह्मादि के रहनेवाले लोकों को देखकर लौट आयी हूँ।'' विप्र की पत्नी ने इस रूप में कहा। तब उसके सुत ने कहा। ''हे पिता! मैं अद्भुत ढंग से जाकर सप्त द्वीप, सागरों को, कैलासगिरि को, शंकर को देखकर आनंद के साथ लौट कर आया हूँ।'' तब पुत्रिका ने इस रूप में कहा। ''हे तात! मैंने सारे पर्वतों के वनों को, देव और राक्षसों को क्रम से देखकर आनंद से लौट कर आयी हूँ।'' इस रूप में तीनों ने अलग-अलग अपने अनुभवों को बताया। उनकी बातों को सुनकर विप्र ने इस रूप में कहा। ''आपका पुण्य अतिशय होकर ही ऐसा संभव हो सका है।'' फिर उनके साथ जाने के लिए तैयार हो गया। तब तोंडमान ने उन्हें वस्त्र और भूषण उपहार के रूप में दिया। तब द्विज ने राजा की प्रशंसा करते हुए राजा को आशीर्वाद देकर ''हे भूरमण! अब हमें आज्ञा दीजिए।' बोलकर राजा की प्रशंसा करके अपनी सति, बच्चों को लेकर बड़े संतोष के साथ अपने निजी गाँव पहुँच गए। बाद में सति और संतान का पालन पोषण करके मुक्ति को प्राप्त करने के लिए शेषाचल पति की महिमा को विशेष रूप से जन-जन को बताने लगे।

यह सुनकर शौनकादि सारे मुनिगण ने आश्चर्यचकित होकर इस रूप में कहा। ''यह कौन-सा विचित्र है? उनके कलेवर धरती पर रहते

वे लोकांतर की यात्रा करके शीघ्र लौट कर फिर उन कलेवरों में प्रवेश करके उस कूर्म को वहाँ पर उनके द्वारा देखे गए विचित्रों को कैसे बता पाये? आप स्पष्ट हमें बताइए।'' उनके इस रूप में पूछने पर सूत ने इस रूप में कहा। ''उन्होंने स्थूल शरीरों को छोड़कर सूक्ष्म शरीरों के साथ विविध लोकों को स्वप्नों में देखे गए विचित्रों की तरह उनका स्मरण करके कूर्म को बताया। ब्रह्म के अंदर जीव पंक्तियाँ कर्म, संस्कार के अनुसार लिंग, देह आदि को प्राप्त करके आकाश में विचरण करनेवाले पक्षियों की भांति सकल लोकों में संचरण करके उसके बाद अपने ऋणानुबंध के अनुसार कर्म, संस्कार के साथ अणुरूप में आकाश में वायु पथ में सूर्य किरणों से मेघ बूंदों के रूप को प्राप्त करते हैं। बाद में वे ही वृष्टि मार्ग से विविध औषधी जलों में प्रवेश करके अन्न रूप को प्राप्त करते हैं। फिर पुरुष वीर्य रूप में स्त्री के गर्भ में प्रवेश करके स्थूल शरीरों को प्राप्त करते हैं। नवमासों के बाद वहाँ से निकल कर बाल्य, कौमार, यौवन, वार्धक्य दशाओं को प्राप्त करके काल गति में मृत्यु को प्राप्त करते हैं। इस रूप में पैदा होने वाले लोकांतरों में उनके द्वारा अनुभव किए गए कष्ट-सुखों के बारे में बताना भूल जाते हैं। ऐसा न होकर इन तीनों ने काल गति पूरा होने के पहले ही अन्न के अभाव में मरकर स्थूल शरीर में रहे बिना सूक्ष्म देहों को प्राप्त करके लोकांतरों में विचरण करके हरि के कटाक्ष से उस पुण्य तीर्थ में प्रवेश किया। परिपूर्णता प्राप्त करनेवाले पूर्व स्थूल शरीरों में ही फिर से प्रवेश करने के कारण ही उन्हें पूर्व लोकांतर व्यापार हृदय में बसे रहने के कारण ही नींद में देखे गए सपनों को जागने के बाद फिर उनके बारे में बताने की तरह उस कूर्म को अपने विहारों के बारे में बता पाये। इस पूरे को विष्णुमाया विलास के रूप में मान लेना चाहिए। इस इतिहास को सुननेवालों के पापों का

नाश होगा। वे पुण्यात्मा बनेंगे।'' इस रूप में बताने पर सुनकर शौनकादि ने सूक्ष्म ज्ञान दृष्टि के साथ जीव तत्वानुभव प्रकार को जानकर सूत को देखकर फिर से इस रूप में कहा। ''आपके द्वारा बताये गये सूक्ष्म निर्मल भाव को हमने समझ लिया। हे सूत! हमारे संदेह की निवृत्ति हो गयी। कूर्म के जाने के बाद राजा तोंडमान ने वेंकटादिपति का भक्त बनकर किस प्रकार से पूजा की। इस रीति के बारे में हमें बताइए।'' इस रूप में पूछने पर मुनियों को देखकर सूत ने इस रूप में कहा। ''जन नायक राजा तोंडमान ने राज्य पालन करते हुए श्रीवेंकटेश्वर के दास बनकर प्रति दिन सुवर्ण कमलों के साथ बिल मार्ग से जाकर, तुलसी की मालाएँ और सुवर्ण पुष्पों से उस वेंकटेश्वर की पूजा की। बाद में वहाँ से लौटते समय एक कुम्हार मिट्टी के फूल, तुलसी के मंडप में दारु मूर्ति को समर्पित करने से वे फूल हरि को प्राप्त होते थे। हरि उन फूलों को अपने में ही छिपाए रखते थे। राजा को भी इसका पता नहीं था। इस रूप में मिट्टी के फूलों को समर्पित करनेवाले कुलाल को प्रेम से अपने मन में ही हरि ने स्थान दिया था।

श्रीनिवास के द्वारा (कुलाल) भीम को साइज्य प्रदान करना

राजा के द्वारा की गयी पूजा को राजा का समझकर दाद दिए बिना एक दिन मिट्टी के फूलों को हरि ने पूजा करते समय राजा को दिखाया। तब राजा ने उन मिट्टी के फूलों को देखा। राजा ने मन में ही सोचा ''मैंने सुवर्ण के फूलों से पूजा की। ये मिट्टी के फूल यहाँ कैसे? किसने इन्हें चढ़ाया है?'' मन में इस संदेह के साथ तोंडमान ने हरि को नमस्कार करके पूछा। ''हे परम पुरुष! मेरे द्वारा समर्पित पुष्पों को नीचे गिराकर मिट्टी के फूलों को यहाँ रखनेवाला मनुष्य कौन है? बताइए।'' इस रूप में राजा के पूछने पर हँसते हुए हरि ने राजा से कहा। ''हे महान! यहाँ

से ढाई क्रोस की दूरी पर कुर्वक नामक एक गाँव है। वहाँ पर कुलाल नामक भीम अभिधान से प्रचलित मेरा एक महा भक्त है। वह बहुत गरीब है। वह प्रतिदिन मटकियाँ तैयार करके उन्हें ढेर के रूप में रखता था। प्रतिदिन मटकियाँ तैयार करते समय उंगलियों पर लगी मिट्टी को निकाल कर उस मिट्टी से फूल तैयार करके मेरी एक दारु मूर्ति तैयार करके उन फूलों से अतिशय भक्ति से मेरी अर्चना करता था। उन फूलों को मैं नित्य स्वीकार करता था।'' हरि की इन बातों को सुनकर तोंडमान हरि की पूजा पूरा करके बिल मार्ग से शीघ्र ही उस भीम के पास पहुँचा। राजा को पास देखकर उस कुलाल ने पूछा। ''हे राजा! महाद्भुत से आप एक शूद्र के घर आने का क्या काम है? आप आज्ञा दीजिए।'' सुनकर राजा ने कहा। ''हे भीम! शेषाचलपति निश्चित रूप से तुम्हारी भक्ति से संतुष्ट हुए हैं। तुम्हारी भक्ति की रीति के बारे में तुम अब मुझे स्पष्ट रूप से बताओ।'' यह सुनकर कुलाल ने राजा से कहा। ''हे राजा! मैं शूद्र जाति का हूँ। बहुत नीच काम करनेवाला हूँ। जड मन वाला हूँ। विष्णु भक्ति के बारे में मैं आपको क्या बता सकता हूँ? हे भूवरेण्य! मैं क्या आपको बता सकता हूँ?'' कुलाल के इस रूप में बोलते समय आकाश मार्ग से गरुड पर आरूढ़ होकर श्रीनिवास भीम के रहने की जगह पर प्रेम से आए। ''हे पुण्य पुरुष! आओ अब तुमको मैं साइज्य प्रदान करता हूँ।'' इस रूप में हरि के कहने पर शीघ्र कुलाल ने हरि को नमस्कार किया। सति के साथ तभी हरि के पादों में साइज्य प्राप्त किया। इसे देख कर तोंडमान उद्वेलित हुआ।

श्रीहरि के तोंडमान को सारूप्य प्रदान करना

तोंडमान ने हरि से इस रूप में कहा। ''हे तोयदाक्ष! मैं आपके भक्त भीम को देखकर आप्त से बात कर रहा था। तभी आपने उसे परमपद

प्रदान किया। मुझे कब आपने साइज्य प्रदान करने के लिए सोचा है?'' इस रूप में तोंडमान के पूछने पर हँसते हुए हरि ने कहा। ''उसकी सात्विक भक्ति से मैं संतुष्ट हो गया हूँ। इसलिए उसे साइज्य प्रदान किया है। उस सज्जन ने मुझसे पहले ही मोक्ष मांगा था। मैंने उससे कहा था 'जब तुम्हारी पूजा के बारे में दूसरों को पता चलने पर, जब चक्रवर्ती तुम्हारे घर आयेगा, तब तुमको और तुम्हारी पत्नी को मैं मोक्ष प्रदान करूँगा।' इसलिए इस क्षण में ही उसे मैंने मोक्ष प्रदान किया। इसके लिए तुमको चिंता नहीं करनी चाहिए। हे मानव नाथ! धैर्य के साथ तुम अपने पुत्र को राजा बनाओ। धीरता से विज्ञान, भक्ति, वैराग्य को धारण करके, दुष्कामों से मुक्त होकर, निर्मल चित्त से, विजन स्थल पर पहुँचकर मेरा ध्यान करते रहो। तब शीघ्र ही तुमको मैं सारूप्य पद प्रदान करूँगा।'' इस रूप में हरि ने राजा को बताकर भेजा। बाद में तोंडमान ने अपने निजी वास पहुँचकर अपने पुत्र श्रीनिवास को बड़े उत्साह से राजा बनाया। 'श्री वेंकटेश्वर के चरणारविंद का नित्य क्रम से उत्सव करते रहो।' ऐसा पुत्र को आदेश दिया। तब तोंडमान तुर्य भक्ति, ज्ञानयुक्त होकर महाविरक्त बनकर वेंकटाद्रि पर पहुँचकर एक विजन स्थल पर खड़े होकर ध्यानयोग निष्ठ हुए। उसके कुछ दिनों के बाद अंबुजलोचन! उस राजा को स्वांतन से दाद देते हुए सत्कृपा से उसके पास जाकर विचित्र ढंग से हँसते हुए साथ में खड़े हो गए। तब तोंडमान ने उन्हें देखा। उठकर दोनों हाथ जोड़कर विनम्र स्वर में सद्गुणों के साथ, मन में अचंचल भक्ति के होते, गद्गद स्वर में राजा की आँखों में आँसू भरते नमस्कार करते हुए ''हे सद्गुरु चंद्र! यहाँ पर मुझे मन में ही दर्शन करके पधारे हैं? हे परमात्मा! आपकी महिमा के बारे में शेष भी बखान नहीं कर सकता है? मैं एक मानव मात्र हूँ। चपल आदमी हूँ। नीचात्मा हूँ। दुर्मति भी हूँ। आपकी स्तुति

कैसे कर सकता हूँ? मुझे क्षमा करने के स्वभाव से ही आप निर्हेतुक करुणा दिखाने आये हैं, मेरे आनंद की कोई सीमा नहीं है। हे जगन्नायक! मैं कृतार्थ हो गया हूँ। पूर्व मेरे द्वारा हुए अपराधों को भूलकर, मेरी मूर्खता, गर्व को दूर कीजिए। एक पिता के रूप में मेरा उद्धार कीजिए, विज्ञान प्रदान करनेवाले आपके भले मानस के ऋण को मैं कैसे चुका सकता हूँ? श्री स्वामी! आपकी सत्कृपा से ही मेरा इतने दिन उद्धार होता रहा। अब मुझे मोक्ष प्रदान करके मेरी रक्षा कीजिए! दुर्मति होकर, विप्र की पत्नी को, पुत्र को, उसके बच्चे को वैसे ही मैंने मार दिया है। ऐसे पाप करनेवाली मेरी भीकर वृत्ति से मुझे मुक्त करके मेरा उद्धार कीजिए। अधमों को बहुत जन्म देनेवाले तुम्हारी प्रशंसा करना शंभु को और ब्रह्म को भी संभव नहीं है। सति पति एक होने के कारण उस दिन रात को विवेकहीन होकर उस दिन आपके पास आया था। मेरे द्वारा हुए उस अपराध से भी आपने मुझे क्षमा किया। इतना पुण्य किसी और को कैसे प्राप्त होगा? हे श्रीपति! हे परात्पर! आपके समान कोई देवता क्या इस संसार में हो सकता है?'' इस रूप में अनेक प्रकार से विनति करने पर राजा की प्रशंसा करते हरि ने कहा।

''सुनो राजा! तुमको सात्विक विवेक की प्राप्ति के लिए तप करने के लिए कहा था। अब हे महापुरुषोत्तम! भक्ति निष्ठा अब तुम्हारे मन में स्थिर हो गयी है। अब कोई संदेह नहीं है। अब तुम्हें मोक्ष प्रदान करूँगा। मुझे परमात्मा के रूप में विश्वास करनेवाला विश्वास व्यर्थ नहीं जायेगा। हे जनवर! अब तुम ही बताओ कि कुछ दिन और इस भूतल में रहना पसंद करते हो? मोक्ष इस क्षण में ही चाहिए। तुम ही बताओ।'' हरि के इस रूप में कहने पर नरनाथ ने कहा। ''मोक्ष ही मुझे प्रदान कीजिए।'' कहते शरणागति मांगनेवाले तोंडमान के पास चक्री हँसते हुए

आये। तब हरि का करुणा-रस राजा पर बरसते समय आकाश से एक दिव्य पुष्पक विमान अद्भुत ढंग से वहाँ पर आया। तब तोंडमान को उस पुष्पक विमान पर बिठाकर हरि ने उसे सारुप्य प्रदान किया। उसे श्री वैकुंठ भेज दिया। हरि अपने निज वास पहुँच गए। तदुपरांत उस चक्रवर्ती के पुत्र ने वैभवपूर्ण ढंग से अपने पिता के परलोक कर्म पूरा किये। तदुपरांत श्रीनिवास के राजीव पाद युगल पर भूभार को रखकर व्यवहार करते हुए वसुदान के साथ मिलकर राज्य पालन करने लगा।

स्वयं व्यक्त अर्चा विग्रह स्वरूप श्री वेंकटेश्वर

शेषाद्रि पर नित्योत्सव, पक्षोत्सव, मासोत्सव, संवत्सरोत्सव को चलाते समय नारायण स्वयं शिला विग्रह के रूप में महा वैभवों को सदा स्वीकार करते रहे। वसुदान और श्रीनिवास आदर के साथ राज्य पालन करते रहे। हरि के प्रति अपार भक्ति दिखाते रहे। सकल कार्यों को हरि उनके स्वप्नों में ही बताकर मौन मुद्रा ही धारण करके पद्मावती के साथ मिलकर कृपा बरसाते रहे। अपने भक्तों को विविध वरदान देते रहे। साथ ही उनके धन को स्वीकार करते हुए शेषाद्रि पर स्थिर रहे। विश्व भर में श्री वेंकटेश्वर के रूप में प्रसिद्ध हुए। भक्तों के भक्ति से देनेवाले धन को स्वीकार करते हुए उनकी सारी मनौतियों को पूरा करते रहे। संकर जाति के भक्तों को बहुत धन देते थे। गर्व करते हुए धरती पर कुबेर के उधार को चुकाते रहे।

लीला मानुष श्री वेंकटेश्वर अनेक महिमाओं को दिखाते रहे। समस्त जनों के हितकारी बनकर उनकी भलाई करते रहे। इस कलियुग में शेषाचल पर वास करते रहे। कलियुग के अंत में शीघ्र ही वैकुंठ लौट जायेंगे। कलियुग के बाद आनेवाले काल में फिर से माधव वेंकटाद्रि पर पहुँचेंगे।

इस रूप में सूत ने वेंकटपति के महान चरित को सुनाने पर सारे मुनिगण अत्यंत आनंदित हुए। मन भर जाने से मोद से फिर से इस रूप में कहा। ''आहा! सूत! परात्पर! जलजाक्ष! श्री विष्णु! श्री यहिराट्पर्वत नाथ! अव्यय! सर्वात्मा! लीलार्थी बनकर धरती पर मनुष्य का रूप धारण करके, बाद में महा महात्मा पाषाण विग्रह बनकर भक्तों का उद्धार करनेवाली सत्कथाओं को क्रम से हमें सुनाया। हमने भक्ति से सुना। हमें महदानंद हुआ। आपके बड़प्पन के बारे में बता नहीं सकते। हमारे वश की बात भी नहीं है। हे महात्मा!'' इस रूप में महान शौनकादि मुनियों की प्रशंसाओं को सुनकर गौरव के साथ सूत ने इस रूप में कहा। ''सिंधु सुताधिपति पद्मलोचन! श्री वेंकटेश्वर के चरितगान करना किसी के वश की बात नहीं है। ब्रह्म के लिए भी यह संभव नहीं है। आपके कटाक्ष से तथा मेरी ऊहा में जो कुछ आया उसे आपको बताया।'' कहनेवाले सूत को देखकर मुनियों ने इस रूप में कहा। ''आदिमूल श्री महाविष्णु ने क्यों पाषाण विग्रह के रूप को धारण किया? इसका क्या कारण है?'' मुनियों की इन बातों को सुनकर सूत ने कहा। ''हे परमात्मा! श्रीहरि अपने स्वस्वरूप को सभी को नहीं दिखाते हैं। इसलिए अपने चिह्नों को सर्वजनों के द्वारा दर्शन करके कृतार्थ होने के लिए कृपा से लोक जनों के लिए ताम्र, पाषाण, मृत्तिका, दारु मूर्तियों में दीपित होकर भूलोक में विविध रूपों में दर्शन देते हैं। साथ ही भक्तों की पूजाओं को स्वीकार करके भूरि दया से उनकी मनौतियों को पूरा करते हैं। इस प्रकार के अर्चा विग्रह चिह्नों को देखकर, हरि चिह्न ऐसे होते हैं, समझ कर, जान कर, इन चर्म चक्षुओं से देखने पर विग्रह मनोदृष्टि को अपनी ओर खींचते हैं। तब हरि उन भक्तों के मनोमालिन्य को दूर करते रहते हैं। इसलिए सर्वजनों को

परमपद पाने के लिए अर्चा विग्रह प्रथम साधन हैं। इसलिए प्रतिमार्चन करके तद्वारा हरि को सर्वंतर्यामी जान कर, राम कृष्णादि विभावतारों पर ध्यान, गुणानुभवों को प्राप्त करते रहना चाहिए। तद्वारा अनिरुद्ध, संकर्षण, वासुदेव, व्यूह प्रभाव को जानकर ध्यान करके उनके नाम जप करके परम गति प्राप्त करने के लिए अर्चा रूप ही हेतु बनते हैं। इसलिए सर्वजनों का संरक्षण करने के लिए श्रीनिवास ने स्वयं व्यक्त अर्चा विग्रह का रूप धारण किया।'' यह कहते सूत ने फिर से कहा।

जयमंगल

''श्रृंगार पुरुष को जय मंगल, महिराज शैल मंदिरवाले को जय मंगल, श्री मंगापति को अतिशय शुभ मंगल सदा इस धरती पर हो।'' इस रूप में सूत के द्वारा स्तुति करने पर सुनकर शौनकादि मुनिगण उत्साह से वेंकटपति का यशगान करते सूत से प्रेम से शुभ गोष्टि वहाँ करते रहे।

आश्वांत

हे भावजनक! शुभाकर! भावज रिपुमित्रा! भूत भावन! विलसत भावातीत! जगन्मय! श्री वेंकटगिरि निवेश! चिद चिदधीशा!

विकटसुररिपु हरणा! गुरुतर विश्वरक्षण कारणा! सकल मुनिजन हृदय कमल विचारणा! घनिवारणा! मकुट कलित विलसित मणि घृणि मस्तकाखिल पूरणा! प्रकट कनक रुचिर शिखरयुत पन्नगाद्रि विहारणा! कर्मविधायक! कर्मविनाशक! कर्म फलाश्रित! शांतियुता! धर्म विवेचना! धर्म सुनूचना! धर्ममतव्रता! धर्महिता! मर्म सुखस्पदा! मर्मफल प्रदा! मर्मविलक्षण! मर्मरता! मर्मनगात्मक! मर्मगिरीश्वर! मर्ममयांबर! ब्रह्मसुता!

ज्ञानमार्ग दीपक! ज्ञानदिव्य रूपक! ज्ञानयोग रक्षक! ज्ञान विघ्नशिक्षक! ज्ञान सद्विधायक! ज्ञान शक्ति नायक! ज्ञान कर्म साधक! ज्ञान पूर्णबोधक!

सुर हृदय विकास! क्षुद्ररक्षो निरासा! गुरतर सुविलास! कोटि सूर्य प्रबास! परमपद निवासा! पालिताचार्य दास! सुरुचिर दरहास! सुंदर श्रीनिवास!

गद्य

यह श्री तरिगोंड लक्ष्मी नृसिंह करुणा कटाक्ष कलित काव्य विचित्र वशिष्ट गोत्र पवित्र कृष्णयामात्य की पुत्री वेंगमांबा प्रणीत श्री वेंकटाचल माहात्म्य नामक भविषोत्तर पुराण में भीलनी की कथा, हरि के द्वारा धरणी देवी को भविष्यवाणी सुनाना, धरणी देवी के द्वारा पद्मावती का आदर करना, पद्मावती के द्वारा माँ को हरि का वृत्तांत बताना, वकुला के आकर धरणी देवी से संभाषण करना, आकाशराज के द्वारा हरि को शुभ पत्र भेजना, हरि के द्वारा लिखित रूप में आकाशराज को जवाब देना, वकुला के द्वारा शेषाद्रि पहुँचकर हरि को शुभ समाचार देना, विवाह के लिए धन नहीं है, वकुला के द्वारा वराह स्वामी को यह बताना, हरि से निमंत्रण पत्र लेकर गरुड के द्वारा सत्य लोक जाना, चक्री से निमंत्रण पत्र लेकर शेष के द्वारा शंकर को देना, श्रीनिवास के द्वारा इंद्रादि से संभाषण करना, सिरि का स्मरण करके हरि की चिंता करना, कोल्हापुरि वासी लक्ष्मी को सूर्य के द्वारा ले आकर हरि के पास छोड़ना, सिरि को हरि अपने कष्टों के बारे में बताना, हरि से सिरि का संभाषण, कुलदेवतार्चन, हरि के द्वारा कुबेर को उधार पत्र लिखकर देना, सायंकाल का वर्णन, चंद्रोदय वर्णन, सूर्योदय वर्णन, ब्रह्मादि के साथ श्रीनिवास का विवाह के लिए निकल पड़ना, आकाशराज के द्वारा स्वामी को कन्यादान

करना, विवाह के बाद हरि के द्वारा अगस्त्य आश्रम पर जाकर ब्रह्मादि को विदा करना, श्री लक्ष्मी के द्वारा शीघ्र कोल्हापुर चले जाना, वसुदान और तोंडमान के द्वारा युद्ध की तैयारी करना, तोंडमान चक्रवर्ती को हरि अपना विश्वरूप दिखाना, श्रीनिवास के लिए विश्वकर्म के द्वारा दिव्य मंदिर बनाना, पद्मावती समेत हरि शेषाद्रि पहुँचना, कूर्म का वृत्तांत, श्रीनिवास के द्वारा भीम को साइज्य प्रदान करना, तोंडमान को चक्री के द्वारा सारुप्य प्रदान करना नामक कथाओं से भरा पंचमाश्वास।

* * *

षष्टाश्वास
वीर लक्ष्मी विलास
इष्ट देवता स्तुति

तरिगोंड शेषकुधराध्यक्ष

श्रीमत्कोमल नीलतोयद निभं!, श्रृंगार पूर्णेक्षणं, हेमाभांबर दिव्य भूषणम, हेलावती खेलनम, कौमारीश्वर सन्नुतांघ्री कमलं, कल्याण लीलागुणोद्धामं, श्री तरिगोंड शेषकुधराध्यक्ष, भजेहम सदा।

श्री मद्गुरुवर! शुभकर! श्री मन्नरसिंहदेव! चिन्मियभावा! श्री महिलाधिपा! घनतर! श्रीमद्वेंकटगिरीश! जितदनुजेशा!

कवयित्री की विनति

इस रूप में गुरु और देव का स्मरण करते हुए वेंकटाद्रि की महिमा को धरती पर प्राप्त वराहा, भविष्योत्तर पुराणों के अंशों को, तैंतालीस अध्यायों में पद्य काव्य के रूप में कुल पाँच आश्वासों में मैंने रचा है। इस काव्य को हरि को ही समर्पित किया है। बाद में पद्म पुराण में वेंकटाद्रि विभ के द्वारा सिरि को लेकर किए तप के चरित के बारे में कुछ अंश प्राप्त होने पर, उनको ग्रहण करके उन्हें छठे आश्वास में देते हुए कुछ नयी कल्पनाएँ भी मुझे करनी पड़ी हैं। इसलिए अब एक रीति में मैं इस कृति को प्रस्तुत करती हूँ। इसमें गलतियों को निकाल कर बुजुर्ग लोग मुझे गलत न समझे इसलिए मैं बुजुर्गों से विनति करती हूँ। उनकी सेवा मैं सदा अपने चित्त में ही करती हूँ।

इस कृति के लिए अभिदान क्या है? इसका नाम श्रीकर रूप में 'वीर लक्ष्मी' उचित है। बुजुर्गों की अनुमति से ही इस नाम का मैंने चयन

किया है। इसके लिए विद्वज्जन मुझे क्षमा करें। भारती को जिह्वा पर धारण करके नारसिंह जिस रूप में मुझसे कहलवाते हैं उस रूप में मैं लिखती हूँ। भागवत और विद्वान मेरी बाल भाषा को बिना गलतियाँ गिने स्नेह से सुनिए!

कथा का आरंभ

इस कथा का आरंभ ऐसा है कि भविष्योत्तर पुराण में वर्णित श्रीनिवास के चरित को सुनकर शौनकादि मुनियों ने एक दिन प्रातःकाल स्नान, संध्यादि अनुष्ठान पूरा करने के बाद सूत को देखकर इस रूप में कहा।

शौनकादि के प्रश्न

''हे सूत! श्री श्रीनिवास के चरितों को जितना भी सुनें मन तृप्त नहीं होता है। इसलिए उनसे संबंधित कथाओं को क्रम से हमें सुनाइए! मनुष्य के वेश में रमापति ने प्रेम से पद्मावति के साथ विवाह करने के बाद लक्ष्मी हरि के वक्ष पर न रहकर रूठकर कोल्हापुर जाने के बाद हरि ने लक्ष्मी का स्मरण किया या निर्दय होकर उसे भूल गए? आकाशराज की पुत्री के साथ रहते हुए लक्ष्मी को भूल कर वे सुखी रहे? फिर लक्ष्मी हरि के वक्ष पर लौट कर आयी या नहीं? हमें स्पष्ट रूप से बताइए।'' इस रूप में उनके पूछने पर सुनकर हँसते हुए वेद व्यास का स्मरण करके सूत ने इस रूप में कहा। ''हे मुनिगण! हरि के चरित के बारे में सुनिए।''

सूत का समाधान

जैसे आपने मुझसे पूछा वैसे ही देवल ने देवदर्शन से पूछा था। तब महान देवदर्शन ने उसे बताया था। वह ऐसा है कि ''हे देवल सुनो! श्री

विष्णु वेंकटेश्वर के रूप में पद्मावती के साथ ही रहे। किंतु दया से रमादेवी को ही अपने मन में रखते हुए, उसके रूप लावण्य को सदा याद करते हुए वेंकटाचल पर सर्व भोगों को भोगने लगे।''

वेंकटेश्वर के द्वारा पद्मावती से अपनी चिंता के बारे में बताना

पद्मावती के साथ वेंकटेश्वर सुखी जीवन बिताने लगे थे। इस रूप में कुछ दशकों के बीत जाने के बाद श्रीनिवास ने अपने मन में इस रूप में सोचा। ''सिरि से अलग होकर मानव बनकर इतने वर्ष बिताते रहे। अब उससे अलग रहना संभव नहीं है। उसे फिर से वक्ष पर धारण कर लेना चाहिए। किसी भी रीति में प्रार्थना करके स्नेह से उसे यहाँ पर लाना चाहिए। ऐसा नहीं कर पाऊँगा तो मेरे सारे कार्य नहीं होंगे। कीर्ति भी नहीं मिलेगी। कुबेर से लिये उधार को भी चुकाने का उपाय भी मन में नहीं आयेगा।'' ऐसा सोचते सदा मन में चिंता करते हरि आर्ति बनकर मनुष्य के रूप में विरक्त होते रहे। सब कुछ भूलकर अपने आप में लीन रहते, पद्मावती के मंदिर के सारे भोगों के बारे में भी मन में ही नहीं लाते थे। तब पद्मावती हरि सर्व वैराग्य की इस दशा को देखकर भयभीत हो गयी। एक दिन एकांत के समय हरि से इस रूप में पद्मावती ने कहा। ''श्री स्वामी! अब आपके चेहरे में एक चिंता दिखाई पड़ रही है। जो आपके मन में है। इस समय आपके मन में ऐसी चिंता क्यों है? उसका क्या कारण है? छिपाये बिना बताइए।'' कहते हुए हरि के चरणों पर सर रखकर बिना छोड़े अनेक प्रकार से उन्होंने विनति की। इस रूप में बहुत बार विनति करने के बाद सति को अपने हाथों से ऊपर उठाकर हित के साथ पुचकारते हुए पद्मावती को आलिंगन करके अन्योन्य प्रेम के साथ श्रीनिवास ने पद्मावती की ओर देखते हुए इस रूप में कहा। ''सुनो

हे पद्मावती! विवरण के साथ तुमको बताऊँगा। जब सृष्टि नहीं हुई थी। तब मैं अकेला निर्विकार निर्गुण ब्रह्म के रूप में रहा। अनादि से मुझ में, अलग हुए बिना मूल प्रधान बनकर, मायाभिधान पाकर, चिद्रूप बनकर लक्ष्मी सद्रूपवाले मुझे प्राप्त करने से बहुत आनंद हुआ था। बाद में महदादि तत्व सब पैदा हुए। उनके सम्मेलन से क्रम से सृष्टि हुई। वह सृष्टि पूरे जगत में फैल गयी। तब मैं उस पूरे जगत का कर्ता बन गया। तब मैंने ब्रह्मादि को पैदा किया। यह पूरा जगत मुझमें लीन रहता है। हे मृगाक्षी! यह पूरा जगत मुझमें ही दीपित होता रहता है। यह पूरा महत्व मुझे उस श्रीकांता के कारण प्राप्त हुआ है। अब ऐसी लक्ष्मी से अलग होने से मुझे बड़ी चिंता सता रही है। अद्वय ब्रह्म के रूप में, निराकार बनकर, अचल होकर रहनेवाले मुझे महान सुंदर आकार दिया है। मेरे साथ-साथ सुंदरांगी बनकर वह रही। साथ ही गुरुतर कल्याण गुण मुझे दिया। मुझे इस रूप में महान बनाया। उस दिन से चंद्र में रहनेवाली चांदनी के रूप में व्यवहार करते हुए लक्ष्मी मेरे साथ ही रही है। इस रूप में आनंद से रहते समय एक दिन भृगु ने आकर सिरि के रहनेवाले वक्ष पर पैर से मारा। इससे लक्ष्मी मुझसे रूठकर मुझे छोड़कर करवीरपुर चली गयी। मेरी सारी सर्वज्ञता तब लक्ष्मी के साथ चली गयी। मैं वैकुंठ से निकलकर मार्ग खोकर इस गिरि पर दीन बनकर यहाँ पर रहा। नीरसता से त्रिंत्रिणी वृक्ष के नीचे वल्मीक में दुबक कर रहा। सर्वज्ञता को खोने के कारण मैं वैसे ही पड़ा रहा। एक दिन एक ग्वाले ने मुझे मारा। तब चोट लगी। तुमको देखकर मोहित हो गया। तुमने अपनी सखियों के द्वारा मुझ पर पथराव करवाया। सिरि के न होने से ही मुझ में विवाहेच्छा हुई। इसलिए कुबेर से उधार लेकर विवाह करना पड़ा। हे वनिता! तुम्हारे पिता और भाई के द्वारा दिए गए धन से यह उधार नहीं चुका पाऊँगा। अब

मैं क्या करूँ? यह सोचते मुझे चिंता हो रही है। हे मीन नयना! मेरे चित्त में यही चिंता है।'' हरि की इन बातों को सुनकर पद्मावती ने इस रूप में कहा। ''हे महा स्वामी! आपको उपाय बताने के लिए मेरे पास इतना विवेक कहाँ? इस रूप में मुझसे उपाय मांगना क्या न्याय है? सृष्टि के आरंभ से ही आपके साथ रहते आपको इतना महान बनानेवाली लक्ष्मी को इस रूप में अलग करना ठीक नहीं है। इसलिए किसी भी रूप में उसे मनाकर यहाँ ले आकर मेरे साथ आपके साथ उसे रखिए। तब मैं दासी बनकर आप दोनों की सेवा करती रहूँगी। इससे बढ़कर मेरे मन में और कोई विचार नहीं है। हे इंदिरेश! और कोई विचार भी नहीं आयेगा। शीघ्र हम दोनों कोल्हापुर जाकर लक्ष्मी के मन में रहनेवाले गुस्से को शांत करके दोनों उन्हें यहाँ ले आयेंगे।'' पद्मावती की इन बातों को सुनकर श्रीधर ने इस रूप में कहा। ''सुनो पद्मावती! मेरे साथ तुम अकेली दांपत्य जीवन जीते हुए एक पल भी मुझसे अलग हुए बिना सदा मेरे साथ रही हो। अगर लक्ष्मी आकर मेरे वक्ष पर रहने से तब तुम उसे देखकर सहन कर सकती हो? मन में चिंता किए बिना रह सकती हो? विवाह के बाद तुम मेरे साथ आयी हो। लक्ष्मी जब आयी थी वह मेरे वक्ष पर थी। इसलिए तुम्हें दुःख न हो, उसे यहाँ से मैंने जानबूझकर ही जाने दिया है।''

पद्मावती की ललितोक्ति

हरि के इस रूप में कहते सुनकर चिंता करते हुए पद्मावती ने कहा। ''रमा भामा! जब यहाँ आयी थी। आपने उन्हें अपने वक्षःस्थल पर धारण करने से मुझे क्या कमी हुई है? उस लक्ष्मी ने तुम्हें और मुझे हित पहुँचाकर सब कुछ किया। सारे कार्यों का कर्ता बनकर रही। उस रमा कांता ने ही आत्मीयता के साथ सीता के रूप में मेरे साथ विवाह करने

की बात कही थी। उनके कहने के बाद ही मुझे आपने वेदवती के रूप में समझाकर मेरे साथ विवाह किया। मुझ पर इतनी कृपा करनेवाली उस सिरि का मैं क्या प्रत्युपकार कर सकती हूँ? किसी भी रूप में उसे यहाँ पर प्रेम से बुलाने से ही हे कमल दलाक्ष! मैं उस रमामणि के चरणों को पकड़कर उसकी पूजा करती रहूँगी। मुझे कोल्हापुर ले जाइए। वहाँ मैं नाना प्रकार से लक्ष्मी से विनति करके अपने सर्वस्व को उन्हें समर्पित करके, उन्हें बुलाकर यहाँ पर ले आऊँगी।'' कहनेवाली पद्मावती को देखकर हँसते हुए संतोष के साथ श्रीनिवास ने इस रूप में कहा। ''हे सति! तुम्हारी ललितोक्ति से मुझे संतोष हुआ है। तुम वकुला मालिका के पास हित से रहो। मैं अब अति शीघ्र ही लक्ष्मी को यहाँ ले आऊँगा।'' कहते श्रीनिवास ने निर्णय किया। इस वृत्तांत के बारे में जानकर लक्ष्मी ने अपने आप में इस रूप में सोचा।

लक्ष्मी का पाताल लोक जाना

'श्री वेंकटेश्वर आश्रित जनों की रक्षा करनेवाले अब मुझे यहाँ पर रहने नहीं देंगे। मुझे शेषाचल पर ले जाने के लिए यहाँ पर आयेंगे। तब 'मैं नहीं आऊँगी' कहने के लिए मेरा मन नहीं करेगा। मेरी जीभ से ऐसी बात नहीं निकलेगी। इसलिए गौरव के साथ मुझे कहीं छिप जाना चाहिए। अगर मैं उस देव के वक्ष पर दिन और रात को रहने से पद्मावती को चिंता होगी। मुझे यह कर्म क्यों करना चाहिए?' इस रूप में सोचते वह शीघ्र ही उठकर कोल्हापुर को छोड़ कर मार्ग खोकर पाताल लोक पहुँच गयी। हरि के अंशवाले विशेष योग महिमा रखनेवाले कपिल मुनि के यहाँ पहुँच गयी। तब उस लक्ष्मी को पहचान कर कपिल मुनींद्र ने बहुत गौरव के साथ बिना किसी संशय के अपने आश्रम में रहने के लिए आश्रय

दिया। हरि अंश के मुनि पर बिना किसी संदेह के लक्ष्मी वहाँ पर स्थिर रूप से रहने लगी। मन में हरि को स्थापित करके पूजा करने लगी।

लक्ष्मी को लेकर हरि का कोल्हापुर में तप करना

उसके बाद वेंकटाद्रि के नायक श्री वेंकटेश्वर प्रातःकाल ही उठ कर, सुवर्ण वस्त्रों से, भूषणों से सुसज्जित होकर गरुड़ जैसे घोड़े पर सवार होकर 'वहाँ होकर आऊँगा' ऐसा पद्मावती को मनाकर, बाद में जननी वकुला से तथा वराह स्वामी को बताकर आनंद के साथ निकल पड़े। शीघ्र ही करवीरपुर पहुँचकर वहाँ पर लक्ष्मी के मंदिर में रहनेवाले भवन में पहुँच गए। उस भवन में लक्ष्मी की खोज की। वहाँ पर लक्ष्मी दिखाई नहीं पड़ी। इससे श्रीनिवास को बड़ी चिंता हुई। दुःखी होकर व्याकुलता में श्रीनिवास को कुछ नहीं सूझा। आँखों से आँसू बहाने लगे। कामातुर होकर लक्ष्मी की खोज बार-बार करने लगे। दीनता में सोच में पड़ गए। ''अहो! मुझ पर बिना किसी मोह के लक्ष्मी इतने दिन यहाँ रहकर अब जाकर कहाँ छिप गयी है? मैं और उसके लिए कहाँ-कहाँ खोज करूँ?'' इस रूप में सोचते चिंता करते हुए वहाँ रह नहीं सके। वहाँ से निकलकर पहाड़ों के पास जाकर उन्हें देखते हुए इस रूप में कहा। ''हे गिरिवर! हे वृक्ष! हे किन्नेरांगनाएँ! मेरी लक्ष्मी को जानते हैं? वह कहाँ है? हे कर! हे भील वीर! यहाँ लक्ष्मी को देखा है? हे सुर! हे मुनिवर! हे मनुष्य! आपने कहीं देखा है मेरी लक्ष्मी को? मुझे धोखा देकर वह कहीं छिप गयी। उसे देखे बिना मैं अब रह नहीं सकता हूँ। इसलिए जिसने श्री कांता को देखा है मुझे दिखाइए।'' हरि की इन बातों को सुनकर उन्होंने इस रूप में कहा। ''हे देव! देव! महात्मा! वे इन दिशाओं में नहीं आयी हैं। वे कहाँ है यह स्पष्ट रूप में हम नहीं जानते हैं। तब आपको कैसे बता सकते हैं? हे शेषगिरि वासा!'' यह सुनकर श्रीनिवास चारों दिशाओं में

देखने लगे। इस रूप में कुछ समय तक चिंता करते हुए फिर से कोल्हापुर पहुँच गए। वहाँ लक्ष्मी के एक अर्चा रूप को तैयार करवाकर, पूर्व में अगत्स्य के द्वारा पूजित लक्ष्मी विग्रह को देखकर, करुणा से वहीं रहते हुए उस महालक्ष्मी के विग्रह की पूजा करने लगे। इस रूप में दस वर्षो तक तप करते रहे। तब एक दिन लक्ष्मी का स्मरण करते-करते श्रीनिवास अधिक चिंताग्रस्त हुए। तब अशीरवाणी ने अद्भुत रूप में हरि को उद्देश्य करके इस रूप में कहा।

अशरीर वाणी के वचन

''हे देव! आपके इस तप से रमा देवी संतुष्ट होकर यहाँ पर आप को दिखाई नहीं पड़ेगी। इसलिए यहाँ से ठीक दक्षिण की दिशा में प्रसिद्ध प्रदेश में कृष्णा नामक नदी बहती है। उसके द्वाविंशति योजन दूरी पर सुवर्णमुखी नामक नदी बहती है। उस नदी के उत्तर तट पर खड़े होकर तापसी बनकर कुंभसंभव के पूरब में रहनेवाले सिद्ध स्थल पर स्वर्ग में रहनेवाले एक सुवर्ण कमल को मंगाकर वहाँ पर गाढ़ना चाहिए। उस पौधे के पूरब दिशा में दिवाकर के लिए मंदिर बनाकर उन्हें उसमें प्रतिष्ठा करके पूजा करने से वह कमल अत्यंत शोभा के साथ खिल उठेगा। तुम उस कमल पर दृष्टि केंद्रित करके निष्ठा गरिष्ठ बनकर रमा सति की उपासना करो। उन्हें सुमनों को समर्पित करके पूजा करते रहो। तब देवी प्रसन्न होकर तुम्हारे हृदय पर अलंकृत होगी। हे अच्युत! अब तुम यहाँ से जाओ। बारह वर्षों तक मन को श्रीसति पर ही केंद्रित करके, मौन रूप में हे महात्मा! लक्ष्मी मंत्र को निष्ठा के साथ जप करते रहो।''

भारती देवी ने ऐसा अशरीर वाणी के रूप में बताया। सुनकर चक्री ने विचित्र ढंग से नेत्र खोल कर चारों दिशाओं में देखा। उन्हें कोई दिखाई

नहीं पड़ा। 'शायद यह गगनवाणी ने कहा। यह सत्य है।' कहते उठकर गरुड़ वाहन पर आरूढ़ होकर सही मार्ग से शेषाचल पर पहुँच गये। वेश बदल कर राज-वेश धारण कर लिया। पुष्करिणी में स्नान संध्यादि कृत्यों को पूरा करके वैखानसाचार्य की पूजा की। उन्हें दिव्यान्न समर्पित किया साथ ही उपहार भी दिए। उसने 'दया रखिए' ऐसा कहते विष्णु को आशीर्वाद दिया।

अशीर वाणी की बातों के अनुसार स्वामी के द्वारा पद्म सरोवर के तट पर निष्ठा के साथ तप करना

उसे विदा करके पहाड़ से उतर कर श्रीनिवास अगत्स्य मुनि के आश्रम में पहुँच गए। उसके पूरब प्रदेश में सिद्ध स्थल पर पहुँच गए। तब विष्णु ने गरुड-घोड़े से उतर कर वहाँ खड़े होकर वायु देव का स्मरण किया। वायु देव ने आकर विष्णु को नमस्कार करके इस रूप में कहा। ''हे देव! आज मुझे किस काम से स्मरण किया है? बताइए। हे श्रीवल्लभ! आपका सेवक बनकर मैं करूँगा।'' कहने पर चक्री ने मंदहास करते हुए कहा। ''सुनो हे पवन! तुम स्वर्ग जाकर वहाँ मुख्य रूप से मंदाकिनी में रहनेवाले सुवर्ण कमल को इंद्र से मांगकर ले आओ! तुम जाओ।'' चक्री के कहने से पवन ने कहा। ''सुवर्णमुखी में ही सुवर्ण कमल प्राप्त होते हैं। फिर स्वर्ग से उन्हें लाने की क्या जरूरत है?'' कहने पर अशरीरी वाणी के द्वारा बताये गए वचनों को हरि ने पवन को बताया। तब पवन ने जाकर सहस्र दल सुवर्ण पद्म को अमर पति से माँग कर लाकर हरि को दिया। सुवर्ण पद्म को लानेवाले पवन से हरि ने कहा। ''सुनो! पवन! मैं यहीं पर तप करूँगा। इस रहस्य को तुम को बताया। तुम इसे किसी को भी मत बताना!'' यह सुनकर पवन 'महाप्रसाद' कहते हरि की आज्ञा लेकर लौट गया। बाद में कमल लोचन ने वहाँ की पुष्करिणी में कमल

को गाढ़ने के लिए गड्ढ़ा बनाया। उसमें अच्छे ढंग से कमल की नाल को गहराई में गाढ़ दिया। पानी पर कमल को रखकर, दिवाकर को पूरब में प्रतिष्ठा करके पूजा करने लगे। दिवाकर के पश्चिम भाग में पद्मासन पर बैठकर हरि मन को एकाग्र बनाकर उस सुवर्ण कमल पर ध्यान को केंद्रित करके श्री सति के रूप में उसे मानकर जप करने लगे। इस रूप में नित्य मन में ही जप करने लगे। रमादेवी का मंत्र जपते हरि ने सिरि को लेकर इस रूप में तप किया।

तप में विघ्न डालने के लिए इंद्र का असफल यत्न करना

हरि के इस रूप में तप करने को इंद्र जानते हुए भी 'कोई राजा अवनि में निष्ठा के साथ तप कर रहा है।' ऐसा सोचते हुए अगर उसका तप पूरा हो जाएगा तो अपने इंद्र पद को छीन लेगा। समझ कर 'धरती पर तप में विघ्न डालना है।' ऐसा इंद्र ने सोचा। तब इंद्र ने अप्सरसाओं को बुलाकर इस रूप में कहा। ''कोई साहसी अवनी में मेरे पद को प्राप्त करने के लिए तप कर रहा है। उस राजा को धोखा देकर उसके तप को भंग कीजिए। साथ में पुष्पाकर को भी ले जाइए।'' ऐसा कहते रंभादि को सपरिवार इंद्र ने भेज दिया। तब वे मणि भूषण, सुवस्त्र, फूल, दिव्य चंदन को धारण करके हिचकारते तांबूल खाते विष्णु के तप करनेवाले स्थल पर पहुँच गयीं। कलकंठ, लकुलु, तोते, कलकल रव करते, मलयानिल को बहाते अप्सरसाएँ वहाँ पर पहुँच गयीं।

अपने साथ आनेवाले मन्मथ को देखकर सारी अप्सरसाएँ प्रसन्न हुईं। तब सबने वहाँ के श्रृंगार वन में प्रवेश किया। बड़ी वासना से फूल तोड़ने लगीं। तोते के रूप में तुतली बोली में बोलते, उत्साह के साथ अट्टाहास करते, हँसते एक दूसरे को बुलाते अत्यंत प्रेम के साथ इस रूप में उन्होंने कहा। ''हे बहनें! पेड़ों की टहनियों पर चढ़कर सारे फूल

तोड़कर पूरे वन में डालिए माई! धरती पर वसंत माधव के यहाँ वन लक्ष्मी को पहुँचाकर विवाह कीजिए माई! जूही की कलियाँ, चमेली के फूलों को तोड़कर मालाएँ बना दीजिए माई! उस वसंत के पास विचित्र ढंग से संगीत को बजाइए माई!'' ऐसा कहते संगीत लय के साथ गाते-खेलते कोलाहल करने पर राजा का वेश धारण करके तप करनेवाले हरि अंदर ही अंदर हँसते हुए नेत्रों को विनोद से खोल कर कांति के चारों दिशाओं में फैल जाने से हरि उनको देखकर विचलित नहीं हुए। बल्कि मन में लक्ष्मी का ही स्मरण करते हुए, सुवर्ण कमल पर ही अपनी दृष्टि को केंद्रित किया। तब वे कन्याएँ ही भ्रम में पड़कर हरि पर मोहित हो गयीं। तब वे हरि के पास पहुँचकर परिहास से फूलों की मालाओं को लेकर हरि के वक्ष पर लगाने लगी। हँसते हुए, नखरे करते हुए, कपट करते हुए, नाचते हुए, सद्गान करने के बावजूद अच्युत बिना विचलित हुए निष्ठा के साथ तप कर रहे थे। वीणा बजाते, गाते, नाचते हुए, हिचकारते, विचित्र भंगिमाएँ दिखाते, विनोद करते अपने आप में चपल भाव से पीड़ित होकर नारायण स्वामी के तप को भंग करने के लिए उनसे बात करने की कोशिशें की। फिर भी हरि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बल्कि नारायण स्वामी को देखते-देखते उनमें मोह बढ़ गया।

यह देखकर कंदर्प को बुरा लगा। वह रूठकर पक्षियों से कलरव करवाते, मलयानिल को बहाते, मधुपाली बल से, उमंग से अपने तोते वाहन पर आरूढ़ होकर, इच्छा की चाप को चढ़ाकर, नाड़ी को खींचकर प्रबल रूप में पुष्पों के बाणों को चक्री पर डालने लगे। हरि पर इस रूप में पुष्प बाण डालते-डालते मन्मथ थक गया। हरि पर जीत हासिल किए बिना वहाँ से लौट गया। तब रंभादि अप्सरसाएँ चिंता करने लगीं। हरि को देखते कुछ सूझे बिना सोचने लगी 'इसके मन में किस रूप में प्रेम को जगाना है?'

स्वामी के द्वारा विश्वमोहिनी का स्पर्श करना

एक-एक को निहारते हुए ''हे बहने! इस नरपति का तप ही महान है। पूर्व विश्वामित्र के तप से भी, बादरायण के तप से भी इनका तप बढ़ गया है। इस महाराज के हाथों में हम हार गयीं। अब चली जायेंगी।'' उनके इस रूप में सोचते समय हरि ने अपने पास की एक विश्वमोहिनी का स्पर्श किया। देवांगनाएँ वहाँ विश्वमोहिनी को देखकर, अपने से भी रूप-रेखा लावण्य में उसे सुंदर मानकर, संतोष के साथ उसे देखकर लज्जित होकर सर झुकाकर इस अद्भुत को देखने लगी। ''इस राजा ने अद्भुत क्रम में इस कांतामणि का सृजन किया है। ऐसी महिमा हमने कहीं नहीं देखी है। लोकातीत होने से ही यह संभव है। लगता है यह पुरुष इस लोक का नहीं है। नहीं तो इस रूप में एकाग्रता से मनुष्य ऐसा कर पायेगा क्या?' इस रूप में कुछ ने कहा। कुछ लोगों ने इस रूप में कहा। ''अहा! यह तपसि अगर महागुरु नहीं होता तो इस रूप में इतना निष्काम कैसे बनता? अपने पास अधिक सौंदर्यवती को सृजन करेगा क्या? यह तपोधन अवनि में एक मनुष्य मात्र नहीं है। साक्षात् माधव ही है। अनजान में हम लज्ज़ा के शिकार हो गयीं। अब हम क्या कर सकती हैं?'' इस रूप में सारी अंगनाएँ चिंता करने लगी थीं। कंदर्प ने इस रूप में सोचा। ''पिता के अपनी माता को प्राप्त करने के लिए यहाँ पर करनेवाले तप को भंग करने मैं क्यों आया?'' ऐसे भय से कंदर्प शीघ्र चला गया। तब बिना कुछ सूझे उस देवाधिदेव महा जगदीश को भक्ति के साथ नमस्कार करके धीमे स्वर में बात करते आवाज किए बिना लक्ष्मीश्वर से अलग होकर वे अप्सरसाएँ अपने सुरपति इंद्र के पास लौट आयीं।

उन्हें देखकर इंद्र के ''हे नारीगण! धरती पर नरपति के तप को भंग किया है क्या?'' प्रश्न करने पर रंभादि प्रमुख अप्सरसाओं ने डरते हुए इस रूप में कहा। ''तुम्हारे भेजने पर जाकर उन्हें नरपति समझ कर नाना प्रकार से उन्हें नृत्य गीत सुनाया। किंतु उन्होंने हमारी तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। अपनी महिमा से अपने यहाँ विश्वमोहिनी को पैदा करके उस कांता के सामने हम सबको नीचा दिखाया। हार कर हम चली आयीं। वे महान तप करते ही रहे। हमने उसे मनुष्य मात्र समझा। किंतु वे रमा के पति हैं। इसलिए वे विचलित नहीं हुए हैं। मन्मथ भी उनसे डरकर चला गया है। हे इंद्र! उसका तप महान है। यह सत्य है। कहने पर सुनकर सुरपति विस्मय होकर 'चक्री के द्वारा किए जानेवाले तप की रीति को भूल कर मैंने ऐसा अपचार किया है।' ऐसा सोचते हरि को नमस्कार करके चिंता करने लगे।

तब हरि ने अपने द्वारा माया से सृजित शक्ति को देखकर अचल होते हुए इस रूप में कहा। ''तुम जनों के मध्य में रहते पूजाएँ प्राप्त करती रहो। अब जाओ'' कहते हरि ने उसे भेज दिया। तदुपरांत अनजान में इंद्र के द्वारा किए गए अपराध को 'पुत्र के द्वारा किए गए अपराध को देखकर गुस्सा किए बिना रक्षा करनेवाले पिता' की तरह मान कर हरि ने उसे क्षमा कर दिया। तब हरि शांत स्वरूप बनकर पूर्व रीति से सुवर्ण कमल पर ही पूर्ण दृष्टि केंद्रित करके बिना विचलित हुए पूरी निष्ठा के साथ तप करने लगे।

हरि के बारे में सोचकर पद्मावती की चिंता करना

उधर पद्मावती हरि से अलग होने के बाद अन्न पान और नींद आदि से अलग होकर अत्यंत व्याकुल रही है। वह हरि के विरह ताप में

ज्वर से पीड़ित हो गयी। ''बाईस वर्ष बीत गए हरि यहाँ पर नहीं आये।' ऐसा सोचते चिंता से करवट बदलते, भूलते असह्य होने पर एक दिन वकुला से पद्मावती ने कहा। 'हे वकुला माई! विष्णु मुझे शेषाचल पर छोड़कर मुझे समझा बुझाकर चले गए। फिर लौटे नहीं हैं। मुझे महाचिंता हो रही है। एक-एक दिन एक युग के रूप में बिता रही हूँ। मेरे प्राणनाथ उस लक्ष्मी से मिलकर कहाँ चले गए? मुझे चिंता हो रही है। जहाँ खड़ी होती हूँ वहाँ रह नहीं पाती हूँ। भूल जाना चाहती हूँ तो भी भूल नहीं सकती। आँखों के सामने वे दिखाई देते हैं। वे मौनी बने मुझसे बातें नहीं करते हैं। सपने में रोजाना दिखाई पड़ रहे हैं। तापसी वेश में पास ही ध्यान योग में निष्ठा के साथ दिखाई पड़ रहे हैं। कोई साथ में नहीं है। अकेले हैं। लक्ष्मी उन्हें दिखाई पड़ी है या नहीं? आज मुझे संदेह हो रहा है। इस रूप में सपने आने का क्या कारण है? इस माया के बारे में कुछ समझ में नहीं आ रहा है?'' कहते पद्मावती रुआँसी हो गयी। पद्मावती को इस दशा में देखकर वकुला मालिका ने उसके मस्तक पर सहलाते, आँसुओं को पोंछकर सांत्वना देते हुए इस रूप में कहा। ''हे पुत्री! अपने अज्ञान को छोड़ दो। क्यों डरती हो? श्री महाविष्णु की चिंता मत करो। 'मुनियों की तरह सपने में दिखाई पडना' शुभ सूचक है। हे पुत्री! शांत और संतोष के साथ रहो। आंखों से आँसू मत बहाओ। शीघ्र ही वे माधव लक्ष्मी के साथ मिल कर यहाँ लौट आएंगे।''

लक्ष्मी और कपिल मुनि का संवाद

इस रूप में कहकर वकुला देवी वहाँ पद्मावती को तसल्ली देती रही। इधर लक्ष्मी कपिलाश्रम में रहते पद्मावती की चिंता के बारे में जानकर ''चक्री को मेरे लिए तप क्यों करना है? उस कांता को पहाड़ पर क्यों छोड़ना है?'' ऐसा सोचते चिंता करने लगी। तब लक्ष्मी ने कपिल मुनि

को देखकर इस रूप में कहा। ''हे मौनी! अवनि में चक्री ने पद्मावती के साथ विवाह किया है। फिर उसे छोड़कर मेरे लिए पर्वत के नीचे तप कर रहे हैं। इसके लिए मैं अब क्या करूँ?'' सुनकर योगींद्र ने कहा। ''हरि के हृदय में वास किए बिना तुम्हारा रूठकर आना विचित्र ही है। इसका क्या कारण है? हे सति! क्या करना है, मैं बाद में बताऊँगा।'' कपिल मुनि के ऐसा कहने पर सुनकर श्री सति ने कहा। ''विष्णु के हृदय पर मैं शांत से रही थी। तब अज्ञानी होते हुए भृगु ने हरि के वक्ष पर मारा। पराये पुरुष के पाद के लगने से, उस हृदय पर रहने से मेरे पातिव्रत्य का बल बिगड़ जाएगा, समझ कर हे मुनि! उनसे अलग हो गयी। दूर चली आयी।'' कहने पर सुनकर मुनि ने कहा। ''वह भृगु कौन है? वह तुम्हारा पुत्र है। पूर्व में तुम्हारा पुत्र है। वह धन्य है। वह तुम्हारा पोता है। वह पुत्र तुल्य है, मन में किसी भी प्रकार का संदेह मत करो। हे मानिनी! हरि ने इस बात को तुमको बताया या नहीं?'' यह सुन कर लक्ष्मी ने कहा। ''अंबुज नाथ ने जिस रूप में उस दिन बताया था। वैसे ही आपने बताया। थोड़ा भी अंतर नहीं है।'' कहनेवाली सिरि को देखकर मुनि हँसते हुए ''मूर्खता के साथ पति की बातों को अनसुना करके तुम करवीरपुर क्यों आयी हो?'' कपिल मुनि ने कहा। कपिल मुनि की इन बातों को सुनकर लक्ष्मी ने चिंता करते हुए उस योगींद्र की ओर देखते हुए विनय और विश्वास के साथ इस रूप में कहा। ''उस विप्र के अति गर्व से विष्णु को मारने के विधान से दुःखी होकर मैं उस वक्षस्थल पर नहीं रहना है। ऐसा सोचा था।'' तब हँसते हुए मुनि नायक ने लक्ष्मी से कहा। ''हे लक्ष्मी! तुम्हारे पति को जो पसंद है, वह तुम्हें पसंद क्यों नहीं है? तुम पतिव्रता मणि हो। ऐसा कौन-सा धर्म है। जो तुम्हारे मन में नहीं है। हे श्रीवनिता ललामा! हरि के चित्त को जाने बिना ऐसा कोई करता

है? हे सिरि! जितने तप करने के बाद तुम्हारे स्वामी के वक्ष पर रहने का अवसर तुम को प्राप्त हुआ। भृगु पर दायित्व छोड़कर इस रूप में रूठ जाना तुम्हारे लिए ठीक है क्या? भृगु ने कौन-सा अपराध किया है? तीनों मूर्तियों के गुणों की परीक्षा करने हेतु मुनियों के द्वारा भेजे जाने पर पहले ब्रह्म के पास जाकर उनके रजोगुण की परीक्षा करके, फिर शंकर के पास जाकर उनके तमोगुण क्रम को जानकर, हरि के महासत्व गुण को ब्रह्मादि को बताने के लिए भक्ति को मन में रखकर भृगु ने मारा है। गर्व से मारा है, मुनि भाव को समझे बिना इस रूप में तुम्हारा सोचना क्या उचित है? स्वल्प दोष से ब्रह्म और रुद्र के रूठने से अधिक दोष करके अतिशय रूप से विष्णु को प्रशंसित करने हेतु ही भृगु ने मारा है। सचमुच ही क्रोध को मन में रखकर नहीं मारा है। इसलिए विष्णु ने उस काम की अनुमति देते हुए उसे क्षमा करके भेज दिया। अगर कहना है तो उस हरि पर और भृगु पर गलतियाँ लाद कर हरि को छोड़कर अलग हो जाने में तुम्हारी ही गलती है। इतना विरोध तुम्हारा देखकर वहाँ रहने में असमर्थ हरि वैकुंठ छोड़कर तभी वेंकटाचल पहुँच गए। वहाँ कुछ दिन कष्ट सहते रहने का नाटक करते हुए बाद में उस पद्मावती को प्रेम से देखकर विवाह किया। हे अंबुजाक्षी! कहीं भी रहे उनको किसी चीज की कमी नहीं है। हरि करुणासागर हैं। इसलिए तुम्हें फिर से बुलायेंगे, यह जानकर भी जानबूझ कर उन्हें धोखा देकर यहाँ पर चले आना तुमको क्या ठीक है? पतिव्रता मणि होते हुए पति को संकट में डालना, बच्चों की तरह आंख-मिचौनी खेल की तरह घूमते रहना क्या पतिव्रता के लिए ठीक है? ऐसा कोई धर्म है जो तुम नहीं जानती हो? हे सति! यह क्या विचित्र हो गया है? हे वनिता! द्विशती वर्षों से सर के बाल जटाएँ बनने पर तापसी बनकर आहार-निद्रा, सुखासक्तियों को भूलकर तुम्हारे लिए सर्वलोक

कर्ता होते हुए भी साधारण मनुष्य के रूप में तुम्हारा नाम मंत्र जप रहे हैं। अब तुम मंत्राधीन होकर वासुदेव के पास जाने का समय आ गया है। अब तुम कहाँ छिप जाओगी? अभी उठकर अंबुजाक्ष के द्वारा गाढ़े हुए पद्मनाल के पथ में पहुँचकर, तुम्हारे नाथ के द्वारा दृष्टि केंद्रित कमल से ही मोद से उदित होकर वहाँ सुखी रहो। ब्रह्म आदि सभी वहाँ पर आयेंगे। तब तुम चक्री के वक्ष स्थल पर स्थापित होकर धरती पर अत्यंत प्रसिद्ध हो जाओगी।'' कपिल महामुनि की इन आप्त और विवेकवान बातों को सुनकर लक्ष्मी को संतोष हुआ। कुछ छिपाये बिना लक्ष्मी ने मुनींद्र से इस रूप में कहा। ''आपके बताने के बाद अब मुझे निश्चित रूप से लग रहा है कि गलती मुझसे हो गयी है। अब मैं क्या करूँ? उस समय की कालगति के कारण ही ऐसा हुआ है। इसलिए अपने स्वामी के साथ मैंने इस रूप में अपचार किया है। अब मर्यादा और लज्ञा को छोड़कर चक्री के वक्ष पर रहूँगी तो चक्री हँसेंगे नहीं क्या? कहीं भृगु भी हँसेंगे? नहीं इस रूप में संकोचित इस रूप के साथ और अर्ध कला के साथ सौ तप करके चक्री के प्रति किए अपचार का प्रायश्चित करूँगी। हे पावनात्मा! तभी मैं इन पापों से मुक्त हो सकती हूँ। इस देह से उस स्वामी के साथ अपचार किया है। हे महात्मा! इसलिए अभी इस देह के साथ हरि के वक्ष पर बसना ठीक नहीं है। इसलिए नयी देह को प्राप्त करके, विष्णु के द्वारा पूजा करनेवाले सुवर्ण कमल में घुसकर फिर हरि के पास पहुँचकर उनके हृदय में बसूँगी। हे मुनिप्रवर! आप इसके लिए अनुमति दीजिए।'' इस रूप में विनति करने पर उस देवी के मुख में दिव्यतर कांति को देखकर तापसी श्रेष्ठ ने मन में ही इस रूप में सोचा। 'इस नये रूप में विशेष पूजाओं के लिए यह कारण बनेगा।' बाहर से इस रूप में कहा। ''हे देवी! तुम यहीं पर वास करते हुए तप करती रहो। तदुपरांत उस पद्म सरोवर के पास जाकर पांचरात्र पूजाओं को ग्रहण करते रहो। उस रूप

में हरि को चित्त में लाकर तप करते रहो।'' इस रूप में लक्ष्मी को आज्ञा देकर फिर इस रूप में कहा। ''हे लोक माता! तुम हरि को नित्य अनुयायिनी होते हुए चक्री के द्वारा जितने अवतार लिए गए उतनी बार नये रूपों को तुमने भी प्राप्त किया है। तुमने कभी अपने नाथ को नहीं छोड़ा। हे विश्वमोहिनी! आपके प्रभाव को मैं पहले से जानता हूँ। जितने रूप तुमने धारण किए, जितने अवतार चक्री ने लिए, उनकी गिनती करने की शक्ति शेष में, ब्रह्म में और रुद्र में है क्या? तुम दोनों ने आदि दंपति बनकर भूरि जगत्रय को इस रूप में सृजित किया है। अब अलग होने का कारण है, इसलिए अलग हुए हैं। वेंकटगिरि पर तुम दोनों को रहना है। इसलिए ऐसा संदेह तुम्हारे मन में पैदा हो गया था। हे पंकज मुखी! आपमें कहाँ भेदभाव है? तुम्हारी गलतियों के बारे में मैंने बताया। ऐसा मत सोचिए। हे विमलेंदु मुखी! आप्त होने के कारण मेरे मन में जो आया आत्मीयता के साथ उसे सुनाया।'' सुनकर लक्ष्मी ने इस रूप में कहा। 'हे मुनिनाथ! आपके बताने पर ही मन का विरोध दूर हो गया। यहाँ आने पर मेरे मन में जो भावना थी उसे मैं अब बताऊँगी। वह ऐसा है कि उस समय पद्मावती चक्री के साथ मिलकर सुखी थी उस समय मैं उस हरि के वक्ष पर कैसे रह सकती हूँ? इस रूप में सोचते हरि मुझे बुलाने पर उसे धोखा देकर आपके आश्रम में चली आयी।'' कहने पर मुनि ने हँसते हुए लक्ष्मी की ओर देखकर इस रूप में कहा। ''हे सुनो! विष्णु ने कृष्ण के वेश में हजारों गोपिकाओं के साथ रमण किया है। सबको सभी रूपों में दिखाई दिए। हे चंद्रवदना! ऐसे में तुम हरि से अलग होकर क्यों रही? हमारे आश्रम को पवित्र बनाने यहाँ पर आयी हो। यह विशेष बात है। हे सिरि! अब तुम अपने नाथ से अलग हुए बिना शेषाचल पर रहो।''

व्यूह लक्ष्मी के द्वारा हरि को दिव्य कमल पर दर्शन देना

मुनि के इस रूप में कहने पर लक्ष्मी उस कपिल मुनि से विदा लेकर संतोष के साथ अपनी योग महा महिमा को बढ़ाते लोक पूज्य प्राप्त करने के लिए वहाँ से निकली। अपनी तपोनिष्ठा से पूर्व देह को त्याग करके, फिर दिव्य देह को प्राप्त करके पद्म के नाल में घुसकर उसके द्वारा ऊपर उठकर पद्म कर्णिका के द्वारा ऊपर पद्मासन पर बैठ गयी। मानो सारी बिजलियाँ एक जगह इकट्ठा होकर विग्रह के रूप में बदल गयी हों। ऐसे उस पद्म केऊपर कांति से दीपित रमादेवी दिखाई पड़ी। ऐसी रमादेवी को देखकर हरि आनंद जलधि में डूब गये। सिरि की ओर हरि के देखने पर, वह हरि की ओर देखकर लज्ञा से कुछ बोले बिना चिंता के साथ सर झुका कर रही।

लक्ष्मी ने अपने मन में इस रूप में सोचा। ''प्रेम से यहाँ पर मेरा नाथ तापसी बनकर, घन जटाधारी बनकर, स्वयं निराहारी बनकर, सारे भोगों को त्याग कर, विरागी बनकर इस रूप में रहे। ऐसे रूप को मुझे देखना पड़ा। अब मैं क्या करूँ?'' कहते चिंता करने पर, उस लक्ष्मी के भाव को समझकर विलास से आभरण, सुवर्ण वस्त्र, शंख, चक्र धारण करके, नीलमेघ श्याम के रूप में खड़े होकर हरि ने उसे दर्शन दिये। तब श्रीदेवी उन्हें देखकर मोहित हो गयी। तब चक्री अपना सर झुकाकर चुप रहे। सिरि हरि को देखते समय सर झुका कर लज्ञा का अनुभव करने वाले पति को देखकर सिरि को भी लज्ञा हुई। इस रूप में लक्ष्मी के सिर झुकाकर अपनी ओर न देखने से संदेह के साथ पद्म में पद्मासन पर बैठी लक्ष्मी की ओर हरि ने मोह से देखा। तब मन्मथ ने निडर होकर, सिरि को क्यों पास में नहीं बुला रहे हैं, ऐसा सोचते हरि के मन में घुस कर कोलाहल करते पुष्प बाणों को हरि पर छोड़ा। तब गोविंद ने अपने मन

से रूखेपन को छोड़कर अगर सिरि पहले बात करेगी तो वह भी उससे बात करेगा। ऐसे निर्णय पर पहुँच गये। इधर लक्ष्मी भी कमल पर निश्चल बैठी रही कि हरि के बुलाने पर मैं भी बात करूँगी। ब्रह्म और रुद्र इन दोनों के भाव को समझ कर अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर वहाँ पर चले आये। उन्होंने रम्यतर पद्म सरोवर पर पहुँचकर शुभ वाद्यों को बजा कर पुष्पों की वर्षा करवायी। दोनों की प्रशंसा करते हुए दोनों को नमस्कार करके इस रूप में कहा।

दंडक

'श्री मत्परंधामा! जीवावलीस्तोमा! श्रीमानिनी लोल! श्रृंगार सल्लील! कंदर्प लावण्य! कंजोद्भवगण्य! षाड्गुण संपन्न! संरक्षितापन्न! सत्यव्रताचार! साधु व्रजोद्धार! सारांबुदश्याम! संपूर्ण सत्काम! वेदांत संचार! विश्वंभराधार! श्री वेंकटाद्रीश! सच्चित प्रकाशा! पराकाश! लोकेश! वाणीश गौरीश! नाकेश वंद्यांघ्रिपद्माद्वया! नित्य सत्या द्वया! सद्धयासांद्र! योगींद्र हृतपद्म भृंगा! सुभांगा! सुचारित्रा! मित्राब्ज नेत्रा! धरित्री कलत्रा! महोल्लास! दासप्रिया! श्रीनिवासा! हम पर सत्कृपा कीजिए। हे परम पिता! तरिगोंडवासा! नृसिंहा! हृतांहा! नमस्ते! नमस्ते! नमस्ते! नमः' इस रूप में हरि की स्तुति करके विनति करते पद्म पर दीपित होनेवाली लक्ष्मी को देखकर ब्रह्म शिवादि ने विश्वास और विनय के साथ इस रूप में कहा। ''हे क्षीर सागर जात! चित्त संभव माता! प्रथितगुणो पेता! भाग्य दाता! बहु भक्त परिपाला! पाप कर्म विफाल! हित सत्यमूल! संस्तुत सुशील! कनक पंकज वासा! कमनीय दरहासा! वदन मनोल्लास! वर विलासा! हे लक्ष्मी आपके स्वामी के हृदय पर आसीन होकर शेषाचल पर बसकर धरती पर प्रसिद्ध हो जाइए। शेषाद्रि पर बसकर हम पर सत्कृपा कीजिए।'' ऐसी प्रार्थना करते हुए फिर से कहा। ''पवित्र कार्तिक शुद्ध

पंचमी गुरवार उत्तराषाढ दिन शुभ दिन है। शुभ तारा मित्र तारा के समय चक्री के वक्षस्थल पर विराजमान होना चाहिए। अब देर किस बात की?'' कहते ब्रह्म और रुद्रों की विनति करने पर महा विजयलक्ष्मी चुप रही। तब ब्रह्म ने भृगु मुनींद्र की ओर इशारा किया। तब भृगु सिरि के पास जाकर नमस्कार करके, 'हे मातृ देवता! मेरी गलती को क्षमा करके हे माई! मुझे अपना पुत्र समझ कर हरि के हृदय पर आसीन हो जाइए।' कहते अनेक रूपों में विनति की। तब लक्ष्मी ने सहज ज्ञान से सर्वसुमति बनकर भृगु का आदर करते हुए संतोष के साथ इस रूप में कहा। ''हे मुनि! आपकी दृढ़ भक्ति और धैर्य की मैं दाद देती हूँ। अतिशय सत्व गुणवाले अपने स्वामी पर संदेह करके मैं अलग हो गयी। मेरे रजोगुण के साथ काल गति मिलने पर इस रूप में प्राणेश से अलग होना पड़ा। परदेशी बनकर रहना एक बात है तो स्वामी से उग्र तप करवाना दूसरी। इससे एक सिद्धि हुई। इसलिए काल किसी के वश में नहीं रहता। तुम्हारी कोई गलती नहीं थी, मेरी भी कोई गलती नहीं थी। यह सब कपट नाटक सूत्रधारी हरि का ही विनोद है। यह सब चक्री को मालूम है।'' कहते लक्ष्मी ने भृगु को विदा किया। फिर संतोष के साथ बाद में हरि के पाद पद्मों पर दृष्टि को केंद्रित करके प्रेम और भक्ति के साथ देखने लगी।

ब्रह्मादि की विनति पर व्यूह लक्ष्मी के द्वारा एक शुभ लग्न में वेंकटेश्वर के वक्ष पर अलंकृत होना

सोने की गुड़िया जैसे हंसते हुए सुवर्ण पद्म से 'नाथ ही उठाकर हृदय पर रख लेंगे' ऐसा समझ कर लक्ष्मी चुपचाप बैठी रही। ब्रह्म और रुद्र दोनों ने लक्ष्मी के चेहरे की ओर देखकर उसके मन में रहनेवाले संदेह को समझकर हरि को नमस्कार करके इस रूप में कहा। ''हे जगदीश! सागर कन्या को उठाकर सावधानी से वक्ष पर रख लेना चाहिए।'' कहने पर सुनकर हँसते हुए हरि ने कहा। ''आश्चर्य से क्यों देखते रहना है? सदा निवास के रूप में रहनेवाले मेरे वक्ष पर कम-से-कम अब तो रहने के लिए आप लोग लक्ष्मी से कहिए।'' कहने पर ब्रह्म और शिव ने सुन कर मन में संतोष का अनुभव किया। उन्होंने लक्ष्मी से इस रूप में कहा। ''हे देवी! अब तुम्हें अपने प्राणनाथ के हृदय पर बसना चाहिए। शुभ लग्न है। अब देर मत कीजिए।'' इस रूप में विनति करने पर वह सागर तनया घुंघुरू के छमछमाने से, कटि पर बांधी गयी घंटियों के बजने से, सोने की छोर वाली सफेद साड़ी की गोंठों के चमकते, सुंदर चोली में सोने के कटोरों की तरह दीपित थन, चोटी से लटकनेवाली फूल मालाएँ, हवा में हिलनेवाले सर के बाल, ललाट पर तिलक, कर्ण कंठाभरण, कर कंकण, सुंदर शिरोभूषण, सुरचिर मालाएँ और हार इस प्रकार अनेक रूपों में अलंकृत, भासुर नासिकाभरण से शोभित, बिंबाधरों से प्रदीप्त, सुंदर ढंग से सजायी गयी कस्तूरी तिलक के साथ, चारों तरफ कांति के विकीर्ण होते, बालचंद जैसे भौहें, नेत्रांजन से दीपित, नीले रंग की कांति से, परिमल गंध लेपन के साथ, कुसुमों के सौरभ चारों दिशाओं में फैलते, हंसगति से उस सुवर्ण पद्म से निकलकर, हरि के पास पहुँचने के लिए पद्म सरोवर से निकलकर श्री रमा सति पति के पास पहुँच गयी। लक्ष्मी ने महा मोह और भक्ति के साथ अपने पूर्व स्थान हरि के हृदय पर चंदन लेप किया।

तुलसी दल, दूर्वार कलियों, जूही के फूल, गुलदाउदी के फूल आदि फूलों से बनी सुंदर माला को हाथ से लेकर कंकणों के बजते लक्ष्मी ने हरि के गले में पहना दिया। वहाँ खड़ी रहनेवाली लक्ष्मी को देखकर उसे क्षमा करके चक्री ने अपने दोनों हाथों से उसे उठाकर अपने वक्ष पर रख

लिया। तब देवताओं ने उनके सिरों पर पुष्पों की वर्षा करवायी। देव दुंदुभी बजायी गयी। इंद्र ने हरि के पास पहुँचकर नमस्कार किया।

तब आकाश में रंभादि अप्सरसाओं ने नाट्य किया। गंधर्वों की सतियों और पतियों ने कीर्तन गाया। तुंबुर, नारदादि ने अपनी वीणाओं को बजाकर गीत गाये। कश्यपादि मुनिगण और देवताओं समेत भक्तों ने निगमांत सूक्तियों से हरि का कीर्तन किया। पार्वती और सरस्वती देवियों ने हरि और सिरि को मंगल हारतियाँ उतारी। तब ब्रह्म ने भी बड़े संतोष के साथ मुनियों एवं देवताओं के साथ मिलकर वेदगान किया। तब विष्णु आनंदित होकर लक्ष्मी के साथ गरुड वाहन पर बैठ गए। तब ब्रह्म, इंद्रादि ने इस रूप में कहा। ''महालक्ष्मी के उदित होनेवाले इस पद्म सरोवर में कार्तिक मास की शुद्ध पंचमी के दिन जो कोई पुण्य स्नान करेगा उन्हें लक्ष्मी के कटाक्ष से सकल सुखभोगों के साथ-साथ मुक्ति भी प्राप्त होगी।'' इस रूप में उस तीर्थ की अनेक प्रकार से स्तुति करके, नमस्कार करके उस तीर्थ के जल को अपने सिरों पर धारण किया। फिर अपने-अपने वाहनों पर आरूढ़ हुए। तब हरि उनको साथ लेकर वेंकटाचल पर चढ़ गए। वराह स्वामी की अनुमति से विश्वक्सेन के द्वारा पहले से अलंकृत किए हुए अपने निजी वास पर पहुँच गए। वहाँ पर तब पद्मावती ने सकल आभरणों से भूषित होकर आनंद निलय में प्रवेश करके हरि और सिरि को नमस्कार किया। सिरि ने तब पद्मावती को आशीर्वाद दिया। पास में बुलाया। आदर किया। वकुला से कुशल-क्षेम मांगा। फिर अपनी इच्छा मात्र से सारे पदार्थों का सृजन करके ब्रह्मादियों को भोज दिया। भोजनोपरांत उन्हें चंदन, पुष्प, फल, तांबूलादि दिलाकर सत्कार किया। तब सभी संतुष्ट होकर विनय के साथ नमस्कार करके लक्ष्मी और नारायण की आज्ञा से अपने-अपने निजी वासों पर लौट गए। तब

श्री वेंकटेश्वर ने लक्ष्मी और पद्मावती के साथ रहते सुख-स्थिति को प्राप्त किया। तदुपरांत एक दिन विनोद में सिरि को देखकर श्रीनिवास ने इस रूप में कहा।

आनंद निलय में लक्ष्मी वेंकटेश्वर के विनोदमय संभाषण

''हे श्री रमादेवी! तुम्हारे लौट आने से मुझे बहुत संतोष हुआ है। उस समय कुबेर के द्वारा लिए गये उधार को कैसे चुकाना है। हे इंदुवदन! कोई उपाय बताओ।'' ऐसा विनोद से हरि के पूछने पर तब लक्ष्मी ने कहा। ''उधार लेते समय मुझसे पूछा है क्या?'' हँसते हुए फिर से कहा। 'हे महान! विवाह के लिए मेरे आने पर धन मुझसे माँगने में क्या गलत था? तब मांगे होते तो मैं प्रेम से क्या नहीं देती? तब आपने मुझे हल्का लेकर कुबेर से 'अपने विवाह के लिए धन की मांग' करके हे जगन्नायक! उधार लेने की क्या जरूरत थी? इस काम के लिए मैं क्या कहूँ? तब ऐसा व्यवहार करने के कारण ही आपको कपटात्मा समझ कर करवीरपुर मैं चली गयी। हे महात्मा! फिर वहाँ से नहीं रह पाने की स्थिति में पाताल चली गयी थी।'' यह सुनकर विष्णु ने ऐसा कहा। ''मुझसे अलग होने की चिंता में तुम थी। इसलिए विवाह के लिए आवश्यक धन की मांग मैं कैसे कर सकता था? इसलिए हे रमा! उसे गलत समझकर मुझे हलका मत समझो।'' हरि के इस रूप में कहने पर सुन कर लक्ष्मी ने कहा। ''उस समय उस रीति में हुआ है न? तब से ब्याज बढ़ता रहा है न? अपनी मर्यादा को बचाने के लिए जितना धन आप चाहते हैं हे स्वामी! उतना धन मैं आज आपको दूँगी। तब उसका उधार चुकाइए स्वामी!'' इन बातों को सुनकर हरि को संतोष हुआ। फिर इस रूप में कहा। ''तुम्हारी महिमा को क्या मैं जानता हूँ? अब नया क्या है? अब कुबेर को धन क्यों देना है? उस दिन की सम्मति के अनुसार ब्याज क्रम से देते हुए कलियुग के

अंत तक पूरा चुकाकर आराम के साथ वैकुंठ लौट सकते हैं। तब तक इसी शेषाचल पर ही रहते हुए धरती के जनों का उद्धार करते हुए उनके पापों को दूर करते रहेंगे। ऐसे काम और भी कई हैं। इसलिए शीघ्र उधार चुकाने की जरूरत नहीं है। वह इसलिए है कि सुनो। कलियुग में पाप कर्म करनेवालों को रोगादि आंदोलन अनेक होंगे। तब वे डरकर मेरी शरण में आयेंगे। वे मुझसे मनौतियाँ मांगेंगे। तब उनकी आपदाओं को दूर किए बिना चुप रहना ठीक नहीं होगा। इसलिए ऐसे दुष्कर्म करनेवाले लोगों को धन की ओर आकर्षित करके उनकी आपदाओं को दूर करके उनके धन को मैं पहाड़ पर पहुँचाने के लिए विवश करूँगा। फिर उनके पापात्मक धन को उन्हीं को दिलाता रहूँगा। धरती के पुण्यात्माओं के द्वारा दिए गए धन को थोड़ा मैं ग्रहण करके कुबेर को थोड़ा ब्याज के रूप में चुकाते ऐसी विचित्र लीला करता रहूँगा।'' हरि ने स्नेह से कहा। फिर इस रूप में कहा। ''हे रमादेवी! सभी को तुम धन देते रहो। उस धन को मैं यहाँ आकर्षित करता रहूँगा। फिर सुजन और दुर्जनों को देने के क्रम में मेरा शासन यहाँ पर चलाता रहूँगा। इसी रीति में हमें कलियुग को काटना होगा। इसलिए कुबेर का उधार अभी चुकाने की जरूरत नहीं है। कलियुग के अंत तक समय है। ऐसा ही उधार पत्र कुबेर को लिख कर दिया है। उसे अभी क्यों बदलना है? उसे अभी मूल को क्यों लौटाना है? ऐसा सोच रहा हूँ।'' कहने पर लक्ष्मी ने कहा। ''हे देव! अपने मन में ऐसा विचार रखकर 'इस उधार को मैं कैसे चुकाऊँगा?' इस रूप में आज पूछने की यह विनोद लीला क्यों कर रहे हैं।'' कहते लक्ष्मी के पूछने पर सुनकर हरि ने कहा। ''तुम जनों को अधिक धन दे दोगी तो उसे मैं ले लूँगा, हे लक्ष्मी! ऐसी प्रार्थना तुमसे की है।'' कहने पर लक्ष्मी ने कहा। ''हे महान! संतोष के साथ आपको धन देकर उधार

चुकाने के लिए मैं कहती हूँ। तो आप अनसुना करके इस रूप में जनों को धन देने की बात कह रहे हैं? यह कौन-सी रीति है?'' ऐसा सुनाकर लक्ष्मी ने फिर से कहा। ''हे प्राणेश! कलियुग में जन अति कठिन होते हैं। इसलिए दान देने के लिए नहीं सोचेंगे। इसलिए जन्म जन्मांतर से दारिद्र्य प्राप्त करके मर जाते हैं। ऐसे जनों को धन देने के लिए कहने पर मैं धन नहीं दे सकती। हे वरद! आपको जितना धन चाहिए मैं दूँगी। आप ही उनको प्रेम से दीजिए।'' लक्ष्मी के इस रूप में कहने पर हरि ने कहा। ''जो मोक्ष पाने के लिए योग्य हैं, उनको मोक्ष, हे देवी! कामनाओं के साथ पुण्य कर्म करनेवालों को उनके कर्म के अनुसार फल देकर रक्षा करने की इच्छा मुझे है। संपदा देनेवाली तुम हो। इसलिए धन देने का काम तुम्हारा है। फिर उनके पास रहनेवाले अधिक धन को लेकर उनकी आपदाओं को दूर करके, संतान का वरदान देकर उद्धार करने का काम मेरा है।'' इस रूप में कहने पर हरि को देखकर लक्ष्मी ने इस रूप में कहा। ''मनुष्य दान-धर्म और परोपकार नहीं करते हैं। उनको धन क्यों देना है? उस धन को वे आपको क्यों देना है? धन प्राप्त होते ही मनुष्य में दंभ, दर्प, लोभ बढ़ जायेंगे। हे नीरजाक्ष! क्या सचमुच वे उस धन को आपको देंगे?''

लक्ष्मी के इस रूप में कहने पर सुनकर हरि ने कहा। ''हे लक्ष्मी! जैसे तुमने कहा कलियुग में पैदा होनेवाले अवश्य लोभी होंगे। इसमें कोई संदेह नहीं है। सच ही इसके लिए एक उपाय है। वह ऐसा है कि कलियुग के जन अवश्य पाप करते हैं। इसलिए रोगादि बाधाएँ उन्हें सताती हैं। ऐसे समय में वे मेरा स्मरण करते हैं। तब मैं उनके सपनावेश में प्रत्यक्ष होकर उनकी शक्ति के अनुसार मनौतियाँ करवाकर, उस स्वल्प धन के लिए विस्तार से ब्याज बढ़ा कर, प्रति वर्ष उनको दंड लगाकर इस

वेंकटाद्रि पर आने के लिए मजबूर करूँगा। उनके द्वारा लाये धन को देख कर पुण्य और पाप का निर्णय करके सुजन और दुर्जनों को दिलाऊँगा। 'मुझे संतर्पण कीजिए' ऐसी आज्ञा देकर उनके द्वारा अन्नदानादि कराते रहूँगा। ऐसे वे द्रव्यान्नदान करनेवाले बनेंगे। उनके द्वारा इस रूप में किए गए स्वल्प दान को ही अधिक मानकर तुम उनको धन और धान्य देते रहो। मैं उनको भय दिखाकर या मनाकर उनके पास के धन को यहाँ पर मंगाऊँगा। उनके द्वारा दान कराते रहना है। इस वेंकटाद्रि पर किए गए दान अधिक फल प्रदान करते हैं। इसलिए मैंने ऐसा उपाय किया। अगर यह युक्ति नहीं करेंगे तो कलि पुरुष सकल धर्मों को बिगाड़ कर, जनों को अनेक प्रकार से पीड़ित करके, रोरवादि नरककूपों में डालेगा। मद रखने के कारण कलियुग में पैदा होनेवाले जीवों को कलियुग में इस रूप में उद्धार करने के लिए ही मैं वेंकटाद्रि पर विराजमान हुआ। तुम भी मेरी सहायता करके मुझे समर्पण करने केलिए जनों को भाग्य देते रहो, ऐसी प्रार्थना की है। अगर मैं अभी कुबेर का उधार चुकाऊँगा, तो मुझे यहाँ पर बिना काम के रहना पड़ेगा। ऐसा बिना काम के रहना मुझे पसंद नहीं है। इसलिए तुम मुझे ऐसा काम दो।'' कहने पर सुनकर लक्ष्मी ने कहा।

''हे धन्यात्मा! आपके साथ बात करना कठिन है। अभी बताऊँगी। सुनिए। धरती पर दान, धर्म, परोपकार करके, तुमको अर्पण करनेवालों को धन, धान्य, वरदान देती रहूँगी। उसमें लोभ से पापात्मा बननेवाले जनों के धन को मैं नाश करूँगी। उस धन की वृद्धि नहीं होगी।'' लक्ष्मी ने हरि से निश्चय के साथ बताया। तब सारे जनों को सिरि संपदाएँ देती रही। उस समय सारे जन वेंकटाचल पर आकर स्वामी को नमस्कार करके अपने धन को स्वामी को देते रहे। उसी समय अपने धन को

श्रीनिवासार्पण समझते ब्राह्मणों को सकल दान देकर इह पर सुखों को प्राप्त करते रहे।' इस रूप में देवदर्शन के द्वारा बताने पर सुनकर संतोष के साथ देवल ने इस रूप में कहा।

शुक मार्तांड संवाद

''हे महान देवदर्शन मुनि! शुकाश्रम में जब वह मुनि तप कर रहा था तब शुक वहाँ पर थे या नहीं?'' देवल से इस रूप में पूछने पर उसने इस रूप में कहा। ''सुनो विप्र! हरि का तप करने के पहले ही ब्रह्मानंद का अनुभव करते हुए शुक योगी ने सूर्य मंडल में घुसने की कोशिश की। तब सूर्य ने उसे रोककर इस रूप में कहा। ''हे निर्मलात्मा! तुम्हारे गुरु व्यास इस लोक में आपको ढूंढ़ रहे हैं। तुम्हारा गगन में उड़कर आना क्या ठीक है? वह ऐसा है कि तुम्हारा आश्रम धर्मों को छोड़कर महा विरक्त होना क्या ठीक है? देवर्षि, पितृ ऋण को अच्छे मन से चुकाकर ऊर्ध्व लोकों में जाओ। आदि समय में वेदों का पठन किया। इसलिए ऋषि ॠण तभी चुक गया। अब सति को ग्रहण करके यज्ञादि करके धीर बनकर देव ऋण को चुकाओ। पुण्यात्मक पुत्रों को पाकर उनको पाल पोसकर बड़ा करके पितृ ऋण को चुकाओ। इस रूप में सारे ॠणों से मुक्त होकर ब्रह्मवेत्ता बनकर उसके बाद यहाँ पर आओ। मेरे इस मंडल को भी पार करके ऊर्ध्व लोकों में पहुँचकर परमपद को प्राप्त करो हे परममौनी!'' मार्तांड के इस रूप में कहने पर सुनकर हंसते हुए शुक ने इस रूप में कहा।

''हे मार्तांड! तुम त्रिमूर्तात्मक होकर, कर्म साक्षी बनकर, जगच्चक्षु बनकर प्रकाशित होनेवाले तुम्हारे चित्त के लिए कोई अनजान अर्थ नहीं है। फिर भी मेरे मन में जो सूझा है उसे तुम्हें बताऊँगा। वह ऐसा है कि

मातृ गर्भ में घुसकर, शरीर को प्राप्त करके, मातृगर्भ से जन्म लेने के दिन से लेकर मृत्योपरांत तक पुरुष-वायु को लेते बुदबुद के रूप में रहनेवाले शरीर में रहता है। फिर जीवन के चारों आश्रम को सत्य के रूप में निभाते देव, ऋषि, पितृ से संबंधित ऋणों को चुकाकर, ज्ञान, वैराग्य का अभ्यास करना चाहिए। यह वेदोक्त, कर्म मर्यादा होने के कारण इनका अचारण करना चाहिए। देह के अनित्य होने के कारण मनुष्य के रूप में जन्म लेने के कारण कर्म करते रहना चाहिए।'' इस रूप में कहनेवाले शुक को देखकर सूर्य ने कहा। ''आदि में विश्व के विकास करने का संकल्प पद्माक्ष के द्वारा करने के कारण वेदोक्त, आश्रम, धर्म, कर्म रति धरती पर प्रचलित हो गए। ऐसे में तुम उनको छोड़कर कैसे उड़ सकते हो।'' आदित्य के इस रूप में कहने पर फिर शुक ने स्नेह से कहा। ''हे सूर्य! सुनो। सर्व वर्णाश्रमाचार धर्मों को, मोक्ष के धर्मों को, हमारे पिता के समझाने पर तत्व विज्ञान आत्मा में उदित हुआ। तभी गुरु को देखकर इस रूप में मैंने कहा। 'निश्चित रूप से प्रथमाश्रम में आत्म विवेक को प्राप्त करने से उसके द्वारा बाद के आश्रम-धर्मों को क्या छोड़ देना उचित है? नहीं छोड़ना है क्या? स्पष्ट रूप से मुझे बताने के लिए मेरी प्रार्थना करने पर, मेरी ओर देखकर स्पष्ट रूप से कहे बिना 'मिथिलेश के पास जाकर पूछो' कहा तो जाकर मैंने जनक से पूछा। जनक ने मुझे देखकर कहा। ''हे मुनिवर! विज्ञान को प्राप्त करने के लिए चतुराश्रमों को पूरा करना चाहिए। तब जन्म जन्मांतर वासना से प्राप्त विज्ञान के उदय होने से, आश्रम, धर्म, कर्म करने से तभी पैदा हुए स्वस्वरूप और परस्वरूपों के अंतर का पता लगने पर मनुष्य वर्णाश्रमतीत हो जाता है। इस रूप में अनुभव करना ही विहित धर्म है।'' इस रूप में बताकर उन्होंने मुझे विदा किया। तबसे घने वैराग्य को प्राप्त करनेवाले मुझे 'गृहस्थ बनो' कहना आश्चर्य दे रहा है। इस रूप में आज्ञा देना क्या उचित है?'' इस

रूप में शुक मुनि के कहने पर सुनकर हँसते हुए सूर्य ने कहा। ''जनक ने ज्ञान, कर्म करते हुए सर्वसमत्व को प्राप्त करके राज्य का सुपालन करते हुए, संतान को प्राप्त करनेवाले तुझे घने वैराग्य को प्राप्त करने के लिए कैसे कह सकते हैं?''

छाया शुकोत्पत्ति

''हरि से ब्रह्म, ब्रह्म से वशिष्ट, वशिष्ट मुनि से शक्ति, शक्ति से पराशर, उस पराशर से व्यास, उस व्यास से तुम पैदा होकर वैराग्य को प्राप्त करके बेकार ही न जाकर एक पुण्यात्म पुत्र को प्राप्त किए बिना, धरती से आये तुमको वहाँ तक कैसे जाने दूँगा।'' इस रूप में सूर्य के कहने पर शुक ने स्वीकारते हुए अपनी निज छाया को एक पुण्य पुरुष के रूप में बनाया। उसे बुद्धि भी प्रदान की। तब पुरुष महात्मा बनकर शुक को तथा सूर्य को प्रणाम करके भक्ति से मुकलित हस्तों के साथ सामने खड़े होने से उसे सूर्य ने देखा। उस पुत्र को देखकर शुक मुनि की योगसिद्धि से आश्चर्यचकित होकर सूर्य ने संतोष का अनुभव किया। तब सूर्य ने उस पुत्र को देखते हुए इस रूप में कहा। ''माया से शुक मुनि की देह-छाया से पुरुष के रूप में पैदा होनेवाले तुम छाया शुक नाम से धरती पर प्रचलित हो जाओगे।'' इस रूप में सूर्य की आज्ञा को सुनकर छाया शुक ने बहुत विनय के साथ उनकी स्तुति की। बाद में शुक को देखकर गौरव के साथ उसने इस रूप में कहा। ''हे जनक! किस कार्य के लिए मुझे जन्म दिया? आज्ञा दीजिए।'' इस रूप में विनय के साथ कहने पर उसकी तरफ देखकर शुक ने कहा। ''हे पुण्यात्मा! अब तुम भूलोक जाकर श्री वेंकटाद्रि के दक्षिण भाग में स्थित सुवर्णमुखी नदी के उत्तर तट पर स्थित सिद्ध स्थल पर महिमा के साथ अपने आश्रम में रहो। उससे अलग श्री गंगा के साथ हमारे पिता वेद व्यास मुनि आकर मेरा

नाम लेने से अति प्रेम के साथ उनका आदर करो। उनकी सेवा करो। उनकी आज्ञा से विवाह कर लो। पुत्र संतान को प्राप्त करके उत्साह से धरती पर हमारी संतति को बढ़ाओ! अब सर्वप्रथम श्री काशी जाकर, वहाँ अचल भक्ति से बादरायण की उपासना कुछ वर्षों तक करो, हे पुत्र! बाद में अपने आश्रम पहुँच जाओ।'' शुक ने ऐसा कहा।

शुक के द्वारा सूर्य तत्व का विवरण देना

छाया शुक को आज्ञा देकर, उसे भेजकर, फिर सूर्य को देखकर शुक ने इस रूप में कहा। ''हे मार्तांड! आपकी कृपा-महिमा से पुत्र का जन्म हो गया। अभी तो मुझे जाने दो।'' कहने पर हँसते हुए सूर्य ने कहा। ''मेरे स्वरूपवाला जीवतत्व क्या है? बताइए।'' इस रूप में पूछा। शुक ने तब कहा। ''हे जगतज्योति स्वरूपा! तुम्हारी चिन्मत्त शक्ति के बारे में मैं कहाँ बता पाऊँगा? जितना कुछ जानता हूँ। बताऊँगा।'' प्रणाम करते हुए बताया। ''हे सूर्य! सुनिए। प्रकाश, सुख-रस स्वरूप नारायण पर ब्रह्म नामक चिन्बिंदु से प्रणव स्वरूपी शब्द पैदा हो गया। उस शब्द से बाहर आकाश में स्पर्श से वायु का जन्म हो गया। उस वायु के गगन संबंध से उष्ण रूपी तेजस का जन्म हो गया। उसमें अग्नि पैदा हो गयी। उस अग्नि का विस्तार होकर प्रकाशित होकर अपने में व्याप्त होने से वह बिंदु रसात्मक सार को महाजल के रूप में स्पर्श किया। तेजो रूप वह परमात्मा स्वयं उस महाजल में विराजित हुए। वही हिरण्मयी तेजस है। कुछ समय के पश्चात नारीकेल वृक्ष से फल निकलने की भांति अनेक कोटि ब्रह्मांडों का सृजन हुआ। उन ब्रह्मांडों में एक वट वृक्ष के बीज अनेक वट वृक्षों के रूप में पैदा होने की तरह मूलकारण हिरण्मय तेजस सूर्य के रूप में पैदा हो गया। स्थावर जंगम से भरे जगत को अपने रसांश से वह पोषण करने लगा। वट बीज, भू, जल संबंध से वृक्षाकृति को प्राप्त करके वृक्ष

में रस रूप धारण करने की तरह हिरण्मय तेजस सप्त द्वीप, सप्त सागर, सप्त कुलाचराधारा रूपी ब्रह्मांड के रूप में परिणत हो गया। वही ब्रह्मांड सूर्य रूप में स्थिर हो गया। वह स्वरूप ही सकल भूतों में रस रूप के जीव तत्व हैं। उस रस में ही तेल-बत्ती से जिस रूप में दीप जलता है, विवेक दीपित होता है। वह विवेक क्या है? कानों से सुनने पर शब्द के रूप में, जिह्वा से ग्रहण करने पर रुचि के रूप में, नाक से लेने पर गंध के रूप में, कर्मेंद्रियों से लेने पर वच, नादान, गमन, विसर्ग, आनंद के रूप में, मनो, बुद्धि, चित्ताहंकार विषय संशय, निश्चय, विचार के रूप में, कतृत्व को बताने वाले चिन्मत्रय स्वरूप है। पर स्वरूप क्या है? पूछने पर समिष्टि रूपवाला पिंडांड, ब्रह्मांड में एक रूप होकर, उस सृष्टि रूपों में मेघ मंडल के अंदर के जल के रूप में बरस कर भूमि के अंदर रहनेवाले वापी, कूप, तटाकों में स्थिर होने की तरह, ईश्वर चैतन्य रूपी मेघ जल जरायुजांड बीज के रूप में तथा स्वेद जल के रूप में चतुर्विध भूतों में बना रहता है।'' शुक के इस रूप में बताने पर भास्कर ने इस रूप में कहा। ''वह हिरण्यतेजस इन अखिल भूतों में कैसे प्रवेश करता है? फिर अपने स्वस्थान पर कैसे पहुँचता है? हे बादरायण कुमार! उस रीति के बारे में बताओ।'' इस रूप में पूछने पर शुक ने कहा। ''कमलजांड को प्रकाशित करनेवाला रमणीय विश्व कारणवाला महित हिरण्मय मंडल अधिक तेजो रसात्मक बनकर, विशुद्ध बनकर, रसांश अमृतांश रूप बनकर, वह कालवश से वायु बनकर, फिर वही मेघ बनकर, चंद्र रसात्मक जल से पूर्ण होकर ठंडा पड़ता है। वर्षा की धाराओं के रूप में वसुधा पर गिरता है। इससे सस्य का विकास होता है। सस्यों में सारतर घन जीव तत्व बनता है। वही धान्य बनकर मनुष्यों के लिए आहार बनता है। इसके अतिरिक्त वही तृण रूप धारण करके पशुओं के लिए आहार बनता है। विविध फलों का रूप धारण करके पक्षिगण और अन्य पशुओं

के लिए अन्न बनता है। वायु रूप धारण करके सभी सर्पों के लिए अन्न बनता है। वह अन्न उन भूतों के जठराग्नि से पाचन होकर दूध में घृत की भांति ऊपर तैरने के समान बिंदु रूप धारण करके पुरुष के अंदर ठहरकर, स्त्री के गर्भ में घुस कर पिंड बनता है। उस पिंड से जरायु संबंध से मातृ धातु संबंध से छः महीनों में अग्नि के प्रकाशित होकर चैतन्य दीपित होता है। तदुपरांत कालांतर में नाल पूरित होकर जन्म लेता है। और वह वर्षा के जल के रूप में वृक्षों में रसात्मक होकर जीव तत्व बनता है। यह युत्पत्ति रीति है। और लय रीति कैसी है? पूछने पर वात, पैत्य, श्लेष्मादि रोगों से भूतों का शिकार होने पर गड्ढों में भरे जल को सूर्य किरणों के सुखाने की भांति काल स्वरूप वाले सूर्य सर्वभूतों के अंदर के जीव तत्व को सूंघ लेता है। तब उसका स्वरूप सूर्य किरणों से मिलित होकर, वायुमंडल में लीन होकर आकाश मार्ग से चंद्र मंडल में घुसकर, चंद्र के सूर्य के साथ ऐकीकरण होने पर सूर्य में पहुँच जाता है। इस रूप में सद्गुरु ने उपदेश दिया है।'' कहने पर सुनकर हँसते हुए सर हिलाते हुए भास्कर ने इस रूप में कहा। ''देव और राक्षस मुखों की सुस्थिति और लय के बारे में क्रम से बताने के लिए कहने पर उस व्यास सुत ने सूर्य की तरफ देखकर संतोष के साथ फिर से इस रूप में कहा। ''हे देव! वट बीज के लिए और व्रीही बीज के लिए भूसंबंध एक ही होने पर भी व्रीही बीज का परिणाम छः महीने, वट बीज का परिणाम सहस्त्र वर्षों में होता है। उसी प्रकार ब्रह्मादि देवताओं के शरीर के लिए तथा मनुष्य के शरीर के लिए काल भेद होता है। उस हिरण्मय तेज वृत्तांश अधिक होने से निलावृत खंड आदि देशों में देव जातियों की उत्पत्ति होती है। वे दीर्घायु होते हैं। सामान्य देव जातियों के लिए सुधर्मावधि, इंद्रादि लोक पालकों के लिए सुस्वंतरावधि, ब्रह्मादि के लिए ब्रह्मांड प्रलयावधि होती

है। सबके लिए आधारभूत होने वाले सच्चिदानंद नित्य परिपूर्ण होकर जन्मातीत बनकर नारायण प्रकाशित होते हैं। तत्प्रकाश आप ही हैं, ऐसा निश्चित है। और सकल वेदांत सार निश्चितार्थानुभव क्रम को भी सुनाने पर'' सुन कर सूर्य ने शुक की तरफ देखकर इस रूप में कहा। ''हे महा मुनींद्र! आपके मनोशक्ति और योगसिद्धि को जानने के लिए बहुत आक्षेप करते हुए प्रश्न किए। सभी प्रश्नों के लिए अपने अनुभवों से आपने उत्तर दिए। इससे मेरा चित्त रंजित हो गया। हे महितात्मा! आप मेरे मंडल में घुसकर उस पार होकर ऊर्ध्व लोकों को पार करके परमपद को प्राप्त कर लीजिए।'' कहते सूर्य ने शुक की बहुत स्तुति की। तब शुक मुनि अतुलित आनंद का अनुभव करते हुए उठकर दिनकर के मंडल़ को भेदते हुए आगे बढ़े। तदुपरांत शुक ने सूर्य मंडल, ऊर्ध्व लोकों का अतिक्रमण करके निर्वाण पद को प्राप्त किया। तब छाया शुक काशी पहुँचकर वेदव्यास की विविध सेवाएँ करने लगा। कुछ दशकों तक वहीं रहकर फिर कृष्ण द्वैपायन की अनुमति से शुकाश्रम पहुँच गये। बाद में एक विप्र कन्या के साथ विवाह करके संतान को प्राप्त किया। ऐसा देवदर्शन के बताने पर सुनकर देवल ने इस रूप में कहा।

वीर लक्ष्मी का वृत्तांत

''श्री रमादेवी पूर्व शरीर कलित होकर कपिलाश्रम में तप करते रहने की बात आपने कही। कृपया फिर से इस धरती पर उनके पधारने की कथा के बारे में हमें बताइए।'' इस रूप में देवल मुनि के पूछने पर उस दिव्य योगींद्र ने इस रूप में कहा। ''वह देवी सुशीला बनकर सदा हृदय में चक्री का स्मरण करते हुए अपने को समर्पित किया। मन को उस स्वामी के चरणारविंद पर केंद्रित करके तप करती रही। अपनी देह की चिंता को छोड़कर पूरे जगत को विष्णु के रूप में मानते कई वर्षों तक

श्री वनितामणि ने तप किया। तब ये वेंकटगिरि निलयवासी श्री वेंकटेश्वर ने उस तप से संतुष्ट होकर अपने मन में इस रूप में सोचा। ''अपने को लेकर पहले मैंने तप किया समझ कर, मेरे को लेकर उस आदि लक्ष्मी ने पाताल लोक में ही तप किया है। इस रूप में मुझे प्राप्त किया है। उसके धरती पर आने के उपाय के बारे में मैं सोचूँगा।'' कहते वीरलक्ष्मी के हृदय में प्रकाशित होनेवाले अपने रूप को वहाँ से तिरोधान करवा दिया। तब लक्ष्मी की ध्यान निष्ठा भंग हो गयी। उसे आश्चर्य भी हुआ। नेत्रों को खोलकर देखा तो वहाँ हरि दिखाई नहीं पड़े। तब वह चिंतित हो गयी। तब तपोनिष्ठा से उठकर लक्ष्मी कपिल मुनि के पास गयी। उस लक्ष्मी को देखकर कपिल मुनि ने बड़ी करुणा से इस रूप में कहा। ''हे तामर साक्षी! चपलत्व रहित तुम्हारा तप अब सफल हो गया है। अब तुम यहाँ न रहकर प्रकटित शेषाद्रि पहाड़ के नीचे पद्म सरोवर के पास पहुँच जाओ। तुमको वहाँ देखकर शुक के सुत को आनंद होगा।

वीर लक्ष्मी का पाताल से निकल कर महावैभव के साथ शुकाश्रम में प्रवेश करना

महान पांचरात्र प्रकार से तुम्हारी पूजा की जाएगी। वहीं तुम चले जाओ। कहकर कपिल मुनि के भेजने पर पाताल में रहनेवाले शेष ने लक्ष्मी को देखकर नमस्कार किया। बहुत रत्न विलसित आभरणों को, चंदन, फूलों की मालाओं को देकर रमणीय दिव्य रथ के समान सहस्रार हेमाब्ज में प्रकाशित कर्णिका पीठ पर उन्हें रखकर, गज चतुष्टय से विदा करने पर वह आदि लक्ष्मी संतोष के साथ मध्याह्न समय में धरणी को चीरते आनंद से पद्म सरोवर पर पहुँच गयी। एक सौ आठ सेवक जनों ने महिमा से सेवा करने पर महान शेष पर्वत के दक्षिण में रहनेवाली स्वर्णमुखी के उत्तर भाग में घन तरंगयुत, गंगोपमान से भरे, नलिन,

कैरव, कोक युग्म, भासुर मकरंद पान करके नशे में दुत मिलिंदों के विहार करनेवाले पावन प्रदेश, मत्स्य, कच्चप, भेक, मकर, कुलीरक, व्रात निवास, शीतलांबु, परिपूर्ण मलघा सोपानावृत, सुस्वादुगंधाङ्य इस जगत में, रमणीय पद्म सरोवर के मध्य में विराजमान होने के लिए वीर लक्ष्मी चली आयी। तब देवताओं ने उस लक्ष्मी पर पारिजात पुष्पों की वर्षा करवायी। फिर उत्साह से जय-जयकार का घोष किया। सबकी प्रशंसा पाते जलधि कन्या की दिव्य शरीर की कांति इस धरती के चारों दिशाओं में प्रसरित हो गयी। वह कांति पूरे आकाश में फैल जाने पर देख कर शेषाचल के अधिपति श्री वेंकटेश्वर मोद के साथ खगपति पर आरूढ़ होकर शीघ्र ही वहाँ पहुँच गए।

तब ब्रह्म, शिवादि देवतागण भी वहाँ पर पहुँच गए। अपने वाद्यों के साथ मंगल घोष किया। वीर लक्ष्मी को देखकर उनका उत्साह बढ़ गया। उमंग से नेत्र पर्व के रूप में वीर लक्ष्मी को देखते इस रूप में कहा। ''कार्तिक शुद्ध पंचमी, उत्तराषाढ़ नक्षत्र में भृगुवार के दिन व्यूह लक्ष्मी भी हरि को प्रत्यक्ष हुई थी। उसी प्रकार के विमल दिन में ही वीर लक्ष्मी भी हरि पर प्रसन्न हुई। सबके लिए यह महादिन है। शुभ दिन है।'' इस रूप में ब्रह्मादि ने सोचते शेषाचलपति को देखकर इस रूप में कहा। ''हे देव! इसी पद्म तीर्थ में व्यूह लक्ष्मी और वीर लक्ष्मी आनंद से प्रकट हुई है। इसलिए धरती पर यह सरोवर अत्यंत पुण्य और प्रमुख माना जाएगा। इसका नाम पद्मसरोवर होगा। इसलिए इस पुण्य तीर्थ में ऐसे शुभ दिनों में पवित्र स्नान करनेवाले पापों से मुक्त होकर भाग्य को प्राप्त करेंगे।'' इस रूप में निर्णय करके उन सभी ने उस तीर्थ में पुण्य स्नान किया। उस पद्मतीर्थ के आग्नेय भाग में विश्वकर्म के द्वारा एक दिव्य मंदिर का निर्माण करवाया। उस वीर लक्ष्मी से प्रार्थना करके उन्हें लिवा लाकर

सकल उत्सवों के साथ उन्हें उस मंदिर में स्थापित किया। फिर छाया शुक के द्वारा पांचरात्र आगम के अनुसार सर्वोपचार करवाया। तब चक्री ने अपने कंठ में रहनेवाली हार को वीर लक्ष्मी को पहनाया। इसके साथ ही शुकाश्रम का एक अग्रहार तैयार करके छाया शुक को समर्पित किया। तदुपरांत हरि ने ब्रह्मादि को भोज दिया। वस्त्र, तांबूल आदि से सत्कार किया। बाद में उन्हें आज्ञा देकर विदा किया। तदुपरांत वीर लक्ष्मी से हरि ने इस रूप में कहा।

वीरलक्ष्मी और वेंकटेश्वर के संभाषण

''हे क्षीर सागर कन्या! तुम्हारे पूर्व शरीर को मैंने देखा। नेत्र पर्व हो गया। तुम व्यूह लक्ष्मी के साथ मिलकर शेषाचल पर रह सकती हो। तुम अब वहाँ पर आओ।'' कहनेवाले चक्री को नमस्कार करके भक्ति से इस रूप में वीर लक्ष्मी ने कहा। ''हे मेरे प्राण नायक! यह मेरे लिए आपके द्वारा तप करनेवाला महास्थल है। इसलिए अत्यंत पवित्र और श्रीकर इस शुक क्षेत्र में ही मैं रहूँगी। मेरे हृदय में आप बसकर, व्यूह लक्ष्मी को अपने हृदय पर बसा लीजिए। मुझे यहीं रहने देकर मेरी रक्षा करते रहिए। मुझे यही सम्मत है। आपको संदेह नहीं करना चाहिए। आपके प्रति करुणा ही इस शरीर में रहेगी। हे पद्मदलाक्ष! आप अपने कनकाचल लौट जाइए। मैं नहीं आयी, ऐसी कमी को मन में मत रखिए। मैं ही व्यूह लक्ष्मी बनकर आकर आपके हृदय पर बस गयी। फिर आपको किसी चीज की कमी है? करुणा से पद्मावती के साथ सुखी रहिए। हे शेषशयना! शेषाचल पर भक्तों का स्वागत करते उन्हें महा वरदान देते रहिए।

सुरचिर कार्तिक पंचमी के आगमन पर आपकी एक पुष्प हार को और एक प्रिय वस्त्र को प्रेम से मुझे भेजते रहिए। मैं यहीं पर महोत्सवों

को स्वीकार करके, मेरी आत्मा में ही सदा रहनेवाले आपको ही सब समर्पित करती रहूँगी। निश्चल शांति से आपको देखते हुए मैं यहीं पर रहूँगी। आप शेषाद्रि पर ही रहिए।'' इस रूप में कहते वीर लक्ष्मी ने श्रीवेंकटेश्वर के पाद-पद्मों को प्रणाम किया। तब चक्री वीर लक्ष्मी को छोड़कर शेषाद्रि पहुँचकर व्यूह लक्ष्मी के साथ आनंद से रहने लगे। तब शुकाग्रहार में शुक के द्वारा अति भक्ति से महोत्सवों को क्रम से मनाने पर वीरलक्ष्मी असीमित संपदाओं को सबको देते हुए उनकी पूजाओं को स्वीकार करती रही। साथ ही वहीं रहते हुए वीर लक्ष्मी ने सुखस्थिति को प्राप्त किया।

बलराम कृष्ण के संवाद

इसके पूर्व ही आदि शुक के वहाँ पर पहुँचने के बाद भू प्रसिद्ध बलराम और कृष्ण की भक्ति से पूजा किया करते थे। उनके चले जाने के बाद छाया शुक नामक विप्र पांचरात्र आगम के अनुसार रमामणि की पूजा करते रहे। तब 'परायी स्त्री लक्ष्मी हरि के पास न रहकर यहाँ पर पहुँच गयी। मेरा यहाँ पर रहना अब नीतियुक्त नहीं है। अभी उठकर सीधे तीर्थ यात्राएँ करने मैं निकल जाऊँगा।' सोचते उठ खड़े हो गए बलराम। तब कृष्ण ने उसे पकड़ कर बिठाया। तब कृष्ण को देखकर कहा। ''इस रूप में मुझे बिठाना उचित नहीं है। परसति यहाँ पर बस गयी है। इसलिए मैं वेंकटगिरि पर जाकर वहाँ पर एक तीर्थ के आश्रय में रहूँगा।' कहने से 'मुझे अकेले छोड़कर हे भाई! आपको वहाँ क्यों जाना है? यहीं पर रहिए।'' यह सुनकर बलराम ने कहा। ''तुम भी मेरे साथ चलो।'' कहने पर कृष्ण ने कहा। ''रमादेवी को यहाँ पर अकेली छोड़कर मेरा वहाँ पर आना क्या उचित है?'' कृष्ण के इस रूप में कहने पर हलधर ने फिर से इस रूप में कहा। ''करवीरपुर जाकर वहाँ पर जब यह महालक्ष्मी

अकेली रहने पर क्या आप साथ में थे? बताइए निर्मलात्मा!'' इस रूप में हलपाणी के कहने पर तब हँसते हुए कृष्ण ने कहा। ''सिरि के पास में होने पर इस रूप में सोचना क्यों? अच्छे ढंग से अब पास में आ गयी है। अब उसे अकेली छोड़कर मैं चला जाऊँगा तो लोक जन क्या नहीं हँसेंगे? क्या महेंद्रगिरीश को यह सम्मत होगा? यहाँ हमें कौन -सा भय है? यहीं रमा ललामा के वैभव को देखते रहेंगे।'' श्रीकृष्ण के इस रूप में कहने पर बलभद्र ने उन बातों को सुनकर भयभीत होते हुए श्रीकृष्ण की ओर देखकर कहा। ''भृगु के द्वारा हुई घटना में भृगु को पर पुरुष समझ कर हरि को छोड़कर करवीरपुर जाकर, फिर वहाँ से पाताल जाकर, अपने पति से ही तप करानेवाली, स्वयं भी तप करनेवाली लक्ष्मी इस प्रदेश में पहुँचकर यहाँ पर बसी है। वीर लक्ष्मी के नाम से प्रसिद्ध होकर हरि की तरह चतुर्भुजी होकर महास्फुरण देनेवाली बनी है। इसलिए यहाँ रहने से मैं डरता हूँ।'' इस रूप में कहने पर हँसते हुए अपने भाई बलराम की ओर देखते हुए कृष्ण ने कहा। ''हे भाई! श्री तरुणी की कमियों के बारे में आप क्यों सोचते हैं? वैकुंठपुर में वर मृदु शय्याकृति में आपके रहते समय हरि के साथ आनंद के साथ रहनेवाली लक्ष्मी क्या आपको पराया समझेगी? लक्ष्मी के सीता देवी बनने पर आप लक्ष्मण बनकर सदा उनके साथ विचरण करते रहे, वे तुमको पराया क्यों समझेंगी?'' इस रूप में कहने पर हँसकर बलराम ने इस रूप में कहा। ''उस समय सीता ने जो कहा अब भी मैं भूल नहीं पाता हूँ। हे नंद पुत्र! सिरि के रजोगुण के बारे में सोचता हूँ तो मुझे भय होता है।'' बलराम के इस रूप में कहने पर कृष्ण ने कहा। ''हे भाई! विश्रवसु के पुत्र का संहार कराने के लिए उस रूप में सीता ने कहा है। उन बातों को भूले बिना अब उनकी याद करके लक्ष्मी की गलतियों को गिनते हुए,

मन से प्रेम को निकाल कर कठोर रीति से धरती के इस आश्रम को हे महान! क्यों छोड़कर जाना है? सिरि पर इस प्रकार का दोषारोपण न करके शांति से रहिए। इस शुकाश्रम को छोड़कर जाना उचित नहीं है।'' इस रूप में विवेक के साथ अपने भाई से एकांत में कृष्ण ने कहा।

तब छाया शुक अपने पिता के द्वारा पूजित राम, कृष्णों के साथ-साथ वीर लक्ष्मी की पूजा भी करने लगा था। तब कन्या मास में पहाड़ पर ब्रह्मोत्सवों का आयोजन हुआ। छाया शुक वहाँ पर जाकर हरि की आज्ञा लेकर वीर लक्ष्मी के एक-सौ आठ सेवकों को उस उत्सव में भाग लेने छोड़ दिया। फिर शुकपुर पहुँच कर यथा प्रकार से राम, कृष्ण और वीर लक्ष्मी की पूजा करने लगा। यहाँ पर हरि के द्वारा नियुक्त सेवक वैखानस अगम के अनुसार पूजा करते रहे।'' इस रूप में देव दर्शन ने देवल को बताया। तब सूत को देखते हुए शौनकादि मुनियों ने कहा।

श्रीनिवास को ब्रह्मादि के द्वारा समर्पित कालक्रम विधियाँ

''हे सूत! श्री श्रीनिवास की शेषाद्रि पर किस-किसने पूर्व में अर्चनाएँ की हैं? उनके बारे में बताइए।'' इस रूप में शौनकादियों के पूछने पर सुनकर सूत ने कहा। ''हे मुनिनाथ! आपने अतिशय प्रश्न मुझ से किया। बताना संभव नहीं होगा। अब व्यास गुरु ही मेरी जिह्वा पर आसीन होकर दया से जिस रूप में कहेंगे, मैं उस रूप में बताऊँगा।'' कहते हुए व्यास का स्मरण करते हुए संतोष के साथ अचल चित्त के साथ शौनकादि मुनियों की ओर देखकर सूत ने कहा। ''वेंकटाचल पर ब्रह्म, रुद्र आदि प्रमुखों को हरि ने स्वयं जब साक्षात्कार हुए, ब्रह्म ने वैखानस सूत्र क्रम से अर्चना की थी। तब कन्या मास में रथोत्सव करवाया था। उनके बाद विखानस ने अर्चना की थी। उस मुनि की आज्ञा से मरीची

ने अर्चना की थी। उसके बाद अत्री ने पूजा की थी। बाद में कश्यप ने अर्चना की थी। बाद में भृगु ने पूजा की थी। बाद में पुल्लमहा मुनींद्र ने अर्चना की थी। उनके शिष्य यक्षों में स्वयंभू वाख्य मनु के समय में संधि वर्षों को मिलाकर तीस करोड़ पचास लाख, चार लाख अड़तालीस हजार वर्षों में ब्रह्म के द्वारा किए जाने वाले विश्व-सृष्टि के लिए करने का ध्यान काल एक करोड़ सत्तर लाख होंगे। वे साठ और चार दशकों को छोड़कर बाकी की गिनती कर सकते हैं। कुल मिलाकर उनतीस करोड़ तेरह लाखों के साथ ऊपर बताये गए चौरासी हजार को मिलाकर गिनती करके बांटने से विशेष संख्या मिलेगी। इतने तीस करोड़ पचास, चार लाख उससे अलग अड़तालीस हजार वर्षों के मिलाने से उसमें बहुधान्य वर्ष आदि में होगा।

अढसठ चतुर्युगों के लिए एक ईश्वर नामाब्ध होगा। चतुर्युग एक एक के लिए तैंतालीस लाख बीस हजार महा युग होंगे। पूर्व में बताने की तरह अड़तालीस वर्ष, उनतीस करोड़, सड़तीस लाख साठ हजार वैखानस सूत्र क्रम से विखानस ब्रह्म का शिष्य पुल्ल महामुनि के शिष्य यक्षों ने अर्चना की है। इस रूप में बहुधान्य नामक वर्ष के आरंभ से वैखानसगण आगमोक्त रीति से विखानस ब्रह्म की संतति के लोग एक करोड़ छियालीस लाख पचास और आठ हजार वर्ष तक चिर भक्त बनकर पूजाएँ की हैं। उसके बाद स्वायंभुव मनु काल के इतने वर्ष बीत गए। इस क्रम से अब्ध संख्या के लिए स्वारोचिष, नुत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष नामक पांच मनुओं का काल निर्णय करके, संधि अब्धों के साथ धरती पर हिसाब करना चाहिए।

वैवस्वताख्य मन्वंतर के बाद कुल एक सौ चौवन करोड़ बाईस लाख इकतालीस हजार वर्ष बीत गए। इस रूप में इस धरती पर उस वेंकटाचल

पति को आनंद के साथ महान बनकर वैखानसगण आगम युक्त सेवा-अर्चनादि करते रहे हैं। मेरा यह हिसाब सारे मनुओं के लिए लागू होता है। वे भूचक्र में क्रम को भंग किए बिना अपने-अपने काल में शासन करते रहे।'' सूत ने फिर से कहा।

जगत में कृत युग के चार हजार दिव्य वर्ष हैं। उसके अतिरिक्त संधिकाल उसका आठ सौ वर्ष है। त्रेता युग के तीन हजार वर्ष हैं। उसके अतिरिक्त उसका संधिकाल छः सौ वर्ष है। द्वापर युग के दो हजार दिव्य वर्ष हैं। उसका संधिकाल चार सौ वर्ष है। कलियुग के एक हजार दिव्य वर्ष हैं। उसका संधिकाल दो सौ वर्ष है। धरती पर इस रूप में चारों युगों का समय इस रीति में चलता रहेगा।

पृथ्वी पर इस रूप में चार युग बार-बार सौ हजार बार होने से वह ब्रह्म के लिए एक दिन जैसा होता है। रात के लिए भी उतना समय होता है। इस रूप में एक इशारा देकर सूत ने फिर से इस रूप में कहा। ''सुनिए! इस प्रकार चतुर्युग के सहस्र बार बीतने तक ब्रह्म सृष्टि करते रहते हैं। उसके बीत जाने के बाद ब्रह्म सो जाते हैं। तब सृष्टि का लय होता है। फिर ब्रह्म के जागने पर सृष्टि का आंरभ हो जाता है। ऐसे ब्रह्म के एक दिन में चतुर्दश मनु पृथ्वी पर शासन करते रहते हैं। ऐसा मनुकाल कैसा होता है? पूछने पर स्वयंभुवु आदि मनुओं को प्रत्येक के लिए इकत्तर सौ दिव्य युग होते हैं। इसे एक मनुकाल भी कहा जाता है। एक-एक मनुकाल में एक-एक देवेंद्र, देवतागण, सप्त ऋुषिगण, राजाओं, हरि अंश के रूप में पैदा होते हैं। उनके द्वारा शासन होता है। नारायण देव, तिर्य, मनुष्य के रूप धारण करके, सव कुछ अपना मानकर उनकी रक्षा करते रहते हैं। वे वेंकटेश्वर तीन युगों तक मुनि, यक्षादि के द्वारा

पूजित होते हैं। प्रत्येक कलियुग में मनुष्यों से पूजाओं को स्वीकार करके भक्तों की रक्षा करते रहते हैं।'' इस रूप में बताकर सूत ने फिर से कहा।

अष्टादश पुराणों की प्रशंसा

''हे मुनिवर! आप ज्ञानी और सर्वज्ञ होते हुए भी मुझसे पूछने पर भक्ति से और व्यास भट्टारक की दया से विस्तृत रूप में बताने की चेष्टा करूँगा। दस हजार संख्या के पुराणों में ब्रह्म पुराण एक है। उसी प्रकार द्वादश सहस्र पुराणों में ब्रह्मांड पुराण एक है। ब्रह्म वैवर्तक में इनकी संख्या पांच सौ है। विष्णु पुराण के चौबीस हजार संख्या ठहरती है। वामन पुराण के दश सहस्र संख्या ठहरती है। पद्मपुराण के पचपन हजार संख्या ठहरती है। भागवत पुराण के दस हजार संख्या ठहरती है। मत्स्य पुराण के बारह हजार संख्या ठहरती है। कूर्म पुराण के सत्रह हजार संख्या ठहरती है। वराह पुराण के चौबीस हजार संख्या ठहरती है। गरुड पुराण के इक्कीस हजार संख्या ठहरती है। नारद पुराण के पंच विंशति सहस्र संख्या ठहरती है। गुरतर लिंग पुराण के ग्यारह हजार संख्या ठहरती है। शिव पुराण के बाईस हजार संख्या ठहरती है। स्कांद पुराण की इक्यावन हजार संख्या है। आग्नेय पुराण में विंशति सहस्र संख्या होती है। मार्कंडेय पुराण में बीस हजार की संख्या है। भविष्यत पुराण के बीस हजार संख्या का सार है। इस रूप में कुल अष्टादश पुराणों का उल्लेख आपसे किया है। इससे अलग श्रीवराह पुराण, भविष्योत्तर पुराण और रम्यतर पद्मपुराण के अचंभे में डालनेवाले और उद्धीप्त होनेवाले वेंकटाद्रिपति चरित के कुछ भागों को आपको बताया। मोक्ष पाने की इच्छा से मैंने इनके बारे में आपको बताया है।'' सूत के इस रूप में कहने पर सुनकर विश्वास के साथ और आनंद से शौनकादि मुनियों ने इस रूप में कहा।

''सुरचिर भक्ति युक्तियाँ, सुनृत वाक्य, आत्मनिष्ठा, परमविवेक शील, पावन मोक्ष विचार धर्म, करुणा, शांत आदि सद्गुणों से भरा आप के सुदृढ हृदय के बारे में जानकर हम धन्य बन गए। तुम ने उस चक्री के गुणों का बखान करते समय प्राप्त निर्वाण बोध स्थिति के भाव को स्वयं समझ कर हमें बहुत अच्छे ढंग से सुनाया है। आप ने बहुत ही योग्य, एक बार भी हड़बड़ाहट के बिना नाना पुराणों के अर्थ को बहुत विशद के साथ बताया है। साथ ही हमारे संदेहों की निवृत्ति भी की है। इसलिए आप धन्य हैं। हरि ही आपके हृदय में ही बसकर बहु दिव्य चतुरोक्तियाँ प्रदान करके सत्कृपा करने से बताने में आपके लिए कोई असाध्य नहीं रहा है।'' इस रूप में कहते सारे मुनिगण ने आदर के साथ उस विमलात्मा सूत की सुगुणावली का कीर्तन किया। उनकी बातों को सुनकर सूत ने इस रूप में कहा। ''पद्मदलाक्ष, बादरायण, शुक योगी और आप जैसे आर्य आप सबकी विलसित सत्करुणा से उत्साह से मुझ पर विश्वास रखने पर मुझे जो कुछ सूझा आपको मैंने बताया।'' विनम्र होकर सूत ने इस रूप में कहा। मुनियों को इस रूप में मनाने पर उनकी बातें सुन कर उनके विनयोत्कर्ष को देखते हुए संतोष का अनुभव करते हुए शौनकादि ने इस रूप में कहा। ''हे महान! एक और बड़े रहस्य के बारे में पूछेंगे?''

पुण्य जीवों को प्राप्त होनेवाले सद्गति क्रम

''सुनो। धरती पर अनेक जन्म लेनेवाले जीव मोक्ष कामुक बनकर शरीरों को त्याग करके कहाँ-कहाँ फिर से जन्म लेते हैं? हे सूत! उस विधान के बारे में हमें बताइए।'' पूछने पर सुनकर सूत ने तब अपने गुरु का मन में स्मरण करके, अचल होकर नेत्रों को बंद करके विष्णु का

ध्यान करके विमल स्थिति को प्राप्त करके इस रूप में कहा। ''हे मुनिवर्य! विविध श्रुति और स्मृतियों को सुननेवाले आपको सब कुछ मालूम है। मुझ पर सत्कृपा रखते हुए अति रहस्य प्रश्न के पूछने पर मैं कैसे तिरस्कार करूँगा? अवश्य बताऊँगा। भूल गलती को छोड़कर स्नेह से सुनिए। पापकर्म करनेवाले बहु नरकों में जाते हैं। प्रज्ञा के अभाव में बार-बार जन्म लेते रहते हैं। पुण्य कर्म करनेवाले अपने पुण्य फल के अनुसार पुण्य को अनुभव करके फिर भूमि पर शीघ्र ही जन्म लेते रहते हैं। कामादि मुख्य शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके गुरु के अनुग्रह को प्राप्त करनेवाले पुण्यात्मा फिर से इस धरती पर पैदा नहीं होते हैं। ऐसे लोग कौन हैं? पूछने पर आचार्य भक्तजन, परम विरक्त लोग, पटु विवेकवान, शांत चित्तवाले, गर्व विमुक्त लोग, हेय गुणों को उड़ा देनेवाले, गुरुतर कल्याण गुणों को प्राप्त करनेवाले, अचंचल चित्तवाले, विज्ञान की सिद्धि प्राप्त करके, न बढ़े न घटे, एकांतनिष्ठ होकर, नारायण ध्यान पूरित होकर, अहं को भूल कर, अखिल लोकों को पार करके, मंडलों को पार करके, महदादि आवरणों को क्रम से पार करके, मूल प्रधान को भी पार करके, सहस्रशीर्ष विराट्पुरुष का भी अतिक्रमण करके अमृत वल्ली के रूप में बहनेवाली विरजा नदी में डूबकर, लिंग देहों को छोड़कर, अप्राकृत दिव्य देहों को प्राप्त करके, शत सहस्रादि व्यावरणावृत होकर, अनेक कोटि सूर्य-चंद्र प्रकाश से दीपित परमपद में प्रकाशित होनेवाले नारायण परब्रह्म की सान्निध्य को प्राप्त करते हैं। शिव को ही परमतत्व समझकर पंचाक्षरी जपसिद्ध बननेवाले शिव सान्निध्य को प्राप्त करते हैं। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का अभ्यास करते हुए आध्यात्म विद्यानुभव करनेवाले आत्मवेत्ता स्वरूप विलक्षणत्व के अभाव में निराकार प्रकाशवान कैवल्य पद को प्राप्त करते हैं। विज्ञान ही ब्रह्म है, तदनुभाव

सिद्धि प्राप्त करनेवाले ज्ञानवेत्ता अमृत समुद्र विरजा को प्राप्त करते हैं। सहस्र शीर्ष विराट्पुरुष ही परमब्रह्म के रूप में मानते हुए उनके ध्यान करनेवाले उस विराट्पुरुष के शीर्षोपरी प्रदेश को पहुँचते हैं। ये सब पुनरावृत्ति रहित होते हैं। और उस विराट्पुरुष के भ्रूमध्याधः प्रदेश में त्रिगुण मिश्रण के रूप में रहनेवाली मूल प्रकृति को परमतत्व के रूप में मानकर उसका अनुष्ठान करनेवाले मंत्र सिद्धि प्राप्त करनेवाले दुर्गा धाम को प्राप्त करते हैं। उस प्रकृति जनित महदादि सप्त आवरणों को ही परम ब्रह्म के रूप में माननेवाले उन आवरणों को ही प्राप्त करते हैं। वासुदेव द्वादशाक्षरी, नारायणाष्टाक्षरी, नारसिंहा, गोपालादि महामंत्र सिद्धियों को, सदा नारायण का स्मरण करनेवाले, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध व्यूहों को प्राप्त करते हैं। विष्णु अकेले को ही महाद्भुत मानते हुए बाकी अनेक भूत पृथाभूतों के रूप में, विष्णु को ही सात्विक ब्रह्म के रूप में निश्चय करके, विष्णु षड़ाक्षरी महामंत्र की सिद्धि पानेवाले विष्णु परायण श्री वैकुंठ को प्राप्त करते हैं। ये सब वट पत्र शयन के नाभिकमल में प्रलय के समय घुसकर आते-जाते रहते हैं। ब्रह्म को ही परम तत्व के रूप में मानते हुए ब्रह्म गायत्री मंत्र से सिद्ध बननेवाले ब्रह्म लोक को, तप से सिद्ध बननेवाले तपोलोक को, शम, दमादि सुद्गुण संपन्न जनलोक को प्राप्त करते हैं। प्रलय का जल जब जन लोक में पहुँचने पर जनलोक वासी महाल्लोक में पहुँचते हैं। और यज्ञ आदि सत्कर्म सिद्ध सुवर्लोक को प्राप्त करते हैं। सूर्य मंत्रोपासना से सिद्ध बनने वाले सूर्य लोक को, चंद्रोपासना से सिद्ध बनने वाले चंद्र लोक को प्राप्त करते हैं। उनके पुण्यों के नष्ट होने से फिर भूलोक में पैदा होते हैं। अत्यधिक पाप कर्म करनेवाले भूत, प्रेत, पिशाच, ग्रह मंडलों में पहुँचकर कल्पांतर में पापों का नाश होने से फिर शीघ्र ही धरती पर पैदा होते हैं। फिर जन्महेतु कर्मों

को करते रहते हैं।'' सूत के इस रूप में कहने पर शौनकादि ने कहा। ''कर्म कितने प्रकार के हैं? वे कर्म जीवों को कौन से शरीर देते हैं? पुण्यातिशय, पुण्य मध्य, पुण्य सामान्य, फिर भूरि पाप, मध्य पाप, सामान्य पाप नरों को कैसे फल देते हैं? मिश्रकर्माधिक्य, मिश्रमध्यम, मिश्र सामान्य जनों को कौन-सी गतियाँ प्राप्त होती हैं? काम्य कर्म, गतकाल कर्म जनों को किस प्रकार के फल देते हैं?'' शौनकादि के इन प्रश्नों को सुनकर मुनिवरों की ओर देखकर सूत ने इस रूप में कहा। ''हे महात्मा! सुनिए। ऐसे कर्मों से ही जीवों को जन्म प्राप्त होते रहते हैं। ऐसे कर्म कितने प्रकार के हैं? सवाल करने पर पुण्य, पाप और मिश्र नामक तीन प्रकार के कर्म होते हैं। उन कर्मों का फल कैसे होता है? कहने से पुण्य कर्म करनेवाले देवादि शरीरों को, पाप कर्म करनेवाले तिर्यग्जाति शरीरों को, पुण्य-पाप मिश्र कर्म करनेवालों को मनुष्यादि शरीरों को प्राप्त करते हैं। और पुण्यातिशय करनेवाले हिरण्यगर्भ रूप में, पुण्य मध्य कर्म करनेवाले इंद्रादि शरीरों को, सामान्य पुण्य करनेवाले यक्ष, रक्षः प्रमुख तामस देहों को प्राप्त करते हैं। और उत्कृष्ट पाप कर्म करनेवाले जनतापकार कंटक, वृश्चिक आदि क्रूर पशु बनते हैं। पाप मध्य कर्म करनेवाले कदली, नारीकेल आदि वृक्ष बनते हैं। सामान्य पाप कर्म करनेवाले गो, गजादि पशु बनते हैं। और सामान्य मिश्रकर्म करनेवाले चांडाल आदि नीच जातियों में पैदा होते हैं। मिश्रम मध्य कर्म करनेवाले वर्णाश्रम, धर्मार्थ काम्य कर्मी के रूप में पैदा होते हैं। अत्युष्कर्ष पुण्य पाप मिश्र कर्म करनेवाले निष्काम सत्कर्म करनेवालों के रूप में पैदा होकर ईश्वरार्पित पुण्य कर्मों का आचरण करके, इससे ईमानदार बनकर, इससे साधना चतुष्ट्य संपत्ति को प्राप्त करके, इससे सद्गुरु भक्ति प्राप्त करके, उनकी चतुर्विध सेवाएँ करके, उन्हें संतुष्ट करके, उनकी करुणा के पात्र बनकर वेदांत, सिद्धांत रहस्य उपदेशों को प्राप्त

करके, श्रवण, मनन, निदि ध्यान पूर्व से संपूर्ण ज्ञान को प्राप्त करके, अज्ञान कारणावरण विक्षेप शक्तियों को जीतकर, शब्दानु विद्ध, दृश्यानुविद्ध, सविकल्प समाधियों का अभ्यास करके, ज्ञान, ज्ञातृ, विजय नामक त्रिपुटियों को पार करके सच्चिदानंद नित्य परिपूर्ण ब्रह्म को पाकर जीवन्मुक्त बनते हैं। काम्य, कर्माचरण करनेवाले सुख, दुख के लिए कारण भूत स्वर्ग, नरकों को प्राप्त करके फिर बार-बार जनते और मरते रहते हैं।'' इस रूप में कहने पर सुन कर शौनकादि ने कहा।

वटपत्र शयन का वर्णन

''महोग्र प्रलय के समय में जब पूरा विश्व जल में डूब जाने पर सागर में तैरनेवाले वट-पत्र पर वे हरि कैसे शयन करते हैं? हमें बताइए।'' पूछने पर सुनकर सूत ने इस रूप में कहा। ''सागर की तरंगों पर अपनी महिमा से अंगुष्ट मात्र देह से निजांगुष्ट को मुँह में डालकर हरि लीला के साथ वट-पत्र पर शयन करते हैं। सागर की तरंगों के कारण वट पत्र झूले के समान इधर और उधर झूमता रहता है। जिर-जिर हवा में उड़नेवाले मेघ मालिका झूले की रस्सियों का काम करने पर, सागर का फेन चारों ओर घेरकर विशाल बनकर वह झूले के परदे के रूप में रहने से, ध्रुव मंडल झूले की छोर बन जाने से, परम पद कांति उफनित होकर, पद्म राग मुख्य मणिजाल रीति से लाड़ले कंदुक की तरह सामने रहने से, उसे देखते हुए बालक हरि आत्मावलोकन में रहते हैं। बालक उसे पक्रड़ने की कोशिश में उद्युक्त होकर खिल-खिल कर हँसते, हाथ बढ़ाकर 'पकडूँगा' कहते गुनगुनाते बाल लीला करते हैं।

महान पद्म करोड़ों ब्रह्मांडों को अपने सूक्ष्म उदर में छिपाकर मुसकराते रहते हैं। तरंगों पर तैरते डोलोत्सव पानेवाले के रूप में सुख को

प्राप्त करते हैं। तब हरि सागर पर तैरनेवाले वट पत्र पर अपने आपको देखते शांत निश्चल आनंद योग निद्रा करते हैं। इस रूप में योग निद्रा करनेवाले बहुकाल के बाद जाग कर निज गर्भ गत विश्व को छोड़कर पूर्व प्रकार से विश्व का निर्माण करते समय मुक्त जीवों को छोड़कर बाकी कर्मजीव यथा प्रकार से जनते मरते रहते हैं।'' कहकर फिर शीघ्र ही सूत ने इस रूप में कहा।

शुभमंगल

जनते-मरते रहनेवाले भूलोकवासियों की रक्षा के लिए रमा और रमणी के साथ वेंकटाचल पर विख्यात के साथ रहते, भक्त जनों से गोविंदनाम भजन बहुत कराते, महापापों को भी दूर करते हुए, संपदाओं को देकर पालन करनेवाले शेषाचलपति को, उस व्यूह लक्ष्मी को, धरती पर बसे वीर लक्ष्मी को, विमल हृदयवाली अलिमेलु मंगा के रूप में अद्भुत रहनेवाली पद्मावती को, धरती पर दीपित वेंकटाद्रि को शुभ मंगल हो।

तब सारे मुनिगण ने 'तथास्तु' कहकर, श्रीवेंकटेश्वर की भक्ति-कथाओं को सूत के द्वारा सुनाने पर सुनकर, नैमिशारण्य में आनंद अतिशय से रहते सूत की प्रशंसा की है।

आश्वांत

धरणी श्रीनीलाधिपा! करुणारस पूरितात्मा! कामित फलदा! वर वेंकटगिरि नायक! तरिगोंड नृसिंह! दुरित दलन शुभाह्वा!

सुललित मणिभूषा! सूरी चित्ताब्जपूषा! कलुष जलधि शोषा! कंजगर्भांड वेष! कलि पुरुष दोषाक्रांत जीवाली पोषा! विलसित सविशेष! वेद वेदांग भाषा!

गद्य

यह श्री तरिगोंड लक्ष्मी नृसिंह करुणा कटाक्ष कलित काव्य विचित्र वशिष्ट गोत्र पवित्र कृष्णयामात्य की पुत्री वेंगमांबा प्रणीत श्री वेंकटाचल माहात्म्य नामक वीर लक्ष्मी विलास में लक्ष्मी को लेकर हरि के द्वारा कोल्हापुर में तप करना, शुकाश्रम में तप करने के लिए हरि से अशरीरी वाणी का उपदेश देना, उस स्वामी का पद्म सरोवर के तट पर पहुँचना, दिवाकर की प्रतिष्ठा करके लक्ष्मी को लेकर तप करना, उस तप को भंग करने के लिए इंद्र के द्वारा भेजी गयी रंभादि अप्सरसाओं के द्वारा हरि को विचलित करने की चेष्टा करना, विचलित करने में असफल होकर उनका वापस लौटना, हरि को लेकर पद्मावती की चिंता करना, लक्ष्मी कपिल मुनि के संवाद, व्यूह लक्ष्मी का हरि पर प्रसन्न होना, रमा समेत चक्री ब्रह्मादि को साथ लेकर शेषाद्रि पर पहुँचना, लक्ष्मी नारायण के विनोदमय संभाषण, शुक मार्तांड संवाद, छाया शुकोत्पत्ति, वीरलक्ष्मी का शुकाश्रम पहुँचना, बलराम कृष्ण के संवाद, श्रीनिवास के द्वारा ब्रह्मादि को समर्पित कालक्रम, मनुकाल निर्णय, अष्टादश पुराणों की प्रशंसा, पुण्य जीवों के द्वारा प्राप्त होने वाला सद्गति क्रम आदि कथाओं के श्री वेंकटाचल की महिमा में वीर लक्ष्मी विलास नामक यह षष्टाश्वास।

श्री वेंकटाचल की महिमा सर्व संपूर्ण

* * *